

# भारत के इतिहास में विकृतियाँ : क्यों, कैसे और क्या-क्या

रघुनन्दन प्रसाद शर्मा

इतिहास-पुरुष



इतिहासः कुशाग्रमसः सूकरास्यो महोदरः ।  
अक्षतुर्ध्वं षट् विभक्त्यैकाभरणवित्तः ॥

नामूलं लिख्यते किञ्चित्

प्रकाशन-विभाग

अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना

नयी दिल्ली-110 055

'BHĀRATA KE ITIHĀSA MEM VIKRITIYĀM :  
KYOM, KAISE AURA KYĀ-KYĀ'

By Raghunandan Prasad Sharma

Published by:

PUBLICATIONS DEPARTMENT

Akhila Bhāratiya Itihāsa Samkalana Yojanā

Baba Sahib Apte Smriti Bhawan, 'Keshav Kunj',

Jhandewalan, New Delhi-110 055

Ph.: 011-23675667

e-mail: abisy84@gmail.com

© Copyright : Publisher

First Edition : Kaliyugābda 5105, i.e. 2003 CE

Revised Second Edition : Kaliyugābda 5115, i.e. 2013 CE

Laser Typesetting & Cover Design by:

Gunjan Aggrawala

Printed at: Graphic World, 1659 Dakhnisarai Street,

Dariyaganj, New Delhi-110055

Price: ₹ 200/-

( माधव संस्कृति न्यास द्वारा वित्तपोषित )

ISBN : 978-93-82424-06-2

प्रकाशक :

प्रकाशन-विभाग

अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना

बाबा साहेब आपटे-स्मृति भवन, 'केशव-कुव',

झण्डेवालान, नयी दिल्ली-110 055

दूरभाष : 011-23675667

ई-मेल : abisy84@gmail.com

© सर्वाधिकार : प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण : कलियुगाब्द 5105, सन् 2003 ईउ

संशोधित द्वितीय संस्करण : कलियुगाब्द 5115, सन् 2013 ईउ

लेज़र-टाईपसेटिंग एवं आवरण-सज्जा :

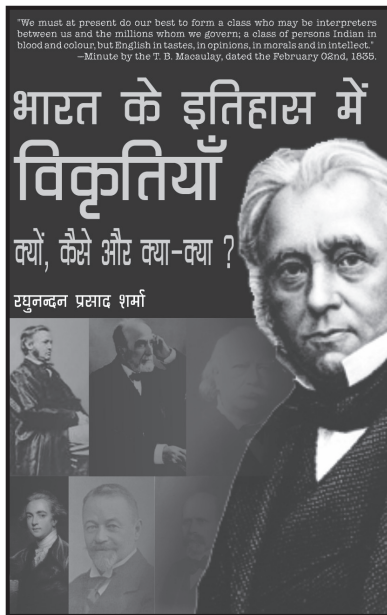
गुंजन अग्रवाल

मुद्रक : ग्राफिक वर्ल्ड, 1659, दखनीराय स्ट्रीट,

दरियागंज, नयी दिल्ली-110 002

## आवरण-परिचय

भारतीय-इतिहास को विकृत करने में अग्रगण्य  
पाश्चात्य इतिहासकार



(ऊपर की पंक्ति में) 1. जर्मन प्राच्यविद् फ्रेडरिक मैक्समूलर (1823-1900); 2. संस्कृत-कोशकार सर मोनियर मोनियर विलियम्स (1819-1899); 3. अल्ब्रेट फ्रेडरिक वेबर (1825-1901);

(नीचे की पंक्ति में) 4. सर विलियम जोन्स (1746-1794); 5. हर्मन जॉर्ज जैकोबी (1850-1937); 6. मोरिज़ विंटरजिट्ज (1863-1937);

(बड़ा चित्र) भारतवर्ष में अंग्रेज़ी-शिक्षा का पोषक एवं पाश्चात्य इतिहासकारों का प्रेरणा-स्रोत लॉर्ड थॉमस बेबिंगटन मैकॉले (1800-1859)

## नवनीत

इतिहास घटित होता है, निर्देशित नहीं। जबकि आधुनिक रूप में लिखित भारत का इतिहास निर्देशित है। यह इतिहास उस शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार इतिहास है ही नहीं, जो भारतीय-ऋषियों ने दी है। यह तो मात्र विदेशी हमलावरों की क्रीड़ी-स्थली की दास्तान है, जिसे परतन्त्रता के युग में अंग्रेज़ी-सत्ता ने भारत को सदा-सदा के लिए अपना गुलाम बनाए रखने के उद्देश्य से उसके इतिहास, धर्म और भाषा को बदलने के लिए स्वनिर्धारित 'फ्रेम-वर्क' के अनुरूप लिखवाया था। विजेता-जातियों द्वारा विजित जातियों का इतिहास सदा से ही उन्हें स्वत्वहीन, पौरुषहीन, दीन-हीन, दरिद्र और पतित-रूप में चित्रित करने के लिए इस रूप में लिखवाया जाता रहा है ताकि उनमें ऊँचा उठने की इच्छा ही समाप्त हो जाए।

विदेशी-इतिहासकारों को राजनीतिक दृष्टि से विजयी जाति के दर्प ने, सामाजिक दृष्टि से श्रेष्ठता की सोच ने, धार्मिक दृष्टि से ईसाइयत के सिद्धान्तों के समर्थन ने और सभ्यता तथा संस्कृति की दृष्टि से उच्चता के गर्व ने यह सोचने की स्थिति से ही दूर, दूर और बहुत दूर कर दिया था कि वे जिस देश, समाज और सभ्यता का इतिहास लिखने जा रहे हैं, उसकी आस्थाएँ, मान्यताएँ, भावनाएँ और विश्वास, उसके रीति-रिवाज और तौर-तरीके, उसकी पारिवारिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियाँ तथा शिक्षा-दीक्षा और साहित्य उनके अपने देश, धर्म, समाज, शिक्षा-दीक्षा आदि से न केवल भिन्न ही हैं, अपितु कोसों-कोसों दूर भी हैं।

पाश्चात्य विद्वानों का अपने रहन-सहन, खान-पान आदि से उत्पन्न संस्कारों तथा अपने देश की मान्यताओं, धर्म की आस्थाओं और समाज की भावनाओं के प्रभाव के फलस्वरूप मानसिक क्षितिज एक विशिष्ट प्रकार के साँचे में ढला हुआ था। फलतः उनकी समस्त सोच और शोध का दायरा विविधतापूर्ण होते हुए भी एक निश्चित और संकीर्ण सीमा में आबद्ध हो गया। इसीलिए उनके चिन्तन की दिशा एक सीमा से आगे नहीं बढ़ सकी और उन्होंने भारतवर्ष के इतिहास-लेखन के क्षेत्र में चारों ओर अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं, मान्यताओं

और भावनाओं के साथ-साथ अपने निष्कर्षों का एक ऐसा चक्रव्यूह बना दिया कि भारत के इतिहास-लेखक के लिए उससे निकल पाना सम्भव ही नहीं हो सका और जो एक बार फँसा, वह अभिमन्यु की भाँति फँसकर रह गया।

इतिहास का मुख्य उद्देश्य बीते हुए काल की घटनाओं का सत्य और सही रूप में वर्णन करना होता है। इतिहासकार सत्य का उद्घाटक होता है। किसी भी ऐतिहासिक घटना का वर्णन करने से पूर्व इतिहासकार का यह दायित्व होता है कि वह उस घटना पर शुद्ध और संतुलित बुद्धि से, उन्मुक्त हृदय से और औचित्य की दृष्टि से चिन्तन एवं मनन करके बिना किसी पूर्वाग्रह से ग्रस्त हुए उसे स्वतन्त्र ढंग से सत्य रूप में चित्रित कर सके। इसके विपरीत यदि किसी ऐतिहासिक घटना को किसी भी व्यक्ति, मॉडल या विचारधारा से प्रतिबद्ध होकर लिखा जाता है, तब वह इतिहास नहीं रह जाती।

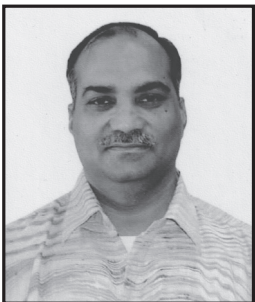
अंग्रेज़ी-सत्ता से प्रभावित अनेक भारतीय, जिनमें वेतनभोगी तथा धन और प्रतिष्ठा के लोलुप संस्कृत के कतिपय विद्वान् भी सम्मिलित थे, 'हिज़ मास्टर्स वायस' के अनुसार नाचने लगे। अंग्रेज़ों के शासनकाल में सत्ता से व्यक्तिगत स्तर पर पद-प्रतिष्ठा, मान-सम्मान, धन-सम्पदा आदि की दृष्टि से लाभ उठाने के लिए भारत के एक विशिष्ट वर्ग द्वारा उनकी चाटुकारिता के लिए किए गए प्रयासों को किसी हद तक फिर भी अनदेखा किया जा सकता है, किन्तु स्वाधीनता के बाद के वर्षों में नहीं। आज उसकी 65वीं वर्षगाँठ के बाद भी भारत में गुलामी की मानसिकतावाले लोगों की कमी नहीं है, न तो प्रशासनिक स्तर पर, न शिक्षा के स्तर पर, न लेखन के स्तर पर और न ही चिन्तन या दर्शन के स्तर पर। आज भी भारत की प्रशासनिक नीतियों के निर्धारण तथा प्रशासनिकों के प्रशिक्षण और चिन्तन पर बड़ी मात्रा में परकीयों का प्रभाव परिलक्षित होता है।

यह तो विडम्बना ही है कि जिस देश में आदिमानव ने अपना प्रथम उन्मेष करके मानव जाति की हर दिशा, दशा और विधा को एक नयी दिशा दी, नयी गति प्रदान की और अपार ज्ञान से युक्त साहित्य दिया, उसे अपने ही देश में विदेशी बताकर आक्रान्ता घोषित कर दिया गया। आज उसी के वंशजों को यह पढ़ने के लिए बाध्य किया जा रहा है कि तुम्हारे पूर्वज भी भारत में शकों, कुषाणों, मुसलमानों और अंग्रेज़ों की तरह आक्रमणकारी, लुटेरे और हत्यारे बनकर आए थे। भारतवर्ष न तो तुम्हारा है और न ही तुम्हारे पूर्वजों का। वह तो नीग्रो, द्रविड़ों

आदि का है जिन्होंने हड़प्पा, मोहनजोदड़ों आदि की उन्नत और उच्च कोटि की संस्कृति का निर्माण किया था। आर्यों ने तो उसका विनाश ही किया। उन्होंने तो उन्हीं के खण्डहरों पर अपनी संस्कृति खड़ी की है।

आज भारत स्वतन्त्र है। यहाँ के नागरिक में भारतीयता की शुद्ध भावना जाग्रत होना परमावश्यक है। अतः उसे यह ज्ञात होना चाहिए कि वह इसी भारत का मूल निवासी है, उसके पूर्वज खानाबदोश, लुटेरे और आक्रान्ता नहीं रहे। वह उन पूर्वजों का वंशज है जिन्होंने मानव के लिए अत्यन्त उपयोगी संस्कृति का निर्माण ही नहीं किया, वरन् विश्व को 'अहं ब्रह्मास्मि' का सूत्र देकर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का पाठ पढ़ाया था और 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का उदात्त ज्ञान दिया था।

## द्वितीय संस्करण की भूमिका



इतिहास अतीत से संबंध रखता है, किन्तु इसकी अध्ययन की प्राथमिकताएँ वर्तमान तथा दृश्यमान भविष्य से निर्धारित होती हैं; क्योंकि भविष्य इतिहास के गर्भ से ही वर्तमान में जन्म लेता है। इतिहास के अध्ययन के लिए विषयों के चयन में वर्तमान के लिए प्रासंगिकता आवश्यक है। इतिहास लोकोन्मुखी होना चाहिए, इसके अध्ययन के पीछे औचित्य का होना आवश्यक है।

इतिहास का अध्ययन समाज-हित के लिए होना चाहिए, मानव-जीवन को अधिकाधिक उन्नत बनाने के लिए होना चाहिये। यह हमारे जीवन और हमारे द्वारा किए जानेवाले कार्यों के लिए दीप-स्तम्भ है। हिंदू-परम्परा में इतिहास धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति का साधन है। इतिहास के माध्यम से बीता हुआ कल वर्तमान में जीवित रहता है। इतिहास अतीत को नष्ट नहीं होने देता। इतिहास लोक-संस्कृति और परम्पराओं को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक ले जाने का साधन है। इतिहास संकटकाल में मनोबल का निर्माण करता है, इतिहास एक बल है जो व्यक्ति को स्वाभिमानी बनाता है; इतिहास जीवन है, यह ज्ञान का वाहक है।

इतिहास के अध्ययन को शिक्षण के महत्वपूर्ण अंग के रूप में शताब्दियों से दृढ़तापूर्वक प्रतिपादित किया गया है। इतिहास राष्ट्र, राष्ट्रीय स्वाभिमान व मानवता के मार्ग को प्रशस्त करता है। अबतक के इतिहासकारों ने राजनैतिक परिवर्तनों के आधार पर इतिहास के अध्ययन को प्रस्तुत करने का सरल मार्ग अपनाया, परन्तु ‘अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना’ को एक ऐसे राष्ट्र के उस इतिहास का अध्ययन करना है जिसने मौलिक, राजनैतिक परिवर्तनों के अतिरिक्त अपनी सांस्कृतिक व सामाजिक पहचान को सहस्रों वर्षों से सुरक्षित रखा है। आवश्यकता इस बात की है कि इतिहास-लेखन में एक नया भावात्मक दृष्टिकोण स्थापित किया जाए, जिससे वैज्ञानिक-शोधों के आधार पर उसे

ऐतिहासिक सत्य में स्थापित किया जा सके, जो राष्ट्रों को जन्म देनेवाले व उनका विकास करनेवाले सांस्कृतिक व सामाजिक प्रभाव का अधिगम करा सके।

उक्त सन्दर्भ में ब्रिटिश-काल में भारतीय-इतिहास के अध्ययन की प्रवृत्ति को दृष्टिगत रखना आवश्यक है। 21 जुलाई, 1813 को ब्रिटिश-संसद् में चार्टर-एक्ट पास हुआ। इस एक्ट के अनुसार भारत में अंग्रेज़ी-राज्य को प्रस्थापित करने लिए यहाँ ईसाइयत और पाश्चात्य शिक्षा का प्रचार करने की छूट दी गयी। इस कार्य की पूर्ति के लिए भारत में ईसाई-पादरियों की नियुक्ति की गई और भारत में इतिहास के अध्ययन से जो स्वाभिमान जाग्रत होता था, उस इतिहास को विकृत करने का कार्य प्रारम्भ हुआ। इसका एक परिणाम यह हुआ कि भारत में इंग्लैण्ड के प्रति आस्था रखनेवाला एक समूह विकसित हुआ और दूसरा परिणाम यह हुआ कि सन् 1836 आते-आते भारतीय-इतिहास में कई हास्यास्पद सिद्धान्त स्थापित हो गये।

भारतीय-इतिहास के विकृतिकरण की इस प्रक्रिया में भारत की प्राचीनता को दुल्कारा गया और पुराण, रामायण, महाभारत या हमारे ऐसे जितने भी ग्रन्थ, जो इतिहास के स्रोत हैं, उन्हें ‘मायथोलॉजी’ कहकर नकारा गया। हम देखते हैं कि लगभग हजार वर्ष के संघर्षकाल में हमारे इतिहास को विकृत किया गया, मुस्लिम-काल में जहाँ हमारे ज्ञान के केन्द्र— विश्वविद्यालयों एवं पुस्तकालयों को जलाया गया, वहीं ब्रिटिश-काल में अंग्रेज़ों ने बची हुई ज्ञान-राशि में कुटिलतापूर्वक आमूलचूल परिवर्तनकर अपना स्वार्थ सिद्ध करने का प्रयास किया। और इस प्रकार कुल मिलाकर एक ऐसे वातावरण का निर्माण किया गया कि हमारे पूर्वज ठीक नहीं थे। इन सबसे हमारा स्वाभिमान कहीं-न-कहीं आहत हुआ। बाद में जब देश स्वतन्त्र होने के कगार पर था, तो देश के सारे मनीषी मिलकर देश की भावी दिशा तय कर रहे थे। उसमें विद्वानों का भी विचार आया। स्वामी विवेकानन्द (1863-1902) की शिष्या भगिनी निवेदिता (1867-1911) ने कहा कि ‘स्वाधीन भारत का यदि सर्वप्रथम कोई कार्य होना चाहिए, तो वह भारतीय-विद्वानों के द्वारा भारत के इतिहास का, भारतीय-चेतना के विकास के लिए पुनर्लेखन होना चाहिये।’ स्वामी विवेकानन्द, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर (1861-1941) और यहाँ तक कि महात्मा गाँधी (1869-1948) ने भी इसपर बल दिया था। किन्तु देश का दुर्भाग्य! स्वाधीनता के पूर्व डेढ़ हजार वर्षों में जो हमारा पतन हुआ था, चाहे वह सांस्कृतिक हो, सामाजिक हो, आर्थिक हो या किसी क्षेत्र में हो— हजार वर्षों की संघर्ष में हम कहीं भी क्षतिग्रस्त हुए थे, उसकी मरम्मत के लिए कहीं कोई व्यवस्था हमारी शिक्षा-पद्धति के माध्यम से या शासन-सत्ता के माध्यम से नहीं हो सकी। एक प्रयास हुआ कि

स्वाधीनता के बाद भारत का इतिहास लिखा जाए। डॉ. रमेशचन्द्र मजूमदार (1888-1980) के नेतृत्व में एक कमिटी भी गठित हुई। कुछ कार्य भी हुआ, पर इसे सरकारी संरक्षण प्राप्त न होने से इतिहास-लेखन के क्षेत्र में एक नया वर्ग उभरकर सामने आया, जिसे आज 'प्रगतिशील-लेखक' कहा जाता है। आज के विद्वानों के मतानुसार इतिहास का जितना विकृतिकरण विगत आठ सौ वर्षों में या दो सौ वर्षों में हुआ, उससे बीस गुणा अधिक विकृतिकरण स्वाधीनता के बाद से अबतक हो रहा है।

भारत के इतिहास में अबतक की गई प्रमुख विकृतियों, विशेषकर ब्रिटिश शासनकाल में की गई विकृतियों पर योजना के प्रमुख लेखक श्रीयुत् रघुनन्दन प्रसाद शर्मा ने 'भारत का आधुनिक इतिहास-लेखन : एक प्रवं ना' नामक एक विस्तृत ग्रन्थ की रचना की है। प्रस्तुत पुस्तक उसी का संक्षिप्त रूप है।

इस पुस्तक का प्रथम संस्करण कलियुगाब्द 5105 (2003 ई.) में योजना द्वारा प्रकाशित हुआ है और तभी से यह पुस्तक इतिहास के जिज्ञासुओं के मध्य काफी लोकप्रिय हुई है। इस वर्ष इस पुस्तक के द्वितीय संस्करण के प्रकाशन के अवसर पर इस पुस्तक की सामग्री अद्यतन करने की आवश्यकता अनुभव हुई। तदनुसार योजना के यशस्वी शोध-अध्येता श्रीयुत् गुंजन अग्रवाल ने कई महीनों तक परिश्रमपूर्वक इस पुस्तक का निरीक्षणकर आवश्यक संशोधन-संवर्धनकर उसे मनोहारी कलेवर में प्रस्तुत किया है। पुस्तक का आकर्षक आवरण-पृष्ठ भी उन्होंने ही तैयार किया है। पुस्तक के प्रूफ-संशोधन आदि कार्य में योजना के ही शोध-अध्येता डॉ. रत्नेश त्रिपाठी ने सहयोग दिया है। एकतर्था योजना इन दोनों कार्यकर्ता-बन्धुओं के यशस्वी एवं मंगलमय भविष्य की कामना करती है।

बाबा साहेब आपटे-स्मृति भवन  
'केशव-कुञ्ज', झण्डेवालान,  
नयी दिल्ली-110 055



(बालमुकुन्द पाण्डेय)

राष्ट्रीय संगठन-सचिव

आषाढ़ शुक्ल (व्यास) पूर्णिमा, अखिल भारतीय इतिहास-संकलन योजना  
कलियुगाब्द 5115

## दो शब्द

दिनांक 23 मार्च, 2003 को दिल्ली के महामहिम उपराज्यपाल श्री विजय कपूर जी द्वारा मेरी पुस्तक 'भारत का आधुनिक इतिहास-लेखन : एक प्रवञ्चना' का विमोचन किया गया। विमोचन के बाद अनेक लोगों ने मुझे इस पुस्तक के लिए साधुवाद दिया। विषय के ज्ञाता अनेक महानुभावों ने भी इसकी प्रशंसा की। उन्हें यह पुस्तक बड़ी रुचिकर एवं तर्कसंगत लगी।

पुस्तक की उपयोगिता को देखते हुए मा० सुरेश जी सोनी एवं ठाकुर रामसिंह जी की इच्छा हुई कि चूंकि 500 पृष्ठों की पुस्तक सामान्य पाठकों और कार्यकर्ताओं के लिए पढ़ पाना कठिन रहेगा, अतः इस पुस्तक की सामग्री को सरल, सुबोध और संक्षिप्त रूप में नये ढंग से तैयार करके अलग से एक पुस्तक प्रकाशित करा दी जाए, ताकि पुस्तक में उल्लिखित विषय को वे लोग सरलता और सहजता से हृदयंगम कर सकें। साथ ही ऐसे कार्यकर्ताओं आदि की सुविधा के लिए, जिन्हें हिंदी कम आती हो या न आती हो, इस पुस्तक की सामग्री को अंग्रेजी में अनुवादित करके प्रकाशित करा दिया जाए। बाद में आवश्यकतानुसार पुस्तक का प्रांतीय भाषाओं में अनुवाद कराकर प्रकाशित कर लिया जायेगा।

किसी पुस्तक का विस्तार करना जितना सहज होता है, नये ढंग से उसका सरलीकरण और संक्षेपीकरण उतना ही कठिन। फिर किसी इतिहास की पुस्तक, जिसमें तथ्य हों, तर्क हों और व्याख्याएँ हों, का सरलीकरण एवं संक्षेपीकरण और भी कठिन और चुनौतीपूर्ण होता है। निःसन्देह मेरे लिए और वह भी अपनी ही पुस्तक का सरलीकरण और संक्षेपीकरण बड़ा ही दुष्कर रहा। कठिनाई हुई, किन्तु मा० सोनी जी एवं ठाकुर जी की प्रेरणा और प्रोत्साहन से यह श्रमसाध्य कार्य पूरा हो गया। सामग्री कैसी बनी, इसका निर्णय तो पाठक ही करेंगे। हाँ, यह अनुरोध अवश्य करूंगा कि यदि सरलीकरण और संक्षेपीकरण के कारण किसी विषय को समझने में कोई कठिनाई आए, तो बाबा साहेब आपटे स्मारक समिति द्वारा प्रकाशित 'भारत का आधुनिक इतिहास-लेखन : एक प्रवञ्चना' पुस्तक देख लें। आशा है, मेरा यह 155वाँ प्रकाशन भी पाठकों को रुचिकर लगेगा।

हिंदी-दिवस, वि.सं. 2060, तदनुसार 2003 ई.  
'नन्दन-निवास', ए-सी 10,  
टैगोर गार्डन, नयी दिल्ली-110027

—रघुनन्दन प्रसाद शर्मा

## कहाँ क्या है ?

नवनीत	(i)
भूमिका	(iv)
दो शब्द	(vii)

**भारत का आधुनिक रूप में लिखित इतिहास** 1  
इतिहास-लेखन का श्रीगणेश वारेन हेस्टिंग्स के काल में ● इतिहास-लेखन के लिए अंग्रेज-इतिहासकारों के प्रयास ● इतिहास-लेखन में धींगामुस्ती

**भारत के इतिहास में विकृतियाँ की गई, क्यों ?** 6  
अंग्रेजी-सत्ता का उद्देश्य अपनी राज्य-सत्ता को स्थायीत्व प्रदान करना रहा ● उद्देश्य-प्राप्ति के लिए गुप्त योजना ● गुप्त योजना का आभास ● योजना को सफल बनाने में सहयोग ● इतिहास के विकृतिकरण की स्वीकारोक्ति

**भारत के इतिहास में विकृतियाँ कीं, किसने ?** 12  
परतन्त्रता-काल में परकीय सत्ताओं का इतिहास-लेखन में दखल ● जर्मन और अंग्रेज-लेखकों में भारत के सन्दर्भ में लिखने की होड़ ● यूरोप में संस्कृत-भाषा, उसके साहित्य और भारतीय-संस्कृति के प्रचार से ईसाई धर्म-प्रचारकों में बौखलाहट ● इतिहास में विकृतियाँ करनेवाले जर्मनी और इंग्लैण्ड के लेखक ● इतिहास के विकृतिकरण में भारत के कतिपय धनलोलुप संस्कृतज्ञ भी पीछे नहीं रहे

**भारत के इतिहास में विकृतियाँ की गई, कहाँ ?** 16  
प्राचीन ग्रन्थों/अभिलेखों में ● प्राचीन राजाओं और राजवंशों की संख्याओं और राज्यकालों के ब्यौरों में ● प्राचीन संवत्तों में ● पुरातात्विक सामग्रियों के निष्कर्षों में

**भारत के इतिहास में विकृतियाँ की गई, कैसे ?** 26  
भारत के प्राचीन विद्वानों को कालगणना-ज्ञान से अनभिज्ञ मानकर ● माइथोलॉजी की कल्पनाकर ● विदेशी-साहित्य को अनावश्यक मान्यता देकर ● विदेशी-पर्यटकों के विवरणों को प्रामाणिक समझकर ● अनुवादों के प्रमाण पर ● विकासवाद के अनुसरण पर ● पुरातात्विक सामग्री की भ्रामक समीक्षा को स्वीकारकर ● तिथ्यांकन प्रणाली की भ्रामक समीक्षा को मानकर ● पाश्चात्य विद्वानों के संस्कृत के अधिकचरे ज्ञान की श्रेष्ठता पर विश्वासकर

**भारत के इतिहास में विकृतियाँ की गई, क्या-क्या ?** 58  
**ऐतिहासिक :** आर्य लोग भारत में बाहर से आए ● आर्यों ने भारत के मूल निवासियों को युद्धों में हराकर दास या दस्यु बनाया ● भारत के मूल निवासी द्रविड़ ● दासों या दस्युओं को आर्यों ने अनार्य बनाकर शूद्र की कोटि में डाला ● यूरोपवासी आर्यवंशी भारत की सभ्यता विश्व में सर्वाधिक प्राचीन नहीं ● आदिमानव जंगली और मांसाहारी ● वेदों का संरचना-काल 1500 से 1200 ई पू तक ● भारत की ऐतिहासिक घटनाओं और महापुरुषों की तिथियों की हेर-फेर

**साहित्यिक :** भारत में ऐतिहासिक सामग्री का अभाव ● भारत का प्राचीन साहित्य, यथा— रामायण, महाभारत, पुराणादि ग्रन्थ 'मिथ' ● राजाओं और राजवंशों के वर्णन अतिरंजित एवं अवास्तविक ● सिकन्दर का भारत पर आक्रमण 327 ई पू में हुआ और सेंड्रोकोटस (चन्द्रगुप्त मौर्य) 320 ई पू में भारत का सम्राट् बना ● यूनानी-साहित्य में वर्णित सेंड्रोकोटस ही चन्द्रगुप्त मौर्य ● पालीबोथ्रा ही पाटलिपुत्र

**वैज्ञानिक :** भारतीय-कालगणना अतिरंजित और अवैज्ञानिक ● प्रागैतिहासिक काल की अवधारणा ● वैज्ञानिकता के नाम पर ऐतिहासिक तथ्यों की उलट-फेर

**विविध :** ऐतिहासिक महापुरुषों की तिथियाँ : ● (क) गौतम बुद्ध 563 ई पू में पैदा हुए ● (ख) कुमारिल भट्ट 8वीं शताब्दी में हुए ● (ख) आद्य जगद्गुरु शंकराचार्य 788 ई में अवतरित हुए ● (घ) अशोक 265 ई पू में गद्दी पर बैठा ● (ङ) कनिष्क का राज्यारोहण 78 ई में हुआ ● (च) विक्रम संवत् के प्रवर्तक उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य का कोई ऐतिहासिक अस्तित्व नहीं ● सरस्वती नदी का कोई अस्तित्व नहीं ● भारत का शासन समग्र रूप में एक केन्द्रीय सत्ता के अंतर्गत केवल अंग्रेजों के शासनकाल में आया, उससे पूर्व वह कभी भी एक राष्ट्र के रूप में नहीं रहा

**निष्कर्ष** 140  
पराधीनता एक अभिशाप ● अंग्रेजों की दृष्टि में भारतवासियों का मूल्यांकन ● भारत का आधुनिक रूप में लिखित इतिहास विजित जाति का इतिहास ● भारत का वास्तविक इतिहास तो मानव जाति का इतिहास ● भारतीय-परम्पराओं और तथ्यों के विपरीत लिखा गया इतिहास भारत का इतिहास नहीं

**परिशिष्ट** 146  
क. महाभारत के बाद भारत के विभिन्न राजवंशों के राजागण  
ख. गौतम बुद्ध के काल-निर्धारण के सन्दर्भ में विभिन्न तिथियाँ  
ग. महाभारत में वर्णित एक राष्ट्र के रूप में भारत



## भारत का आधुनिक रूप में लिखित इतिहास

**भा**रत के इतिहास को आधुनिक रूप में लिखने की परम्परा देश में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन की स्थापना के साथ-साथ ही शुरू हो गई थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की ओर से भारत में आनेवाले प्रारम्भिक गवर्नर-जनरलों, यथा— रॉबर्ट क्लाइव (1757-1760) और वारेन हेस्टिंग्स (1774-1785) से लेकर लॉर्ड विलियम बेंटिक (1828-1835) तक के समय में देश के राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक, शैक्षिक, आर्थिक आदि क्षेत्रों में पाश्चात्य ढंग की नयी-नयी खोजें, व्याख्याएँ और प्रक्रियाएँ चालू हो गई थीं। इनमें से हम भारतवासियों के लिए कुछ यदि लाभकर रहीं, तो काफी कुछ हानिकर भी। फिर भी वे चलाई गई और उन्हें मान्यता भी मिली, क्योंकि वारेन हेस्टिंग्स के समय तक सत्ता की बागडोर अंग्रेजों के हाथों में पूरी तरह से पहुँच चुकी थी और देश में सभी कार्य उनकी ही इच्छाओं और आकांक्षाओं के अनुरूप होने लगे थे।

### इतिहास-लेखन का श्रीगणेश वारेन हेस्टिंग्स के काल में

जहाँ तक उस समय देश में इतिहास-लेखन के क्षेत्र का संबंध था, उसमें भी अन्य क्षेत्रों की भाँति ही नये ढंग से अनुसन्धान और लेखन के प्रयास शुरू किए गये। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन के दौरान यद्यपि यूरोप से आनेवाले अधिकतर विद्वानों, यथा— सर विलियम जोन्स (1746-1794), हेनरी थॉमस कोलब्रुक (1765-1837), जॉर्ज टर्नर, जेम्स प्रिंसेप (1799-1840), फ्रेडरिक ईडन पार्जिटर (1852-1927) आदि ने इस दिशा में पर्याप्त रुचि ली, यद्यपि इस दिशा में सबसे महत्वपूर्ण कार्य कलकत्ता उच्च न्यायालय में कार्यरत तत्कालीन न्यायाधीश सर विलियम जोन्स ने किया। उन्होंने भारत के इतिहास को आधुनिक रूप में लिखने

के लिए नये ढंग से शोधकार्य करने का सिलसिला शुरू किया। इस कार्य में उन्हें कम्पनी के तत्कालीन गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्स का पूरा-पूरा सहयोग मिला।

सन् 1757 ई. में हुए प्लासी के युद्ध के परिणामों से प्रोत्साहित होकर ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा भारत-जैसे विस्तृत और विशाल देश पर अंग्रेजी-राज्य की स्थापना का जो स्वप्न सजाया गया था, उसे सार्थक करने के लिए न केवल भारत में कार्यरत कम्पनी के लोगों ने ही, वरन् इंग्लैण्ड के सत्ताधीशों ने भी पूरा-पूरा प्रयास किया। इस सन्दर्भ में लॉर्ड थॉमस बैबिंगटन मैकॉले (1800-1859) द्वारा अपने एक मित्र राउस को लिखे गए पत्र की यह पंक्ति उल्लेखनीय है—

‘अब केवल नाममात्र का नहीं, हमें सचमुच में नवाब बनना है और वह भी कोई पर्दा रखकर नहीं, खुल्लम-खुल्ला बनना है।’

### इतिहास-लेखन के लिए अंग्रेज-इतिहासकारों के प्रयास

भारत के इतिहास को आधुनिक रूप में, अर्थात् अपनी इच्छानुसार लिख सकें अथवा लिखवा सकें, इसके लिए कम्पनी-सरकार ने अंग्रेज-इतिहासकारों के माध्यम से सघन प्रयास किये। इन्होंने भारत की प्राचीन सामग्री, यथा— ग्रन्थ, शिलालेख आदि, जिसे पराधीन रहने के कारण भारतीय भूल चुके थे, खोज-खोज कर निकाला। साथ ही भारत आनेवाले विदेशी-यात्रियों के यात्रा-विवरण भी एकत्र कराये। उन सबका अंग्रेजी में अनुवाद करवाया और उनका गहराई में जाकर अध्ययन किया; किन्तु भारतीय-सामग्री में से ऐसी सामग्री बहुत कम मात्रा में मिली जो उनके काम आ सकी। अधिकांश सामग्री ऐसी थी, जो अंग्रेजी-सत्ता के लिए उसके उद्देश्य की पूर्ति में सहायक नहीं हो सकती थी। अतः उन्होंने उसे अनुपयुक्त समझकर अप्रामाणिक करार दे दिया। बाद में उन्होंने भारत का इतिहास लिखने की दृष्टि से स्व-विवेक के आधार पर विभिन्न निष्कर्ष निर्धारित किए और विदेशी-साहित्य पर आधारित मानदण्ड स्थापित किये।

### (क) अंग्रेज-इतिहासकारों के स्व-निर्धारित निष्कर्ष

अंग्रेज-इतिहासकारों ने भारत का इतिहास लिखने से पूर्व ही भारतीय-इतिहास के सन्दर्भ में जो अनेक मनगढ़न्त निष्कर्ष निर्धारित कर लिए थे और सत्ता के बल

पर जिनको बड़े जोरदार ढंग से प्रचारित करना-करवाना शुरू कर दिया, उनमें से कतिपय निष्कर्ष उल्लेखनीय हैं—

- (1) प्राचीन भारतीय-विद्वानों को इतिहास के वास्तविक स्वरूप की सही कल्पना कभी नहीं रही। उनमें ऐतिहासिक लेखन-क्षमता का अभाव रहा।
- (2) भारत में विशुद्ध ऐतिहासिक अध्ययन के लिए सामग्री बहुत कम मात्रा में सुलभ रही।
- (3) इतिहास लिखने के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण और आवश्यक तत्त्व—तिथिक्रम अर्थात् कालगणना की भारत के प्राचीन विद्वानों के पास कोई निश्चित और ठोस विधा कभी नहीं रही।
- (4) भारत के इतिहास की अधिक सही तिथियाँ वे हैं जो भारत से नहीं, विदेशों से मिली हैं।
- (5) भारत के इतिहास की प्राचीनतम सीमा 2500-3000 ई पू तक ही रही।
- (6) आर्यों ने भारत में बाहर से आकर यहाँ के पूर्व-निवासियों को युद्धों में हराकर अपना राज्य स्थापित किया और हारे हुए लोगों को दास बनाया।
- (7) प्राचीन भारतीय-पौराणिक साहित्य में वर्णित राजवंशावलियाँ तथा राजाओं की शासनावधियाँ अतिरञ्जित होने से अप्रामाणिक और अविश्वसनीय हैं।
- (8) *रामायण*, *महाभारत* तथा अन्य प्राचीन भारतीय-ग्रन्थ 'माइथोलॉजी' हैं।
- (9) भारत का शासन समग्र रूप में एक केन्द्रीय सत्ता के अधीन अंग्रेजी-शासन के आने से पूर्व कभी नहीं रहा।

उक्त निष्कर्षों को प्रचारित करके उन्होंने भारत के समस्त प्राचीन साहित्य को तो नकार ही दिया, साथ ही भारतीय-पुराणों, धार्मिक ग्रन्थों और प्राचीन वाङ्मय में सुलभ सभी ऐतिहासिक तथ्यों और कथ्यों को भी अप्रामाणिक और अविश्वसनीय करार दे दिया।

### (ख) विलियम जोन्स द्वारा निर्धारित मानदण्ड

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने वारेन हेस्टिंग्स के समय में सर विलियम जोन्स के माध्यम से इस देश के इतिहास को नये ढंग से लिखवाने की शुरुआत की। जोन्स ने भारत का इतिहास लिखने की दृष्टि से यूनानी-लेखकों की पुस्तकों के आधार पर 3 मानदण्ड स्थापित किए—

**आधार-तिथि—** भारत पर सिकन्दर के आक्रमण के समय अर्थात् 327-326 ई पू में चन्द्रगुप्त मौर्य विद्यमान था और उसके राज्यारोहण की तिथि 320 ई पू थी। इसी तिथि को आधार-तिथि मानकर भारत के सम्पूर्ण प्राचीन इतिहास के तिथिक्रम की गणना की जाए, क्योंकि इससे पूर्व की ऐसी कोई भी तिथि नहीं मिलती जिसे भारत का इतिहास लिखने के लिए आधार-तिथि बनाया जा सके।

**सम्राट् का नाम—** यूनानी-लेखकों द्वारा वर्णित 'सैंड्रोकोट्टस' (Sandrocottus) ही चन्द्रगुप्त मौर्य था और सिकन्दर के आक्रमण के पश्चात् वही भारत का सम्राट् बना था।

**राजधानी का नाम—** यूनानी-लेखकों द्वारा वर्णित 'पालीबोथ्रा' (Palibothra) ही पाटलिपुत्र थी और यही नगरी चन्द्रगुप्त मौर्य की राजधानी थी।

### इतिहास-लेखन के क्षेत्र में धींगामुस्ती

इतिहास-लेखन के कार्य में उस समय कम्पनी में कार्यरत हर अंग्रेज़ ने जहाँ व्यक्तिगत तौर पर पूरा-पूरा सहयोग दिया, वहीं कम्पनी ने भी ऐसे लोगों को सहयोग और प्रोत्साहन दिया, जिन्होंने भारतीय-इतिहास से संबंधित कथ्यों और तथ्यों को अप्रामाणिक, अवास्तविक, अत्युक्तिपूर्ण और सारहीन सिद्ध करने का प्रयास किया। पाश्चात्य विद्वानों के भारतीय-इतिहास-लेखन के सन्दर्भ में उक्त निष्कर्षों और मानदण्डों को आधार बनाकर तत्कालीन सत्ता ने आधुनिक रूप में भारत का इतिहास-लेखन कराया।

भारत के इतिहास को आधुनिक रूप में लिखने के लिए पाश्चात्य विद्वानों द्वारा जो सघन प्रयास किए गए, वे इसलिए तो प्रशंसनीय रहे कि विगत एक हजार वर्ष से अधिक के कालखण्ड में इस दिशा में स्वयं भारतवासियों द्वारा 'राजतरंगिणी' की रचना को छोड़कर कोई भी उल्लेखनीय कार्य नहीं किया गया था, किन्तु इतने परिश्रम के बाद भारत का जो इतिहास उन्होंने तैयार किया, उसमें भारत के ऐतिहासिक घटनाक्रम और तिथिक्रम को इस ढंग से प्रस्तुत किया गया कि आज अनेक भारतीय-विद्वानों के लिए उसकी वास्तविकता सन्देहास्पद बन गयी। फिर यही नहीं, इस क्षेत्र में जो धींगामुस्ती अंग्रेज़ दो सौ वर्षों में नहीं कर पाए, वह पाश्चात्योन्मुखी भारतीय-इतिहासकारों ने स्वाधीन भारत के 65



वर्षों में कर दिखाया।

इतिहास का मुख्य लक्ष्य विगत काल की घटनाओं का सत्य और सही रूप में वर्णन करना है। इतिहासकार सत्य का उद्घाटक होता है। किसी भी ऐतिहासिक घटना का वर्णन करने से पूर्व इतिहासकार का यह दायित्व होता है कि वह उस घटना पर शुद्ध और संतुलित बुद्धि से चिन्तन करके बिना किसी पूर्वाग्रह से ग्रस्त हुए स्वतन्त्र ढंग से सत्य रूप में चित्रित करे। इसके विपरीत यदि कोई व्यक्ति ऐतिहासिक घटना को विकृत करके किसी भी व्यक्ति, मॉडल या विचारधारा से प्रतिबद्ध होकर लिखता है, तब वह इतिहास नहीं रह जाता। वस्तुतः इतिहास किसी भी देश अथवा जाति की विभिन्न परम्पराओं, मान्यताओं तथा महापुरुषों की गौरवगाथाओं और संघर्षों के उस सामूहिक लेखे-जोखे को कहा जाता है जिससे उस देश अथवा जाति की भावी पीढ़ी प्रेरणा ले सके, जबकि भारत का इतिहास आज जिस रूप में सुलभ है, उसपर इस दृष्टि से विचार करने पर निराशा ही हाथ लगती है; क्योंकि उससे वह प्रेरणा मिलती ही नहीं जिससे भावी पीढ़ी का कोई मार्गदर्शन हो सके। उससे तो मात्र यही जानकारी मिल पाती है कि इस देश में किसी का कभी भी अपना कुछ रहा ही नहीं। यहाँ तो एक के बाद एक आक्रान्ता आते रहे और पिछले आक्रान्ताओं को पददलित करके अपना वर्चस्व स्थापित करते रहे। यह देश, देश नहीं, मात्र एक धर्मशाला रहा है, जिसमें जिसका भी और जब भी जी चाहा, घुस आया और कब्ज़ा जमाकर, मालिक बनकर बैठ गया।

## भारत के इतिहास में विकृतियाँ की गई, क्यों ?

यहाँ यह प्रश्न अवश्य उठाया जा सकता है कि जिन पाश्चात्य विद्वानों ने भारत के इतिहास को नये ढंग से लिखने के लिए इतना अधिक प्रयास किया, उन्हें उसमें विकृतियाँ लाकर उसके स्वरूप को बिगाड़ने की आवश्यकता क्या थी ? इसका सीधा और स्वाभाविक उत्तर यह है कि अंग्रेज़ी-सत्ता ने आधुनिक रूप में भारत का इतिहास भारतीयों के ज्ञानवर्धन के लिए नहीं, वरन अपने उद्देश्य-विशेष की पूर्ति हेतु लिखवाया था।

### अंग्रेज़ी-सत्ता का उद्देश्य अपनी राज्य-सत्ता को स्थायीत्व प्रदान करना रहा

जब भारत पर अंग्रेज़ों ने छल से, बल से और कूटनीति से पूरी तरह से कब्ज़ा कर लिया, तो उन्हें उस कब्ज़े को स्थायी बनाने की चिन्ता हुई। भारत में अपनी सत्ता को बनाए रखने के लिए उन्हें तलवार के बल की अपेक्षा यह मार्ग सरल लगा कि इस देश का इतिहास, भाषा और धर्म बदल दिया जाए। उनका दृढ़ विश्वास था कि संस्कृति के बदले हुए परिवेश में जन्मे, पले और शिक्षित भारतीय कभी भी अपने देश और अपनी संस्कृति की गौरव-गरिमा के प्रति इतने निष्ठावान्, अपनी सभ्यता की प्राचीनता के प्रति इतने आस्थावान् और अपने साहित्य की श्रेष्ठता के प्रति इतने आश्वस्त नहीं रह सकेंगे। इसीलिए उन्होंने अधिकांशतः तो जान-बूझकर और कुछ मात्रा में अज्ञान और असावधानी के कारण भारत के इतिहास की प्राचीन घटनाओं, नामों और तिथियों को तोड़-मरोड़कर अपनी इच्छानुसार प्रस्तुत करके उन्हें अपने उद्देश्य की पूर्ति में सहायक बनाया।

### उद्देश्य-प्राप्ति के लिए गुप्त योजना

कम्पनी-सरकार ने अपने उद्देश्य की प्राप्ति के निमित्त एक बहुमुखी गुप्त योजना

बनाई और उसके कार्यान्वयन के लिए व्यापक स्तर पर प्रबन्ध किये। इस योजना के अंतर्गत पाश्चात्य चिन्तकों और वैज्ञानिकों ने, इतिहासकारों और शिक्षाशास्त्रियों ने, लेखकों और अनुवादकों ने, अंग्रेज़-प्रशासकों और ईसाई-धर्मप्रचारकों ने भारत की प्राचीनता, व्यापकता, अविच्छिन्नता और एकात्मता को ही नहीं, समाज में ब्राह्मणों यानी विद्वानों के महत्त्व और प्रतिष्ठा को नष्ट करने के उद्देश्य से एक सम्मिलित अभियान चलाया। इस अभियान के अंतर्गत ही यह प्रचारित किया गया कि भारतीय-सभ्यता इतनी प्राचीन नहीं है जितनी कि वह बताई जाती है, *रामायण* और *महाभारत* की घटनाएँ कपोल-कल्पित हैं, वे कभी घटी ही नहीं; पुराणों के वर्णन तो ब्राह्मणों के प्रलाप-मात्र हैं; वाल्मीकि और व्यास ऐतिहासिक पुरुष हैं ही नहीं, आदि-आदि। सत्ता में रहने के कारण उन्हें इस प्रचार का उचित लाभ भी मिला। अंग्रेज़ी-सत्ता से प्रभावित अनेक भारतीय, जिनमें वेतनभोगी तथा धन और प्रतिष्ठा के लोलुप संस्कृत के कतिपय विद्वान् भी सम्मिलित थे, 'हिज मास्टर्स वॉयस' के अनुरूप जमूरी की तरह नाचने लगे। अंग्रेज़ों के शासनकाल में सत्ता से व्यक्तिगत स्तर पर पद-प्रतिष्ठा, मान-सम्मान, धन-सम्पदा आदि की दृष्टि से लाभ उठाने के लिए भारत के एक विशिष्ट वर्ग द्वारा उनकी चाटुकारिता के लिए किए गए प्रयासों को किसी हद तक फिर भी अनदेखा किया जा सकता है, किन्तु स्वाधीनता के 65 वर्ष बाद भी भारत में गुलामी की मानसिकतावाले लोगों की कमी नहीं है— न तो प्रशासनिक स्तर पर, न शिक्षा के स्तर पर, न लेखन के स्तर पर और न ही चिन्तन या दर्शन के स्तर पर। आज भी भारत की प्रशासनिक नीतियों के निर्धारण तथा प्रशासकों के प्रशिक्षण और चिन्तन पर बड़ी मात्रा में परकीयों का प्रभाव परिलक्षित होता है। देशभर में बड़े पैमाने पर व्याप्त इस मानसिकता को अनुचित मानते हुए भारत के पूर्व राष्ट्रपति एवं आधुनिक भारत के प्रसिद्ध दार्शनिक डॉ॰ सर्वपल्ली राधाकृष्णन (1888-1975) ने एक स्थान पर लिखा है—

'The Policy inaugurated by Macaulay, with all its cultural value, is loaded on one side. While it is so careful as not to make us forget the force and validity of western culture, it has not helped us to love our own culture and refine it where necessary. In some cases, Macaulay's wish is fulfilled and we have educated Indians who are "more English than English themselves" to quote his well known words. Naturally

some of these are not behind the hostile foreign critic in their estimate of the History of Indian culture. They look upon India's cultural evolution as one dreary scene of discord, folly and superstition. They are eager to imitate the material achievements of Western States and tear up the roots of ancient civilisation, so as to make room for the novelties imported from the West. One of their members recently declared that if India is to thrive and flourish, England must be her "spiritual mother" and Greece her "spiritual grand mother".<sup>1</sup>

### गुप्त योजना का आभास

भारत का इतिहास, धर्म और भाषा बदलकर उसे ईसाई-देश बनाने की कम्पनी-सरकार की योजना बहुत ही गुप्त थी। इसका निर्माण कब, कहाँ और कैसे हुआ, इसके संबंध में कोई निश्चित जानकारी उस समय किसी को भी नहीं मिल सकी। यह तो बाद में उन्हीं के लोगों द्वारा जब लिखित रूप में माना गया, तभी पता चला। इस सन्दर्भ में इंग्लैण्ड के लॉर्ड मैकॉले तथा जर्मन-संस्कृतज्ञ फ्रेडरिक मैक्समूलर (1823-1900) और इंग्लैण्ड के सर मोनियर मोनियर विलियम्स (1819-1899) के निम्नलिखित विचारों से इस दुरभिसन्धि का आभास मिला।

**लॉर्ड मैकॉले—** सन् 1834 ई॰ में भारत के गवर्नर जनरल की परिषद् का प्रथम लॉ-मेम्बर बने लॉर्ड मैकॉले ने भारतीयों को शिक्षा देने के लिए अपनी एक नयी नीति चलायी। इस सन्दर्भ में उसने 12 अक्टूबर, 1836 को कलकत्ते से अपने पिता जाचरी मैकॉले को लिखे पत्र में कहा था—

‘मेरी बनाई शिक्षा-पद्धति से यहाँ (भारत में) यदि शिक्षाक्रम चलता रहा तो आगामी 30 वर्षों में बंगाल में एक भी मूर्तिपूजक नहीं बचेगा। या तो वे ईसाई बन जाएँगे या नाममात्र के हिंदू बने रहेंगे। धर्म पर या वेदशास्त्रों पर उनको विश्वास नहीं होगा। स्पष्ट रूप से हिंदू-धर्म में हस्तक्षेप न करते हुए भी, बाह्य रूप से उसकी धार्मिक स्वतन्त्रता कायम

1. 'आर्यों का आदि देश और उनकी सभ्यता', पृ॰ 28

2. 'The effect of this education on the Hindoos is prodigious. No Hindoo, who has received an English education, ever remains

रखते हुए भी हमारा उद्दिष्ट सफल होगा।<sup>2</sup>

**फ्रेडरिक मैक्समूलर**— इसका वास्तविक मन्तव्य इसके उन पत्रों से, जो इनकी पत्नी ने 1902 ई. में छपवाए थे, ज्ञात होता है—

‘वेद का अनुवाद और मेरा (सायण-भाष्य सहित ऋग्वेद का) यह संस्करण उत्तरकाल में भारत के भाग्य पर दूर तक प्रभाव डालेगा। यह उनके धर्म का मूल है और मैं निश्चयपूर्वक अनुभव करता हूँ कि गत तीन सहस्र वर्षों से वेदों से उद्भूत सबकुछ को उन्मूलन करने का एकमात्र उपाय है कि उन्हें उनके धर्म का मूल कैसा है, यह बताया जाए।’<sup>1</sup>

दिनांक 16 दिसम्बर, 1867 ई. को उसने भारत-सचिव (ड्यूक ऑफ़ आर्गाइल) को लिखा :

‘भारत का प्राचीन धर्म नष्टप्राय है और यदि ईसाई-धर्म उसका स्थान नहीं लेता, तो यह किसका दोष होगा?’<sup>2</sup>

**सर मोनियर मोनियर विलियम्स** ने अपनी एक पुस्तक में लिखा है—

‘ब्राह्मण-धर्म के शक्तिशाली दुर्ग की दीवारें जब घेर ली जाएँगी, उनके

sincerely attached to his religion. Some continue to profess it as matter of policy; but many profess themselves pure Deists, and some embrace Christianity. It is my firm belief that, if our plans of education are followed up, there will not be a single idolater among the respectable classes in Bengal thirty years hence. And this will be effected without any efforts to proselytise; without the smallest interference with religious liberty; merely by the natural operation of knowledge and reflection. I heartily rejoice in the prospect.’

—‘Indian Church History Review’, December 1973, p. 187; ‘New Ideas in India During the Nineteenth Century : A Study of Social, Political, and Religious Developments’, by John Morrison, p.44; ‘The Consolidation Of The Christian Power In India’, p.16

1. ‘..... This edition of mine and the translation of the Veda will hereafter tell to a great extent on the fate of India, ..... It is the root of their religion and to show them what the root is, I feel sure, is the only way of uprooting all that has sprung from it during the last three thousand years.’

—‘The Life and Letters of Right Honorable Friedrich Max Müller, Vol. I, Ch. XV, page 339.

2. ‘The ancient religion of India is doomed and if Christianity does not step in, whose fault will it be?’ —‘Ibid, Vol. I, Ch. XVI, p.378.

नीचे जब सुरंग लगा दी जाएगी और अन्त में क्रास (ईसाई-धर्म) के सिपाही उनपर धावा बोल देंगे, तब ईसाई-धर्म की यह निश्चित ही अपूर्व तथा पूर्ण विजय होगी।’<sup>1</sup>

### योजना को सफल बनाने में सहयोग

भारत में अंग्रेजी-राज्य को स्थायीत्व प्रदान कराने के लिए कम्पनी-सरकार ने भारत के इतिहास, धर्म और भाषा को बदलने की जो योजना बनाई थी, उसमें जोन्स के साथ-साथ वारेन हेस्टिंग्स का तो सहयोग था ही, उसे आगे बढ़ाने में मैक्समूलर, अल्ब्रेट वेबर (1825-1901), एचू एचू विल्सन (1786-1860), मॉरिज़ विंटरनिट्ज़ (1863-1937), मैकॉले, जेम्स मिल (1773-1836), जॉन फेथफुल फ्लीट (1847-1917), बुह्लर (1837-1898) आदि का भी पूर्ण योगदान रहा था। जोन्स, मिल, विंटरनिट्ज़ ने जहाँ भारत के इतिहास को परिवर्तित करने में अग्रणी भूमिका निभाई, वहीं पाश्चात्य पादरीगण ईसाई-धर्म को अधिक-से-अधिक व्यापक और विस्तृत परिवेश दिलाने में किसी से पीछे नहीं रहे। मैकाले ने जहाँ शिक्षा के माध्यमों को बदलकर संस्कृत और भारतीय-भाषाओं के स्थान पर अंग्रेजी का वर्चस्व स्थापित कराने में मदद की, वहीं मैक्समूलर, वेबर, विल्सन आदि ने भारतीय-ग्रन्थों का भ्रष्ट अनुवाद और ग़लत व्याख्याएँ प्रस्तुत करके तथाकथित शिक्षित लोगों के मनो में धर्म के प्रति अनास्था और भाषा के प्रति अरुचि पैदा करने में कोई कमी नहीं छोड़ी। फ्लीट और बुह्लर-सरीखे पुरातात्विक भी इस दृष्टि से किसी से पीछे नहीं रहे।

अंग्रेजी-सत्ता भारत में ईसाइयत फैलाने के लिए कितनी उत्सुक थी, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण निम्नलिखित उद्धरणों से प्राप्त होता है—

### लॉर्ड पामर्स्टन, इंग्लैण्ड का प्रधानमंत्री (1859-1865) :

‘यह हमारा कर्तव्य ही नहीं, अपितु हमारा अपना हित भी इसी में है कि भारतभर में ईसाइयत का प्रचार हो।’<sup>2</sup>

1. ‘When the walls of the mighty fortress of Brahmanism are encircled, undermined, and finally stormed by the soldiers of the cross, the victory of Christianity must be signal and complete.’

—‘Modern India and the Indians’, by M.M. Williams, 3rd edition, 1879, p.262.

2. 1859 ई. में की गई एक घोषणा

**रोज़ डोनैले मंगलस, लन्दन में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के चेयरमैन (1857-1858) :**

‘विधाता ने हिंदुस्तान का विशाल साम्राज्य इंग्लैण्ड के हाथों में इसलिए सौंपा है कि ईसामसीह का झण्डा इस देश में एक कोने से दूसरे कोने तक लहराए। प्रत्येक ईसाई का कर्तव्य है कि समस्त भारतीयों को अविलम्ब ईसाई बनाने के महान् कार्य में जुट जाए।’<sup>1</sup>

### **इतिहास के विकृतिकरण की स्वीकारोक्ति**

यह ठीक है कि भारत के इतिहास को बिगाड़ने के लिए अंग्रेजों ने अनथक और अविरल प्रयास किए, किन्तु किसी ने भी इस बात को इतने स्पष्ट रूप में नहीं स्वीकारा है, जितना कि एडवर्ड थॉमसन नामक एक अंग्रेज़-इतिहासकार ने। इसने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा है—

‘हमारे इतिहासकारों ने भारतीय-इतिहास को एक विशेष दृष्टिकोण प्रदान किया है। उस दृष्टिकोण को बदलने के लिए जो साहसपूर्ण एवं सशक्त समीक्ष्यशक्ति अपेक्षित है, वह भारतीय-इतिहासकार अभी बहुत समय तक नहीं दे सकेंगे।’<sup>2</sup>

1. इंग्लैण्ड की पार्लियामेन्ट में दिया गया भाषण; ‘आर्यों का आदि देश और उनकी सभ्यता’, पृ. 27-28

2. भजन सिंह-कृत, ‘आर्यों का आदिनिवास मध्य हिमालय’, पृ. 19

## **भारत के इतिहास में विकृतियाँ कीं, किसने ?**

**प**रतन्त्रता की स्थिति चाहे व्यक्ति की हो या परिवार अथवा राष्ट्र की— सभी के लिए दुःखदायी होती है। पराधीन व्यक्ति/परिवार/राष्ट्र अपनी गौरव-गरिमा और महत्ता— सभी कुछ भूल जाता है या भूल जाने को बाध्य कर दिया जाता है। भारत के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ। एक हजार वर्ष की पराधीनता के काल में वह अपना स्वत्व और स्वाभिमान ही नहीं, अपना महत्त्व भी भूल गया था।

### **परतन्त्रता—काल में परकीय सत्ताओं का**

#### **इतिहास—लेखन में दखल**

परतन्त्रता के काल में परकीय सत्ताओं द्वारा सदा ही अपने अधीनस्थ देश का चाहे व्यक्ति हो या समाज, धर्म हो या संस्कृति, साहित्य हो या इतिहास, ज्ञान हो या विज्ञान— सभी में तरह-तरह की विकृतियाँ, विसंगतियाँ, विषमताएँ, दुर्बलताएँ और कमियाँ पैदा कर दी जाती हैं या करा दी जाती हैं। भारत में आई परकीय सत्ताएँ भी इसमें अपवाद नहीं रहीं। मुसलमानों ने अपने शासनकाल में यहाँ ऐसी अनेक नीतियाँ, रीतियाँ और परम्पराएँ चलाई, जिनके कारण देश में उस समय प्रचलित पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक व्यवस्थाओं की ही नहीं, यहाँ के साहित्य और इतिहास की भी दिशाएँ बदल गयीं। यही नहीं, पूरी तरह से अपना वर्चस्व स्थापित हो जाने के बाद मुस्लिमों द्वारा देश की शिक्षा-पद्धति में बदलाव लाया गया। शिक्षा में लाए गए बदलाव के फलस्वरूप संस्कृत-भाषा के विकास में रुकावटें आती गयीं। फलतः उसमें साहित्य-निर्माण और विविध प्रकार के वैज्ञानिक आदि विषयों में लेखन की अविच्छिन्न धारा अवरुद्ध होती गयी। परिणामस्वरूप भारत की शिक्षा, साहित्य, इतिहास,

ज्ञान-विज्ञान आदि के लेखन में हास की प्रक्रिया शुरू हो गयी। धीरे-धीरे ये सभी विधाएँ प्रगाढ़ अन्धकार की गलियों में पहुँचकर खोती चली गई और कालान्तर में इन विषयों के विद्वानों की संख्या भी न्यून-से-न्यूनतर होती चली गयी। ऐसी स्थिति में इतिहास विषय के महत्त्व को समझने और समझानेवालों का लोप हो जाना कोई विशेष आश्चर्य की बात नहीं रही। यही कारण रहा कि उस काल में कल्हण-विरचित ‘राजतरंगिणी’-जैसी उत्कृष्ट ऐतिहासिक रचना भी भारत में वह महत्त्व न पा सकी, जिसकी वह अधिकारिणी थी।

### जर्मन और अंग्रेज़-लेखकों में

#### भारत के सन्दर्भ में लिखने की होड़

अंग्रेज़ी-सत्ता द्वारा पोषित आधुनिक रूप में भारत के प्राचीन साहित्य, समाज और संस्कृति के इतिहास-लेखन की प्रक्रिया में मुख्य रूप से जर्मन और अंग्रेज़-विद्वानों ने आगे बढ़कर अपने-अपने लक्ष्यों और अपने-अपने दृष्टिकोणों से प्रभावित रहकर इस क्षेत्र में योगदान किया। किसी ने संस्कृत-साहित्य का इतिहास लिखा, किसी ने संस्कृत-भाषा का इतिहास लिखा, किसी ने भारत का इतिहास लिखा, किसी ने भारतीय-संस्कृति का इतिहास लिखा और किसी ने भारतीय-रचनाओं का अनुवाद किया। इस विशाल लेखन-कार्य के दौरान इन आधुनिक पाश्चात्य लेखकों ने प्राचीन भारतीय-लेखकों की आलोचनाएँ और समालोचनाएँ भी खूब डटकर कीं। उनके द्वारा लिखे गए साहित्य के परिमाण को देखने से ऐसा लगता है कि उस समय जर्मनी और इंग्लैण्ड के विद्वानों में भारत के सन्दर्भ में लिखने की होड़-सी लग गई थी, किन्तु उनके ग्रन्थों को देखने से ऐसा लगता है कि उनमें से अधिकांश ने इस क्षेत्र में हल्दी की एक-एक गाँठ लेकर पंसारी बनने का ही प्रयास किया है। कारण उनको भारतीय-जीवन की विविधता, भारतीय-साहित्य की गहनता और भारतीय-इतिहास की व्यापकता का पूर्ण तो क्या, सामान्य परिचय भी नहीं था। यही कारण रहा कि उस काल में रचित पाश्चात्य विद्वानों की रचनाओं में, चाहे वे संस्कृत-भाषा के इतिहास की हों या साहित्य के इतिहास की अथवा भारतीय-समाज या सभ्यता के इतिहास की, किसी में भी विषय का सही मूल्यांकन प्रस्तुत नहीं किया जा सका।

### यूरोप में संस्कृत-भाषा, उसके साहित्य और भारतीय-संस्कृति

#### के प्रचार से ईसाई-पादरियों में बौखलाहट

संस्कृत-भाषा और उसके साहित्य के सम्पर्क में जैसे-जैसे यूरोप के विभिन्न विद्वान्

आते गए, वैसे-वैसे वे न केवल इनके, वरन् भारतीय-संस्कृति के महत्त्व, गरिमा और महत्ता से परिचित होते गये। फलतः वे इनकी ओर बड़ी उत्सुकता तथा तेजी से बढ़े। धीरे-धीरे यूरोप में संस्कृत-भाषा, संस्कृत-साहित्य और भारतीय-संस्कृति की ज्ञान-गरिमा का प्रकाश फैलने लगा। प्रारम्भ में तो यह बात वहाँ के यहूदी और ईसाई-समुदायों ने अच्छे रूप में ली, किन्तु जैसे-जैसे इनका प्रचार अधिक मात्रा में होने लगा, तो वहाँ के ईसाई-पादरियों के कान खड़े होते गये। उन्हें अपने पैरों के नीचे से ज़मीन खिसकती दिखाई दी, क्योंकि ईसाई-पादरियों ने सत्ता के बल पर धर्म आदि के सन्दर्भ में यूरोप में तरह-तरह की झूठी बातों को सत्य का जामा पहनाकर बड़े ज़ोर-शोर से प्रचारित किया हुआ था, यथा— ईश्वर ने सृष्टि का निर्माण 4004 ई0 पू0 में किया था और इससे पूर्व कहीं भी कुछ भी नहीं था, बाइबिल में व्यक्त विचार ही सर्वश्रेष्ठ हैं, आदि-आदि। यही नहीं, ईसाई-धर्मवालों ने यह भी प्रचारित किया हुआ था कि सृष्टि-निर्माण के काल की बात को झूठा माननेवालों को सजा दी जाएगी और सजा मौत भी हो सकती थी। जबकि संस्कृत-साहित्य सृष्टि-निर्माण को करोड़ों-करोड़ वर्ष पूर्व ले जा रहा था और इससे उनकी बातें झूठी सिद्ध हो रही थीं। इसीलिए संस्कृत-साहित्य और भारतीय-संस्कृति तथा इतिहास की पुरातनता की बात उन्हें बहुत खलने लगी।

### इतिहास को विकृत करनेवाले जर्मनी और इंग्लैण्ड के लेखक

यूरोप में संस्कृत-भाषा और उसके साहित्य तथा भारतीय-संस्कृति का अधिक मात्रा में प्रचार हो जाने से वहाँ के ईसाई-धर्म-प्रचारकों में खलबली मच गई और उन्होंने इसके प्रतिकार के लिए सारे यूरोप में ही, विशेषकर जर्मनी और इंग्लैण्ड में, अनेक लेखक तैयार किये। इनमें से जर्मनी के फ्रेडरिक मैक्समूलर, रुडॉल्फ रॉथ (1821-1893), अल्ब्रेट वेबर, मोरिज़ विंटरनिट्ज़, जॉन फेथफुल फ्लीट, एमू ए स्टेन (1862-1943) तथा इंग्लैण्ड के विलियम जोन्स, मैकॉले, जेम्स मिल, सर जॉन मैलकम (1769-1833), फ्रांसिस विल्फोर्ड (1761-1822), जॉन बेंटले (1750-1824), एचू एचू विल्सन, एमू एलिफिन्सटन (1779-1859), एचू बी कीथ (1879-1944), एचू एचू मैक्डॉनल (1854-1930) अधिक उल्लेखनीय रहे। इन सभी ने अपने-अपने ढंग से भारत के इतिहास, संस्कृति और साहित्य को बिगाड़ने का प्रयास किया और खूब किया। इन लोगों ने भारतीय-तर्कों को कुतर्कों में, ज्ञान को अज्ञान में, सत्य को असत्य में, प्रमाणों को कुप्रमाणों में बदल दिया और हर प्रकार से सबके मन में यही बात बैठाने का



प्रयास किया कि प्राचीन काल में भारत में कुछ भी नहीं था। यहाँ के निवासी परस्पर लड़ते-झगड़ते रहते थे और वे ज्ञान-विज्ञानविहीन थे।

उक्त लेखकों के अलावा भी जेम्स प्रिंसेप, जेम्स लीगे, डॉ. यूले, लॉसन, मैक्स आर्थर मैकालिफ़ (1841-1913) आदि अन्य अनेक लेखक भी आगे आए, जिन्होंने अपनी-अपनी रचनाओं के माध्यम से भारत के इतिहास और साहित्य के क्षेत्रों में घुसपैठ करके उसे अधिक-से-अधिक भ्रष्ट करके अप्रामाणिक, अविश्वसनीय और अतिरंजित की कोटि में डालने का प्रयास किया।

### इतिहास के विकृतिकरण में भारत के कतिपय

#### धनलोलुप संस्कृतज्ञ भी पीछे नहीं रहे

अंग्रेज़ी-सत्ता यह भली प्रकार से जान चुकी थी कि जर्मनी अथवा इंग्लैण्ड के लोग चाहे जितनी मात्रा में सत्ता-समर्थक बातें कहते रहें, वे भारतीयों के गले में तब तक नहीं उतरेंगी, जब तक यहीं के लोग वैसा नहीं कहेंगे। अतः उन्होंने यहीं के अनेक धन-पदलोलुप संस्कृत के विद्वानों को धन, पद और प्रतिष्ठा का लालच दिखाकर पाश्चात्य विद्वानों द्वारा कही गई बातों को ही उनके अपने लेखन में दोहरवाकर अपनी बातों की पुष्टि कराने के लिए तैयार कर लिया और वे प्रसन्नतापूर्वक ऐसा करने लगे। इनमें वासुदेव विष्णु मिराशी (1893-1985), कपिल देव, पं. सुधाकर द्विवेदी (1855-1910), विश्वबन्धु, शिवशंकर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। डॉ. पाण्डुरंग वामन काणे (1880-1972), डॉ. लक्ष्मण स्वरूप, डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी (1890-1977) भी इस दृष्टि से किसी तरह से पीछे नहीं रहे।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि भारत का इतिहास बिगाड़ने में मात्र जर्मनी और इंग्लैण्ड के विद्वानों का ही नहीं, अपितु भारत के अपने विद्वानों, विशेषकर संस्कृतज्ञों का भी योगदान रहा है।

## भारत के इतिहास में विकृतियाँ कीं, कहाँ ?

अंग्रेज़ी-सत्ता के समक्ष भारत के इतिहास, धर्म और भाषा को बदलने की योजना को सार्थक बनाने में सबसे बड़ी बाधा यहाँ का अपार ज्ञान से युक्त बड़ी मात्रा में सुलभ साहित्य था। साहित्य के बल पर ही भारत के लोग बार-बार गिरकर भी सांस्कृतिक पुनर्जागरण की भावना से भरकर पुनः संघर्षरत हो उठते थे। इसमें कोई सन्देह भी नहीं है कि यह विशेषता केवल भारत की ही रही है कि सदियों तक एक के बाद दूसरे युद्धों में लगे रहने और सैकड़ों वर्षों तक निरन्तर पराधीन बने रहने पर भी वे न केवल अपने प्राचीन साहित्य के महत्त्व को ही, वरन् अपनी पुरातन संस्कृति, सभ्यता, रीति-रिवाज, रहन-सहन और धर्म के स्वरूप को भी बहुत कुछ उसी रूप में अक्षुण्ण बनाए रखने में समर्थ रह सके, जिसमें वे अत्यन्त प्राचीन काल में रहे हैं। जबकि अन्य देश ऐसा नहीं कर सके। चीन, मिस्र, यूनान, रोम आदि देश, जहाँ कभी विश्वप्रसिद्ध सभ्यताएँ जन्मीं, उभरी और विकसित हुईं, कालान्तर में अपनी संस्कृति, साहित्य, सभ्यता आदि को विस्मृति के अन्धकार में विलीन हो जाने से रोक नहीं सके। वहाँ प्राचीन काल के सभी ग्रन्थ काल के गाल में समा गये। आज वहाँ जो कुछ भी है, वह सब नया ही है। जबकि भारत में वेद, पुराण, धर्मशास्त्र, रामायण, महाभारतादि प्राचीन ग्रन्थों का आज भी वही महत्त्व और सम्मान है, जो आज से हजारों-हज़ार वर्ष पूर्व रहा है। अधिकांश भारतवासी आज भी अपनी उन्हीं प्राचीन जड़ों से जीवनी-शक्ति पाकर पल्लवित और पुष्पित हो रहे हैं। वे आज भी उन्हीं सुदृढ़ आधारों से न केवल शिक्षा और संस्कार ही पा रहे हैं, वरन् उनके अवशेषों को संभालने, सुधारने और जीवन्त बनाए रखने में भी सफल रहे हैं।

यह ठीक है कि मुसलमानी राज्यकाल में भारतीय-ज्ञान की उस अनन्त राशि में से बहुत बड़े परिमाण में ग्रन्थों को जलाकर नष्ट कर दिया गया। फिर भी

एक-से-एक श्रेष्ठ ऐसे अनेक ग्रन्थ यहाँ सुलभ रहे, जो देश, धर्म, समाज और संस्कृति को ऊँचा उठाए रखने में पूरी तरह से समर्थ हैं। अंग्रेज़ी-सत्ता यह बात भली प्रकार से समझ चुकी थी कि जब तक भारत के उन ग्रन्थों और उनके महत्त्व को पूरी तरह से समाप्त नहीं कर दिया जाएगा, तब तक इस देश को अधिक समय तक परतंत्र नहीं रखा जा सकेगा। समय बदल चुका था, अब अंग्रेज़ उन ग्रन्थों सहित अपार साहित्य को जलाकर तो नष्ट कर नहीं सकते थे। हाँ, उनके महत्त्व को कम अवश्य कर सकते थे। अतः उनका पहला प्रयास यही हुआ कि भारत के प्राचीन इतिहास और उसकी संस्कृति के मूल स्रोत— साहित्यिक, धार्मिक एवं ऐतिहासिक ग्रन्थों की श्रेष्ठता और महत्ता को नकारा जाए। इसके लिए उनके प्रति समाज में अनादर, अनास्था, अविश्वास और अरुचि की भावना पैदा कराना आवश्यक था। इसलिए अंग्रेज़ों ने उन ग्रन्थों और उनमें स्थापित मान्यताओं के बारे में ऐसी मनगढ़ंत बातें प्रचारित कराईं, जिनके आधार पर उन ग्रन्थों को अविश्वसनीय, अतिरंजित, कल्पित और अप्रामाणिक बताकर उन्हें महत्त्वहीन और काल्पनिक करार देना सहज हो गया। इस कार्य में तत्कालीन अंग्रेज़ी-सत्ता ने ऐसे पाश्चात्य विद्वानों का सहयोग लिया जो साहित्य, इतिहास, पुरातत्त्व आदि क्षेत्रों से संबंधित थे। उन लोगों के माध्यम से अंग्रेज़ी-सत्ता ने ऐतिहासिक प्रमाणों से युक्त ऐसे भारतीय-ग्रन्थों/अभिलेखों में, जिनसे भारत की प्राचीनता और श्रेष्ठता सिद्ध होती थी, या तो पाठ बदलवा दिया या भारत की प्राचीनता को कम करने की दृष्टि से भारतीय-इतिहास के प्राचीन राजवंशों के न केवल राज्यकालों को ही कम करके दिखलवाया, अपितु अनेक राजाओं की आयु को कम करके उनके राज्यकालों को भी कम करवा दिया। अपनी कल्पित कालगणना को सही सिद्ध करवाने की दृष्टि से प्राचीन भारतीय-संवत्‌तों को पूरी तरह से नकारकर न केवल उन्हें महत्त्वहीन करवाया, वरन अप्रामाणिक सिद्ध करने के लिए उनमें तरह-तरह की गड़बड़ियाँ भी करवायीं, यथा— किसी का तो प्रयोग न करके उसको एकदम अमान्य कर दिया, किसी का नाम बदल दिया और किसी को दूसरे के साथ मिला दिया। जहाँ तक पुरातात्विक साक्ष्यों का संबंध था, उनसे भी भारत की प्राचीनता सिद्ध हो सकती थी, और कुछ मात्रा में सिद्ध हुई भी, किन्तु अधिकांश साक्ष्यों की वास्तविक प्राचीनता को पुरातात्विक सामग्री के सन्दर्भ में वैज्ञानिक-आधारों पर कराए गए विश्लेषणों से निकले निष्कर्षों को भ्रमपूर्ण बनवाकर झुठलवा दिया।

कहने का अभिप्राय यह है कि भारत में अंग्रेज़ी-सत्ता से जुड़े पाश्चात्य विद्वानों ने भारत के इतिहास को आधुनिक रूप में लिखे जाने से पूर्व के स्व-निर्धारित निष्कर्षों को सही सिद्ध करने के लिए भारतीय-साहित्य, मान्यता, परम्परा, इतिहास आदि में चाहे कुछ भी बदल क्यों न करनी पड़ी हो, वह निर्द्वन्द्व होकर, निःसंकोच भाव से और बड़ी निर्ममतापूर्वक कर डाली, क्योंकि वे उस समय देश के शासक थे। उन्होंने जोर देकर भी अपने असत्य को सत्य कहलवाकर भारतीयों से मनवाया, लेकिन क्या वे अपनी मनमर्जी से ऐसे परिवर्तन के अधिकारी थे ?

भारतीय-साहित्य, इतिहास आदि में उन्होंने जो विकृतियाँ की हैं, उनके अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं, किन्तु यहाँ कुछ को ही निम्नलिखित चार खण्डों में विभाजित करके दिया जा रहा है—

### प्राचीन ग्रन्थों/अभिलेखों में

पाश्चात्य विद्वानों/इतिहासज्ञों ने अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भारतीय-ग्रन्थों के मूल पाठों में कहीं अक्षरों में, कहीं शब्दों में और कहीं-कहीं वाक्यावली में अपनी मनमर्जी के परिवर्तन किए या करवाए। यही नहीं, वाक्यावली में परिवर्तन के साथ-साथ कहीं-कहीं प्रक्षिप्तांश जोड़ दिए तो कहीं-कहीं मूल अंश लुप्त भी करा दिए, यथा—

### क. अक्षर-परिवर्तन

**विष्णुमहापुराण—** इस पुराण में मौर्य-वंश का राज्यकाल 337 वर्ष दिया गया था, किन्तु संबंधित श्लोक ‘त्र्यब्दशतसप्तत्रिंशदुत्तरम्’ में ‘त्र्य’ को बदल कर ‘अ’ अक्षर करके अर्थात् ‘त्र्यब्द’ को ‘अब्द’ बनाकर 300 की जगह 100 करके वह काल 137 वर्ष का कर दिया गया।<sup>1</sup>

आज के अधिकतर विद्वान् 137 वर्ष को ही सही मानते हैं, किन्तु कलिंग-नरेश खारवेल (145-120 ई पू ) के हाथीगुम्फा-अभिलेख में मौर्य-वंश के संदर्भ में ‘165वें वर्ष’ का स्पष्ट उल्लेख होने से मौर्य-वंश के राज्यकाल को 137 वर्षों में समेटा नहीं जा सकता, विशेषकर उस स्थिति में जब हाथीगुम्फा-अभिलेख

1. 'The Plot in Indian Chronology', Volume XVII of Arya Vijnana publication, by Pt. Kota Venkatachalam, 1953, p.76

ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक माना जा चुका है।

मत्स्यमहापुराण, एहोल-अभिलेख आदि में भी ऐसा ही किया गया है।

## ख. शब्द-परिवर्तन

पं सिद्धान्तिका— प्रख्यात खगोलशास्त्री वराहमिहिर की 'पञ्चसिद्धान्तिका' में एक पद अपने मूल रूप में इस प्रकार से आया है—

‘सप्ताश्विवेद संख्यं शककालमपास्य चैत्रशुक्लादौ।

अर्धास्तमिते भानौ यवनपुरे सौम्यदिवसाद्य॥’

अर्थात् 427 शक काल के चैत्र मास की शुक्ल प्रतिपदा को सौम्य दिवस, अर्थात् सोम का पुत्र बुध-बुधवार-था, जबकि यवनपुर में अर्द्ध सूर्यास्त हो रहा था। उक्त पद में यद्यपि स्पष्ट रूप से सौम्य अर्थात् सोम के पुत्र 'बुध' का उल्लेख है, किन्तु गणना करने पर जब ज्ञात हुआ कि इस तिथि को बुधवार नहीं, वरन् मंगलवार था, तो कतिपय विद्वानों ने मूल पाठ में परिवर्तन करके 'सौम्य' को 'भौम' बनाकर काम चलाया। 'भौम' का अर्थ भूमि का पुत्र, अर्थात् मंगल होता है, किन्तु ऐसा करना ठीक नहीं रहा, क्योंकि उक्त पद में उल्लिखित शककाल वर्तमान में प्रचलित शालिवाहन शक का वाचक नहीं है। वस्तुतः वह विक्रम पूर्व आरम्भ हुए शक संवत् (शकनृपतिकाल) का वाचक है। इन दो शककालों में यथास्थान सही अन्तर न करने से बहुत-सी घटनाओं के 500 से अधिक वर्ष पीछे हो जाने पर कालगणना में भ्रम का पर्दा पड़ गया है।

ऐसे ही परिवर्तन 'चान्द्रव्याकरण', खारवेल के हाथीगुम्फा-अभिलेख आदि में भी किए गए हैं।

## ग. अर्थ-परिवर्तन

अल्-बीरूनी का यात्रा-वृत्तान्त— फ़ारसी-विद्वान् अल्-बीरूनी (973-1048) ने अपने यात्रा-वृत्तान्त में गुप्त संवत् के प्रारम्भ होने के काल का उल्लेख करते हुए लिखा है कि गुप्त-शासकों के समाप्त हो जाने पर 241 शक में उनकी स्मृति में 'गुप्त संवत्' प्रचलित हुआ था। इसका अंग्रेज़ी-अनुवाद ठीक यही भाव प्रकट करता था, किन्तु फ़्लीट (जॉन फ़ेथफुल फ़्लीट : 1847-1917) के मन्तव्य को यह अनुवाद पूरा नहीं करता था। अतः उसने बार-बार एक-एक शब्द का अनुवाद

कराया। उसे वही अनुवाद चाहिए था जो उसके उद्देश्य की पूर्ति कर सके।<sup>1</sup>

## घ. पाठ-परिवर्तन

पुं कोटावेंकटचलम् के अनुसार सुधाकर द्विवेदी ने आर्यभट्ट के ग्रन्थ 'आर्यभटीयम्' के पद में छापते समय टी. एसू. नारायण स्वामी के मना करने पर भी पाठ में परिवर्तन कर दिया, जो कि अवांछित था।<sup>2</sup>

## ड. प्रक्षिप्तांश जोड़ना

पार्जोटर तो स्वरचित एक पद पुराणों में घुसाना चाहते थे जबकि वे इसके अधिकारी नहीं थे।<sup>3</sup>

## च. पाठ विलुप्त करना

सन् 1855 ई. में अल्ब्रेट वेबर ने 'शतपथब्राह्मण' का भाष्य, जिसके साथ हरिस्वामी का भाष्य और द्विवेदी का गंगाभाष्य भी था, बर्लिन से प्रकाशित कराया था, किन्तु उसमें वे श्लोक विलुप्त हैं जिनमें विक्रमादित्य की प्रशंसा की गई है, जबकि वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई द्वारा 1940 ई. में प्रकाशित इसी भाष्य में वे श्लोक विद्यमान हैं। यह पाठ जान-बूझकर विलुप्त कराए गए हैं, क्योंकि विक्रमादित्य को भारत के इतिहास में दिखाना ही नहीं था।<sup>4</sup>

## प्राचीन राजाओं तथा राजवंशों की

### संख्याओं तथा राज्यकालों के ब्यौरे में

भारत की प्राचीनता को कम करके आँकने की दृष्टि से पाश्चात्य इतिहासकारों ने न केवल भारतीय-इतिहास में प्राचीन राजाओं की आयु को कम करके उनके राज्यकालों को ही पीछे धकेल दिया, वरन् अनेक राजवंशों के राजाओं की संख्या तथा राज्यकालों को भी कम करके आँका। सैकड़ों-हज़ारों वर्ष पूर्व हुए राजाओं की संख्या और राज्यकालों को बिना ठोस आधार के आज मात्र कलम की नोक से कम कर देना या काट देना उचित नहीं है।

1. 'अलबेरूनी का भारत', भाग 3, अनुवादक : संतराम बी. ए. , पृ. 9

2. 'भारतीय इतिहास पर दासता की कालिमा', पृ. 38

3. 'The Plot in Indian Chronology', p.89

4. 'Chronology of Kashmir history reconstructed', by Pt. Kota Venkatachalam, Published by Guntor Dt., 1955, pp.203-208

**मगध-राजवंशावली—** मगध साम्राज्य के विभिन्न राजवंशों और राजाओं की संख्या तथा राज्यकालों के लिए विलियम जोन्स ने अलग-अलग आधारों पर कई सूचियाँ तैयार कीं, किन्तु सभी का ब्यौरा अलग-अलग ही रहा। उसमें से किसी से भी उसकी संतुष्टि नहीं हुई। बार-बार सूचियों के परिवर्तन का मुख्य कारण येनकेनप्रकारेण भारतीय-इतिहास की प्राचीनता को कम करके आँकने का रहा।

पहली सूची में जोन्स द्वारा निर्धारित और भारतीय-पुराणों के आधार पर निर्मित विभिन्न राजवंशों के राजाओं की संख्या और उनके राज्यकालों की तुलनात्मक स्थिति इस प्रकार रही—

राजवंश	राजाओं की संख्या		राज्यकाल	
	जोन्स	पुराण-ग्रन्थ	जोन्स	पुराण-ग्रन्थ
बार्हद्रथ	20	22	1,000	1,006
प्रद्योत	5	5	138	138
शिशुनाग	10	10	360	360
नन्द	1	9	100	100
मौर्य	10	12	137	316
शुंग	10	10	112	300
कण्व	4	4	345	85
आन्ध्र	30	32	456	506

दूसरी और तीसरी सूचियों में जो तुलनात्मक स्थिति बनी, वह तो और भी अधिक भ्रामक रही।

विन्सेंट आर्थर स्मिथ (1843-1920) ने विभिन्न राजवंशों का राज्यकाल इस रूप में निर्धारित किया—

राजवंश	राज्यकाल <sup>1</sup>
नन्द	45 (1 0 0)
मौर्य	1 3 7 (3 1 6)
शुंग	1 1 2 (3 0 0)

1. *Dates of the Buddha*, by Ram Sathe, p.69; कोष्ठकों में दी गई संख्याएँ पुराणों के अनुसार हैं।

कण्व	45	(8 5)
आन्ध्र	289	(5 0 6)
गुप्त	149	(2 4 5)

## काश्मीर और नेपाल की राजवंशावलियाँ

पाश्चात्य इतिहासकारों ने ऐसा उलट-फेर भारत के मगध-साम्राज्य के राजाओं के सन्दर्भ में ही नहीं, अपितु काश्मीर और नेपाल राज्यों की राजवंशावलियों में भी किया है, ताकि वे भी भारत की प्राचीनता को सिद्ध कर सकने में असमर्थ हो जाएँ।

## प्राचीन संवतों में

अपनी कल्पित कालगणना को सही सिद्ध करने के लिए पाश्चात्य इतिहासकारों ने भारतीय-संवतों को पूरी तरह से नकारकर उन्हें महत्त्वहीन तो बनाया ही, साथ ही प्राचीन काल से चले आ रहे विभिन्न संवतों को अप्रामाणिक सिद्ध करने के लिए उनमें तरह-तरह की गड़बड़ियाँ भी कीं। इसके लिए उन्होंने तीन मार्ग अपनाए, यथा—

(क) प्राचीन संवतों में से युधिष्ठिर, कलि, सप्तर्षि और शूद्रक संवतों को अप्रामाणिक मानकर इनका कहीं भी प्रयोग न करके इन्हें नकार दिया, जबकि प्राचीन काल में भारत में इनका प्रयोग सभी कार्यों में किया जाता रहा था।

(ख) प्राचीन संवतों में से मालवगण, शकनृपतिकाल और श्रीहर्ष संवतों की व्याख्या अपने ही ढंग से करके इन्हें तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किया।

(ग) गुप्त-वल्लभी तथा गुप्त, विक्रमी तथा मालवगण और शालिवाहन तथा शक संवतों का नाम बदलकर एक को दूसरे संवतों में मिलाकर नयी विकृतियों को जन्म दिया।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि संवतों में की गई इन गड़बड़ियों के कारण भारतीय-कालगणना में बहुत बड़ी मात्रा में बिगाड़ तो आया ही, साथ ही इनके कारण अनेक ऐतिहासिक भ्रान्तियाँ भी पैदा हो गयीं।

उक्त संवतों के अतिरिक्त भी भारत में पारद संवत्, कल्चुरी संवत्, भोज संवत्, गांगेय संवत् आदि अनेक छोटे-छोटे संवत् प्रचलित रहे हैं। आचार्य रामदेव ने अपनी पुस्तक में ऐसे 43 संवतों की सूची दी है, जिनका प्रयोग क्षेत्रीय स्तरों पर

किया जाता था।<sup>1</sup> इन सभी संवतों के साथ अनेक ऐतिहासिक व्यक्तित्व, घटनाएँ और परम्पराएँ जुड़ी हुई हैं। यदि इनका ठीक प्रकार से अध्ययन करके भारत का इतिहास लिखा जाता तो बहुत-सी ऐसी ऐतिहासिक घुण्डियाँ खुल जातीं और विभिन्न ऐसी भ्रान्तियों का निर्माण ही न होता, जिनके लिए पाश्चात्य विद्वानों को बहुत-सी मिथ्या कहानियों की कल्पना करनी पड़ी तथा जिनके कारण पूरा इतिहास ही बिगड़ गया। यह ठीक है कि थोड़ी-बहुत अस्पष्टता इन संवतों में भी रही होगी, किन्तु ज्यादा गड़बड़ियाँ तो पाश्चात्य विद्वानों द्वारा कुछ तो स्थिति की अज्ञानता और अस्पष्टता के कारण और कुछ जान-बूझकर पैदा की गई, ताकि इन्हें अप्रामाणिक बनाया जा सके।

### पुरातात्विक सामग्रियों के निष्कर्षों में

प्राचीन इतिहास को जानने का एक प्रमुख आधार किसी भी स्थान-विशेष से उत्खनन में प्राप्त पुरातात्विक सामग्री, यथा— ताम्रपत्र तथा अन्य प्रकार के अभिलेख, सिक्के, मुहरें तथा प्राचीन नगरों, किलों, मकानों, मृदूभाण्डों, मन्दिरों, मूर्तियों, स्तम्भों आदि के अवशेषों को माना जाता है। ऐतिहासिक महत्त्व के क्रम की दृष्टि से इसमें से प्रथम स्थान ताम्रपत्रों एवं अन्य प्रकार के अभिलेखों तथा सिक्कों और मुहरों को और दूसरा स्थान पुरातन सामग्री के अवशेषों को दिया जाता है।

पुरातत्त्वशास्त्र विज्ञानसम्मत है। इस शास्त्र के आधार पर किए गए अनुसन्धानों से अनेक उल्लेखनीय ऐतिहासिक तथ्य उजागर होते रहे हैं, किन्तु इस शास्त्र के आधार पर निष्कर्ष निकालनेवाले विद्वान् जब कुछ अधिक स्वतन्त्रता से काम लेने लगते हैं और उसके परिणामस्वरूप जो निष्कर्ष निकालते हैं, वे बड़े ही अस्वाभाविक, असहज और विचित्र होते हैं। भारतवर्ष के प्राचीन ऐतिहासिक परिदृश्य के सन्दर्भ में एक-दो नहीं, बल्कि अनेक ऐसे निष्कर्ष निकाले गए हैं जो इस शास्त्र की विश्वसनीयता पर एक बड़ा प्रश्नचिह्न लगा देते हैं। प्रायः देखने में आता है कि किसी एक ही विषय के कोई से भी दो विद्वान् कभी भी उस विषय के सन्दर्भ में निकाले गए पुरातात्विक निष्कर्षों पर एकमत नहीं हो पाते, जिससे सही स्थिति को जानने का प्रयास करने पर निराशा ही हाथ लगती है। स्पष्ट है कि पुरातत्त्ववेत्ताओं के निष्कर्षों में निश्चयात्मकता की कमी रहती आई है। यह कमी

कभी-कभी तो भूल-चूक के कारण होती रही है और कभी स्वार्थ-सिद्धि के निमित्त जान-बूझकर भी पैदा की जाती रही है।

**पुरातात्विक सामग्रियों के वैज्ञानिक-विश्लेषणों से निकले निष्कर्षों में विकृतियाँ—** जहाँ तक पुरातात्विक सामग्री का संबंध है, उससे भी भारत की प्राचीनता सिद्ध हो सकती थी और कुछ मात्रा में हुई भी, किन्तु अधिकांश सामग्री की वास्तविक प्राचीनता को पुरातात्विक सामग्री के वैज्ञानिक-विश्लेषणों से निकले निष्कर्षों को भ्रमपूर्ण बनाकर नकार दिया।

भारत के सन्दर्भ में मिले प्राचीन अभिलेखों के सन्दर्भ में पुरातत्त्ववेत्ताओं द्वारा जो निष्कर्ष निकाले गए हैं, उन्हें निम्नलिखित रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है—

1. कई प्रामाणिक अभिलेखों को ज़बरदस्ती अप्रामाणिक सिद्ध करने का प्रयास किया गया। इसके लिए 3 मार्ग अपनाए गये—
  - (क) पाश्चात्यों की अवधारणाओं के विपरीत जानेवाले अभिलेखों, सिक्कों आदि को सीधे ही अप्रामाणिक मान लिया गया, यथा— महाराजा जनमेजय और राजा शतधन्वा के ताम्रपत्र
  - (ख) पाश्चात्यों की मनमर्जी के विरुद्ध जानेवाले अभिलेखों, सिक्कों आदि की इवारत के अनुवादों की मनमानी व्याख्याएँ कीं या कराई गई, यथा— खारवेल के हाथीगुम्फा-अभिलेख, तोरमाण और सिकन्दर-पुरु के युद्ध से संबंधित सिक्के
  - (ग) पाश्चात्यों ने अभिलेखों का वही अनुवाद सही माना जो उनकी मनमर्जी का रहा, यथा— अल्-बीरुनी के गुप्त संवत्-संबंधी अंश के फ्लीट द्वारा कराए गए कई अनुवाद।
2. कई अप्रामाणिक अभिलेखों को ज़बरदस्ती प्रामाणिक सिद्ध करने का प्रयास किया गया, यथा— मन्दसौर-अभिलेख सृं 164 और 165, जो यशोधर्मन नामक सम्राट् से संबंधित बताए गए हैं। यह सम्राट् भारत के इतिहास में आँधी की तरह आया और तूफ़ान की तरह चला गया। न इसके माता-पिता का पता और न इसकी सन्तान का। लगता है इसका माँ-बाप, पुत्र— सभी फ्लीट ही रहा है।

1. 'भारतवर्ष का इतिहास', तृतीय खण्ड, प्रथम भाग, पृ 14-16



## भारत के इतिहास में विकृतियाँ की गई, कैसे ?

इ स्ट इण्डिया कम्पनी के प्रोत्साहन पर भारत के इतिहास को आधुनिक रूप में लिखने की प्रक्रिया में पाश्चात्य विद्वानों ने इतिहास को इतना बदल या बिगाड़ दिया कि वह अपने मूल रूप को ही खो बैठा। इसके लिए जहाँ कम्पनी-सरकार का राजनीतिक स्वार्थ बहुत अंशों तक उत्तरदायी रहा, वहीं भारत के इतिहास को आधुनिक रूप में लिखने के प्रारम्भिक दौर के पाश्चात्य लेखकों की शिक्षा-दीक्षा, रहन-सहन, खान-पान आदि का भारतीय-परिवेश से एकदम भिन्न होना भी एक प्रमुख कारण रहा। उनके मन और मस्तिष्क पर अपने-अपने देश की मान्यताओं, धार्मिक आस्थाओं और समाज की भावनाओं का प्रभाव पूरी तरह से छाया हुआ था। उनकी सोच एक निश्चित दिशा लिए हुए थी, जो कि भारतीय-जीवन की मान्यताओं, भावनाओं, आस्थाओं और विश्वासों से एकदम अलग थी। यही कारण था कि उन्हें भारतीय-परिवेश की वे साधारण-से-साधारण बातें और सामान्य-से-सामान्य तथ्य असाधारण और असामान्य प्रतीत हुए, जो उनके देश, धर्म और समाज के वातावरण के आधार पर परिपुष्ट विचारों के विपरीत थे। उन्हें तो भारत के सन्दर्भ में वे ही कथ्य और तथ्य रुचिकर हुए, जो उनकी दिशा-दृष्टि के अनुकूल थे। भले ही वे अपुष्ट और सुनी-सुनाई बातों के आधार पर लिखे गए विदेशियों के दौरों के वृत्तान्तों के ही क्यों न रहे हों। व्यक्ति का लेखन-कार्य उसके विचारों का मूर्तरूप होता है। अतः भारतीय-इतिहास का लेखन करते समय पाश्चात्य इतिहासकारों/विद्वानों की भावनाएँ और विचार, रीतियाँ और प्रवृत्तियाँ, परम्पराएँ और परिपाटियाँ तथा मत और मान्यताएँ उनके लेखन में पूर्णतः प्रतिबिम्बित हुई हैं।

**भावनाएँ और विचार :** पाश्चात्य विद्वानों को उनकी राजनीतिक दृष्टि से विजयी जाति के दर्प ने, सामाजिक दृष्टि से श्रेष्ठता की सोच ने, धार्मिक

दृष्टि से ईसाइयत के सिद्धान्तों के समर्थन ने और सभ्यता तथा संस्कृति की दृष्टि से उच्चता के गर्व ने एक क्षण को भी अपनी मान्यताओं तथा भावनाओं से हटकर यह सोचने की स्थिति में नहीं आने दिया कि वे जिस देश, समाज और सभ्यता का इतिहास लिखने जा रहे हैं, वह उनसे एकदम भिन्न है। उसकी मान्यताएँ और आस्थाएँ, उसके विचार और दर्शन, उनकी भावनाएँ और विश्वास तथा उसके तौर-तरीके, उनके अपने देशों से मात्र भिन्न ही नहीं, कोसों-कोसों दूर भी हैं।

**रीतियाँ और प्रवृत्तियाँ :** इस सन्दर्भ में पाश्चात्य इतिहासकारों की यह रीति या प्रवृत्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि उनके किसी भी सहयोगी-विद्वान् ने भारत के सन्दर्भ में यदि कोई सिद्धान्त बनाया, यदि कोई मान्यता स्थापित की, यदि कोई निष्कर्ष निकाला, या कोई विशिष्ट उल्लेख किया, तो शेष सभी ने न केवल उसको पूरी-पूरी मान्यता दी, वरन् उसकी बात को पूरा वजन देकर सही माना और उसका पूर्ण समर्थन किया। फिर यह रीति और प्रवृत्ति 18वीं और 19वीं शती के पाश्चात्य विद्वानों की तो रही ही, बाद में आनेवाली पीढ़ी के पाश्चात्य विद्वान् और उनसे प्रभावित भारतीय-विद्वान् भी इससे पूरी तरह जुड़े रहे। फलतः जोन्स आदि ने जिन मापदण्डों/निष्कर्षों/सिद्धान्तों/मान्यताओं को स्थापित किया था, उन्हें सभी पाश्चात्य विद्वानों ने, चाहे वे भाषाशास्त्री रहे हों या पुरातत्त्ववेत्ता, साहित्यकार रहे हों या इतिहासकार अथवा वैज्ञानिक रहे हों या समाजशास्त्री— सत्य मानकर पूर्ण मान्यता प्रदान की। भले ही उनके मानदण्ड/निष्कर्ष/सिद्धान्त/मान्यताएँ कितनी ही अपूर्ण, अस्वाभाविक और अवास्तविक क्यों न रही हों। उनकी सत्यता को यदि किसी भी व्यक्ति ने, किसी भी कारण से असत्य सिद्ध करने का प्रयास किया, तो सभी ने सामूहिक रूप से डटकर उससे लोहा लिया है।

**परम्पराएँ और परिपाटियाँ—** पाश्चात्य विद्वानों की यह परम्परा या परिपाटी भी ध्यान देने योग्य है कि वे किसी भी भारतीय-मत, मान्यता या तर्क को एकदम सीधे नहीं काटते थे, वरन् वे उसे काटने के लिए एक ऐसा वातावरण बनाते थे कि लोगों को लगे कि इस सन्दर्भ में उन्होंने निष्पक्ष रहकर बड़ी गम्भीरता से, बड़ी लगन से और बड़ी तार्किकता से विचार किया गया है। इसके लिए वे भारतीय-सामग्री के प्रति पहले तो निरर्थक-सा सन्देह पैदा कर देते थे और बाद में वैज्ञानिकता का लबादा ओढ़कर और सन्देह का लाभ देकर अपनी निरर्थक-से-निरर्थक बात को भी पूरा जोर लगाकर भारतीयों पर जबरदस्ती थोप

देते थे। उसमें यदि कुछ कमी रह जाती थी, तो उनके अन्य सहयोगी या बाद में आनेवाले लेखक पूरी कर देते थे।

**मत और मान्यताएँ—** इस दृष्टि से यह भी उल्लेखनीय है कि पाश्चात्य जगत् से आए सभी विद्वान् ईसाइयत के अनुयायी थे। अपनी धार्मिक मान्यताओं और विश्वासों तथा अपने देश और समाज के परिवेश के अनुसार हर बात को सोचना और तदनुसार लिखना उनकी अनिवार्यता थी। ईसाई-मत की इस मान्यता के होते हुए कि ईश्वर ने सृष्टि का निर्माण 23 अक्टूबर, 4004 ई. पू. को किया था, उनके लिए यह विश्वास कर पाना कि भारतवर्ष का इतिहास करोड़ों वर्ष प्राचीन हो सकता है, कठिन था; उनके पूर्वज ईसा पूर्व के वर्षों में जंगलों में पेड़ों की छाल पहनकर रहते थे तो वे कैसे मान सकते थे कि भारत में लाखों-लाख वर्ष पूर्व मनुष्य अत्यन्त विकसित स्थिति में रहे होंगे ? वे मांसाहारी थे, अतः उनके लिए वह मान लेना कि भारत का आदिमानव मांसाहारी ही रहा होगा, स्वाभाविक ही था। इस स्थिति में वे यह कैसे मान सकते थे कि प्रारम्भिक मानव निरामिशभोजी रहा होगा ? कहने का भाव है कि भारतीय-इतिहास की हर घटना, हर तथ्य और हर कथ्य को वे अपनी ही विचार-कसौटी पर कसकर उसके पक्ष में और विपक्ष में निर्णय लेने के लिए प्रतिबद्ध थे।

वस्तुतः पाश्चात्य विद्वानों का मानसिक क्षितिज एक विशिष्ट प्रकार के साँचे में ढला हुआ था, जिसके फलस्वरूप उनकी समस्त सोच और शोध का दायरा एक संकीर्ण सीमा में आबद्ध था। अतः उनके चिन्तन की दिशा और कल्पना की उड़ान उस दायरे से आगे बढ़ ही नहीं सकी और वे लोग एक प्रकार की मानसिक जड़ता से ग्रस्त हो गये। इसीलिए उनका शोध-कार्य विविधतापूर्ण होते हुए भी अपने मूल में संकुचित और विकृत रहा। फलतः उन्होंने भारत के ऐतिहासिक कथ्यों को अमान्य करके उसके इतिहास-लेखन के क्षेत्र के चारों ओर अपनी-अपनी मान्यताओं और भावनाओं के साथ-साथ अपने निष्कर्षों का एक ऐसा चक्रव्यूह-सा बना दिया कि उससे निकल पाना आगे आनेवाले विद्वानों के लिए सम्भव ही नहीं हो सका, जो उसमें एक बार फँसा, वह अभिमन्यु की तरह फँसकर ही रह गया। अधिकांश भारतीय-इतिहासकार, पुरातत्त्ववेत्ता, भाषाविद्, साहित्यकार, चिन्तक और विवेचक भी इसी के शिकार हो गये। जबकि यह एक वास्तविकता है कि भारत के इतिहास को आधुनिक रूप में लिखते समय पाश्चात्य लेखकों ने पुष्ट-से-पुष्ट भारतीय-तथ्यों को तो अपने बेबुनियाद तर्कों

द्वारा काटा है, किन्तु अपनी और अपनों के द्वारा कही गई हर अपुष्ट-से-अपुष्ट, अनर्गल-से-अनर्गल और अस्वाभाविक-से-अस्वाभाविक बात को भी सही सिद्ध करने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाया है। इसके लिए उन्होंने विज्ञानवाद, विकासवाद आदि न जाने कितने मिथ्या सिद्धान्तों और वादों की दुहाई दी है। इसके परिणामस्वरूप भारत के इतिहास, सभ्यता और संस्कृति में जो बिगाड़ पैदा हुआ, उसकी उन्होंने रत्तीभर भी चिन्ता नहीं की।

उक्त आधारों पर भारत के इतिहास को कैसे-कैसे बिगाड़ा गया, इसके कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

### भारत के प्राचीन विद्वानों को

#### कालगणना—ज्ञान से अनभिज्ञ मानकर

पाश्चात्य इतिहासकारों ने भारतीय-इतिहास की प्राचीन तिथियों का निर्धारण करते समय यह बात बार-बार दुहराई है कि भारत के प्राचीन इतिहास का तिथिक्रम निर्धारित करना सर्वाधिक कठिन कार्य है; क्योंकि प्राचीन काल में भारतीय-विद्वानों के पास तिथिक्रम निर्धारित करने की कोई समुचित व्यवस्था नहीं थी। कई पाश्चात्य विद्वानों ने तो यहाँ तक कह दिया है कि प्राचीन काल में भारतीयों का इतिहास-ज्ञान ही शून्य था। उन्हें तिथिक्रम का व्यवस्थित हिसाब रखना आता ही नहीं था। इसीलिए उन्हें सिकन्दर के भारत पर आक्रमण से पूर्व की विभिन्न घटनाओं के लिए भारतीय-स्रोतों के आधार पर बननेवाली तिथियों को नकारना पड़ा, किन्तु उनका यह कहना ठीक नहीं है। कारण ऐसा तो उन्होंने जान-बूझकर किया था, क्योंकि उन्हें अपनी काल्पनिक कालगणना को मान्यता जो दिलानी थी। यदि भारत के प्राचीन विद्वान् इतिहास-ज्ञान से शून्य होते, तो प्राचीन काल के जो ताम्रपत्र या शिलालेख आज मिलते हैं, वे तैयार ही नहीं कराए जाते। ऐसे अभिलेखों की उपस्थिति में भारत के प्राचीन विद्वानों पर पाश्चात्य विद्वानों का कालगणना या तिथिक्रम की गणना से अनभिज्ञ होने के कारण उसका व्यवस्थित हिसाब न रख पाने का दोषारोपण बड़ा ही हास्यास्पद लगता है। विशेषकर इसलिए भी कि भारत में तो कालगणना का एक शास्त्र ही पृथक् से है, जिसमें एक सैकड़ के 30,375वें भाग से कालगणना की व्यवस्था है। नक्षत्रों की गतियों के आधार पर निर्धारित भारतीय-कालमान में परिवर्तन और अन्तर की बहुत ही कम सम्भावना रहती है। विभिन्न प्राचीन ग्रन्थों, यथा— *अथर्ववेद*, भागवतादि विभिन्न पुराण, *महाभारत* आदि में काल-विभाजन और उसके

गणनाक्रम पर बड़े विस्तार से विचार प्रकट किए गए हैं। कुछ के उदाहरण इस प्रकार हैं—

**भागवतमहापुराण—** इसके तृतीय स्कन्ध के 11वें अध्याय में कालगणना पर विचार किया गया है, जिसके अनुसार भारतीय-कालगणना में सबसे छोटी इकाई ‘परमाणु’ है—

**‘स कालः परमाणुर्वे यो भुङ्क्ते परमाणुताम्।’**

अर्थात्, सूर्य की रश्मि परमाणु के भेदन में जितना समय लेती है, उसका नाम परमाणु है। परमाणु काल से आगे का काल-विभाजन इस प्रकार है—

2 परमाणु = 1 अणु, 3 अणु = 1 त्रसरेणु, 3 त्रसरेणु = 1 त्रुटि, 100 त्रुटि = 1 वेध, 3 वेध = 1 लव, 3 लव = 1 निमेष, 3 निमेष = 1 क्षण (एक क्षण में 1.6 सेकेंड अथवा 48,600 परमाणु होते हैं), 5 क्षण = 1 काष्ठा, 15 काष्ठा = 1 लघु, 15 लघु = 1 नाड़िका (दण्ड), 2 नाड़िका = 1 मुहूर्त, 3 मुहूर्त = 1 प्रहर, 8 प्रहर = दिन-रात

इसी प्रकार दिन, पक्ष, मास, वर्षादि का ज्ञान भी उस समय पूरी तरह से था।

**महाभारत—** इसके वनपर्व के 188वें अध्याय में सृष्टि-निर्माण, सृष्टि-प्रलय, युगों की वर्ष-संख्या, अर्थात् कालगणना के सन्दर्भ में विचार किया गया है। इसमें लिखा है कि एक कल्प या एक हजार चतुर्युगों की समाप्ति पर आनेवाले कलियुग के अन्त में सात सूर्य एक साथ उदित हो जाते हैं और तब उष्मा इतनी बढ़ जाती है कि पृथिवी का सब जल सूख जाता है, आदि-आदि—

**‘ततो दिनकरैर्दीप्तैः सप्तभिर्मनुजाधिप।**

**पीयते सलिलं सर्वं समुद्रेषु सरित्सु च॥’**<sup>2</sup>

**विभिन्न पुराण—** पौराणिक कालगणना काल की भाँति अनन्त है। यह बहुत ही व्यापक है। इसके अनुसार कालगणना को दिन, रात, मास, वर्ष, युग, चतुर्युग, मन्वन्तर, कल्प, सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की आयु आदि में विभाजित किया गया है। यही नहीं, इसमें मानव के दिन, मासादि, देवताओं के दिन, मासादि तथा ब्रह्मा

के दिन, मासादि से भिन्न बताए गए हैं। एक कल्प में एक हजार चतुर्युग होते हैं। एक हजार चतुर्युगों में 14 मन्वन्तर, यथा— 1. स्वायम्भुव, 2. स्वरोचिष, 3. उत्तम, 4. तामस, 5. रैवत, 6. चाक्षुष, 7. वैवस्वत, 8. सावर्णि, 9. दक्षसावर्णि, 10. ब्रह्मसावर्णि, 11. धर्मसावर्णि, 12. रुद्रसावर्णि, 13. देवसावर्णि और 14. इन्द्रसावर्णि होते हैं। प्रत्येक मन्वन्तर में 71 चतुर्युग होते हैं। एक चतुर्युग (सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि) में 12 हजार दिव्य या देव वर्ष होते हैं। दिव्य वर्षों के संबंध में भागवतमहापुराण का ‘दिव्यैर्द्वादशभिर्वर्षैः’, मनुस्मृति का ‘एतद्द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते’, सूर्यसिद्धान्त का ‘मासैर्द्वादशभिर्वर्ष दिव्यं तदह उच्यते’ उल्लेखनीय हैं। कई भारतीय-विद्वान् भी दिव्य या देव वर्ष की गणना को उचित नहीं ठहराते। वे युगों के वर्ष-गणना को सामान्य वर्ष-गणना के रूप में लेते हैं। किन्तु यह ठीक नहीं जान पड़ता, क्योंकि यदि ऐसा होता तो आज कलियुग 5114 कैसे हो सकता था ? क्योंकि कलि की आयु तो 1,200 वर्ष की ही बताई गई है। निश्चित ही यह (1,200) दिव्य या देववर्ष है।

**अन्य ग्रन्थ—** उक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त सूर्यसिद्धान्त, मुहूर्तचिन्तामणि, शतपथब्राह्मण आदि में भी कालगणना पर विस्तार में विचार किया गया है। यही नहीं पाराशरसंहिता, काश्यपसंहिता, भृगुसंहिता, मयसंहिता, पालकाप्यमहापाठ, वायुपुराण, दिव्यावदान, समरांगणसूत्रधार, अर्थशास्त्र, मुश्रुतसंहिता और विष्णुधर्मोत्तरपुराण भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त भी अनेक ग्रन्थों में कालगणना के सन्दर्भ में चर्चा की गई है।

वस्तुतः भारत में कालगणना का विभाजन अत्यन्त प्राचीन काल में ही चालू हो चुका था। हड़प्पा के उत्खनन में प्राप्त ईंटों पर चित्रित चिह्नों के आधार पर रूसी-विद्वानों ने निष्कर्ष निकाला है कि हड़प्पा-सभ्यता के समय में भारतीय-पंचांग-पद्धति पूर्ण विकसित रूप में थी।

जिस देश में अत्यन्त प्राचीन काल से ही कालगणना-ज्ञान के संबंध में इतने अधिक विस्तार में जाकर विचार किया जाता रहा हो, वहाँ के विद्वानों के लिए यह कह देना कि वे कालगणना-ज्ञान से अपरिचित रहे, से अधिक हास्यास्पद

1. भागवतमहापुराण, 3.11.4

2. महाभारत, वनपर्व, 188.67

1. भागवतमहापुराण, 3.11.18

2. मनुस्मृति, 1.71

3. सूर्यसिद्धान्त, 1.13

बात और क्या हो सकती है ? वास्तविकता तो यह है कि पाश्चात्य विद्वान् हमारी कालगणना की व्यापकता को हृदयंगम ही नहीं कर पाए, क्योंकि उनके लिए 6-7 हजार वर्ष से पूर्व की बात सोच पाना ही कठिन था। जबकि भारतीय-कालगणना को सही रूप से जानने और समझने के लिए जहाँ चतुर्युगों और मन्वन्तरों के काल-विभाजन को समझना आवश्यक है, वहीं प्राचीन भारत में प्रचलित 'युधिष्ठिर संवत्, कलि संवत्, लौकिक या सप्तर्षि आदि संवत्तों का ज्ञान प्राप्त करना भी जरूरी है। बिना यह ज्ञान प्राप्त किए भारतीय-कालगणना को समझ पाना कठिन है। पृं भगवद्गुप्त का स्पष्ट रूप में मानना है कि भारत की युगगणना को सही रूप में न समझ पाने के कारण ही यूरोपीय-विद्वानों द्वारा अनेक भूलें हुई हैं। उनका यह भी कहना है कि इस विस्तृत काल-विभाजन के परिणामस्वरूप ही भारतीय-इतिहास इतना प्राचीन होने पर भी आज तक सुरक्षित रह सका है।

वास्तव में कालगणना के सन्दर्भ में ये सब वितण्डावाद विलियम जोन्स ने जान-बूझकर पैदा किया था, क्योंकि वह हर चीज़ को ईसाइयत के दृष्टिकोण से देखने का आदी था। उसने एक स्थान पर ईसाई और भारतीय-कालगणना को एक करने का प्रयास भी किया था।<sup>1</sup> उसने ही अपने उद्देश्य की पूर्ति की दृष्टि से भारतीय-कालगणना को भ्रष्ट करने के प्रयासों को सही सिद्ध करने के लिए ही यह भ्रम फैलाया था और इस भ्रम के कारण भी भारत के इतिहास में काफी विकृतियाँ आयीं।

### माइथोलॉजी की कल्पनाकर

आज के विद्वान् प्राचीनकाल की उन बातों को, जिनकी पुष्टि के लिए उन्हें पुरातात्विक आदि प्रमाण नहीं मिलते, मात्र 'माइथोलॉजी' कहकर शान्त हो जाते हैं। वे उस बात की वास्तविकता को समझने के लिए उसकी गहराई में जाने का कष्ट नहीं करते। प्राचीन यूनानी-भाषा से क्रमशः लैटिन, फ्रेंच से अंग्रेज़ी में आए शब्द 'माइथोलॉजी' का अर्थ है- वह आख्यान, जो वास्तविक न हो अर्थात् कल्पित या मनगढ़ंत ऐसा कथानक, जिसमें लोकोत्तर व्यक्तियों, घटनाओं और कर्मों का सम्मिश्रण हो।

1. भारतवर्ष का बृहत् इतिहास, भाग 1, पृ 209

2. 'The Works of Sir William Jones With Life of the Author', Vol. iv, p.47, Printed For John Stockdale, Piccadilly; And John Walker, Paternoster Row, 1807.

अंग्रेज़ों ने भारत की प्राचीन ज्ञान-राशि, जिसमें पुराण, रामायण, महाभारतादि ग्रन्थ सम्मिलित हैं, को 'मिथ' कहा है अर्थात् उनकी दृष्टि में इन ग्रन्थों में जो कुछ लिखा है, वह सबकुछ कल्पित है, जबकि अनेक भारतीय-विद्वानों का मानना है कि वे इन ग्रन्थों को सही ढंग से समझने में असमर्थ रहे हैं। अंग्रेज़ों की सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि उनका संस्कृत-ज्ञान सतही था जबकि भारत का सम्पूर्ण प्राचीन वाङ्मय संस्कृत में था और जिसे पढ़ने तथा समझने के लिए संस्कृत भाषा का उच्चस्तरीय ज्ञान अपेक्षित था। अधिकचरे ज्ञान पर आधारित अध्ययन कभी भी पूर्णता की ओर नहीं ले जा सकता। पाश्चात्य विद्वानों ने पाणिनि, पतञ्जलि, जैमिनी आदि के ग्रन्थों का अध्ययन ज्ञान-प्राप्ति के लिए नहीं, वरन तोड़-मरोड़ करके उनमें कमियाँ निकालने के लिए किया था।

बम्बई के सेंट जेवियर्स कॉलेज के हैरास इंस्टीट्यूट के फादर एस्लेटर अपने भाषणों और लेखों में बार-बार ऋग्वेद में व्याकरण, छन्दादि की दृष्टि से कमियाँ होने का उल्लेख करते रहे। वास्तव में तो पाश्चात्य विद्वानों ने 'मिथ' के अंतर्गत वह सभी भारतीय-ज्ञानराशि सम्मिलित कर दी, जिसे समझने में वे असमर्थ रहे। इसके लिए निम्नलिखित दो उदाहरण ही पर्याप्त होंगे—

1. यूनानी-इतिहासकार हेरोडोटस (484-425 ई पू ) ने शक देश के संबंध में लिखा था— 'दारयबाहु के आक्रमण से एक पीढ़ी पूर्व नागों ने न्यूरियन जाति पर आक्रमण कर दिया।' प्राचीन मानव-इतिहास से अपिचित अनुवादक ने 'नाग' का अनुवाद 'सरपेन्ट' कर दिया। अब भला 'सरपेन्ट्स' का मानवों पर आक्रमण कैसे सम्भव है ? इसपर कोई विश्वास कैसे करेगा ? अतः इस घटना को 'मिथ' माना गया, अर्थात् 'नाग' का अर्थ ठीक प्रकार से न समझ सकने के कारण ही पाश्चात्य विद्वानों ने इसे 'मिथ' कह दिया। जबकि यह एक सच्ची ऐतिहासिक घटना है। 'नाग' का अर्थ केवल सर्प ही नहीं होता। 'नाग' एक विशेष जाति थी, जो 'न्यूरियन' जाति के समीप के जंगलों में रहती थी। इसी प्रकार से भारत की अधिकांश बातें पाश्चात्य इतिहासकारों की समझ में न आने के कारण 'मिथ' बन गयीं। परिणामस्वरूप भारत का लाखों-करोड़ों वर्षों का वास्तविक इतिहास कल्पित मान लिया गया।

2. भारत के प्राचीन इतिहास में जलप्लावन की एक घटना का वर्णन आता है। इसमें बताया गया है कि इस जलप्रलय के समय 'मनु' ने अगली सृष्टि के निर्माण के लिए ऋषियों सहित धान्य, औषधि आदि आवश्यक सामग्री एक नाव में रखकर उसे एक ऊँचे स्थान पर ले जाकर प्रलय में नष्ट होने से बचा लिया था। यह प्रसंग बहुत कुछ इसी रूप में मिस्र, यूनान, दक्षिण अमेरिका के कुछ देशों के प्राचीन साहित्य में भी मिलता है। अन्तर मात्र यह है कि भारत का 'मनु' मिस्र में 'मेनस' और यूनान में 'नूह' हो गया; किन्तु पाश्चात्य इतिहासकारों द्वारा इस ऐतिहासिक 'मनु' को 'मिथ' बना दिया गया। ऐसा करना उचित नहीं रहा।

इसी प्रकार के 'मिथों' के कारण भी भारतीय-इतिहास के अनेक पृष्ठ आज खुलकर सामने आने से तो रह ही गए, साथ ही उनमें अनेक विकृतियाँ भी आ गयीं।

### विदेशी-साहित्य को अनावश्यक मान्यता देकर

पाश्चात्य इतिहासकारों ने भारत के इतिहास को आधुनिक रूप में लिखते समय यूनान, चीन, अरब आदि देशों के साहित्यिक ग्रन्थों, यात्रा-विवरणों, जनश्रुतियों आदि का पर्याप्त सहयोग लिया है। इनमें से यहाँ यूनानी-साहित्य आदि पर ही विचार किया जा रहा है, कारण सर विलियम जोन्स ने भारतीय-इतिहास-लेखन की प्रेरणा देते समय जिन तीन मानदण्डों का निर्धारण किया था, वे मुख्यतः यूनानी-साहित्य पर आधारित थे।

यूनान से समय-समय पर अनेक विद्वान् भारत आते रहे हैं और उन्होंने भारत के सन्दर्भ में अपने-अपने ग्रन्थों में बहुत कुछ लिखा है; किन्तु भारत के इतिहास को लिखते समय सर्वाधिक सहयोग मेगस्थनीज़ (350-290 ई. पू.) के ग्रन्थ से लिया गया है। चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में आए यूनानी-राजदूत मेगस्थनीज़ ने भारत और तत्कालीन भारतीय-समाज के बारे में अपने संस्मरण 'इण्डिका' नामक एक ग्रन्थ में लिखे थे। मेगस्थनीज़ के दो या तीन शताब्दी बाद हुए यूनानी-लेखकों, यथा— डियोडोरस सिक्कूलस (90-27 ई. पू.), मेस्ट्रियस प्लूटार्क (46-120), स्ट्रेबो (63-24 ई. पू.) और एरियन (86-146) ने अपनी-अपनी पुस्तकों में 'इण्डिका' के उद्धरण दिए हैं। दुर्भाग्यवश 'इण्डिका' ग्रन्थ का मूल संस्करण लुप्त हो गया है और उक्त यूनानी-लेखकों की कृतियों से मेगस्थनीज़ के उद्धरणों को छाँटकर 'इण्डिका' नाम से प्रकाशित किया गया है।

तथाकथित 'इण्डिका' का जर्मन-अनुवाद 1845 में डॉ. एफू. ए. स्वानबेक ने और अंग्रेज़ी-अनुवाद 1877 में जे. डब्ल्यू. मैकक्रिंडल ने प्रकाशित किया है।

**अनुपलब्ध यूनानी-ग्रन्थों के विवरण—** विभिन्न यूनानी-लेखकों की पुस्तकों के वर्तमान में सुलभ विवरणों में से ऐसे कुछ विशेष उद्धरणों को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है, जिनमें से कई को भारत के इतिहास को आधुनिक रूप में लिखते समय विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रयोग में लाया गया है किन्तु यूनानी-विवरण— चाहे भौगोलिक हो या जीव-जन्तुओं के, तत्कालीन निवासियों की कुछ विशेष जातियों के हों या कुछ विशिष्ट व्यक्तियों, स्थानों आदि, यथा— सिकन्दर, सेंड्रोकोटस, पाटलिपुत्र आदि के व्योरो के, यूनानियों द्वारा लड़े गए युद्धों के वर्णन हों या अन्य, उन्हें पढ़कर ऐसा नहीं लगता कि उनमें सत्यता है और वे गम्भीरतापूर्वक लिखे गए हैं। सभी वर्णन अविश्वसनीय लगते हैं; किन्तु आश्चर्य तो इस बात का है कि जिन विद्वानों को भारतीय-पुराणों के वर्णन अविश्वसनीय लगे, उन्हें वे वर्णन प्रामाणिक कैसे लगे ? अतः उनकी निष्पक्षता विचारणीय है।

यूनानी-ग्रन्थों के कतिपय उल्लेखनीय व्योरे 'इण्डिका' के मैकक्रिंडल द्वारा किए गए अंग्रेज़ी-अनुवाद के हिंदी-संस्करण 'मेगस्थनीज़ का भारत-विवरण' (अनुवादक : बाबू अवध बिहारी शरण) के आधार पर इस प्रकार है। यथा—

**क. भारत की लम्बाई-चौड़ाई :** हर यूनानी-विद्वान् की माप पृथक्-पृथक् है—

**लम्बाई—** मेगस्थनीज़—16,000 स्टेडियम (2,960 किमी), प्लिनी ज्येष्ठ (23-79) 22,800 स्टेडियम (4,218 किमी), डियोडोरस सिक्कूलस—28,000 स्टेडियम (5,180 किमी), डायो कैसियस (150-235)—कहीं 20,000 तो कहीं 30,000 स्टेडियम (3,700-5,550 किमी), टॉल्मी (90-168)—16,800 स्टेडियम (3,108 किमी) आदि।

**चौड़ाई—** मेगस्थनीज़ और ऐरेस्टनीज़—16,000 स्टेडियम (2,960 किमी), पैट्रोक्लीज (19 ई. पू. -31 ई. पू.)—15,000 स्टेडियम (2,775 किमी), टाशियस (54-119)—भारत एशिया के अवशिष्ट भाग से छोटा नहीं, ओनेसीक्राईटस—भारत संसार के तृतीयांश के तुल्य है आदि।

### ख. भारत के जीव-जन्तु

यहाँ के



- ❖ बन्दर कुत्तों से बड़े होते हैं, वे उजले रंग के होते हैं किन्तु मुँह काला होता है। वे बड़े सीधे होते हैं।
- ❖ कुत्ते बड़े साहसी और बलशाली होते हैं। बिना नाक में जल डाले वे अपनी पकड़ नहीं छोड़ते। एक बार एक कुत्ते ने एक सिंह और एक सांड का मुँह पकड़ा था और सांड को उससे छुड़ापाते, उससे पहले ही सांड मर गया।
- ❖ हिंद-महासागर में हेल मछलियाँ होती हैं, जो बड़े-बड़े हाथियों से भी बड़ी होती हैं।
- ❖ हाथी बड़े विशाल होते हैं। इनका जन्म 16 से 18 महीने में होता है। माता इन्हें 6 माह तक दूध पिलाती है।
- ❖ वनमानुसों में मनुष्यों के समान बुद्धि होती है।
- ❖ अजगर इतने बड़े होते हैं कि वे हरिण और सांड को सम्पूर्ण निगल जाते हैं।
- ❖ सोना खोदकर निकालनेवाली चींटियाँ लोमड़ी के आकार की होती हैं।

### ग. भारत के तत्कालीन निवासियों के बारे—

यहाँ के मनुष्य अपने कानों में सोते हैं, मनुष्यों के मुख नहीं होते, मनुष्यों की नाक नहीं होती, मनुष्यों की एक ही आँख होती है, मनुष्यों के बड़े लम्बे पैर होते हैं, मनुष्यों के अंगूठे पीछे की ओर फिरे रहते हैं आदि।

**घ. युद्धों के वर्णन—** एक ही युद्ध के वर्णन अलग-अलग यूनानी-लेखकों द्वारा पृथक्-पृथक् रूप में किए गए हैं, यथा—

- ❖ एरियन ने लिखा है कि ‘इस युद्ध में भारतीयों के 20,000 से कुछ न्यून पदाति और 300 अश्वारोही मरे तथा सिकन्दर के 80 पदाति, 10 अश्वारोही-धनुर्धार, 20 संरक्षक-अश्वारोही और लगभग 200 दूसरे अश्वारोही गिरे।’
- ❖ एक अन्य यूनानी-लेखक ने लिखा है कि ‘इस युद्ध में 12,000 से अधिक भारतीय मरे थे जबकि यूनानियों में से केवल 250 ही मरे थे।’
- ❖ डियोडोरस ने लिखा है कि ‘भारतीय तो 12,000 से अधिक मरे और सिकन्दर के 280 अश्वारोही और 700 से अधिक पदाति मरे।’
- ❖ एरियन ने पुरु के साथ हुए इस युद्ध के बारे में एक स्थान पर लिखा है कि ‘इसमें विजय किसी की भी नहीं हुई। सिकन्दर थककर विश्राम करने चला

गया था। उसने पुरु को बुलाने के लिए अनेक आदमी भेजे थे। अन्त में ही पुरु सिकन्दर से उसके स्थान पर मिला था।’

- ❖ प्लूटार्क ने सिकन्दर के प्रमाण से लिखा है कि ‘यह युद्ध हाथोंहाथ हुआ था। दिन का तब आठवाँ घण्टा था जब वे सर्वथा पराजित हुए।’ दूसरे शब्दों में युद्ध आठ घण्टे चला था। प्रश्न उठता है कि क्या विश्वविजयी 8 घण्टे के युद्ध में ही थक गया था ?

वीरेन्द्र कुमार गुप्त ‘विष्णुगुप्त चाणक्य’ की भूमिका के पृ 11 पर बताते हैं कि—

कहा जाता है कि पुरु युद्ध में पराजित हुआ था और बन्दी बनाकर सिकन्दर के समक्ष पेश किया गया था। लेकिन इस सन्दर्भ में भी यूनानी-लेखकों के भिन्न-भिन्न मत हैं—

- ❖ जस्टिन और प्लूटार्क के अनुसार पुरु बन्दी बना लिया गया था।
- ❖ डियोडोरस का कहना है कि घायल पुरु सिकन्दर के कब्जे में आ गया था और उसने उपचार के लिए उसे भारतीयों को लौटा दिया था।
- ❖ कर्टियस का मत है कि घायल पुरु की वीरता से प्रभावित होकर सिकन्दर ने सन्धि का प्रस्ताव रखा।
- ❖ एरियन ने लिखा है कि घायल पुरु के साहस को देखकर सिकन्दर ने शान्तिदूत भेजा।
- ❖ एक विवरण ऐसा भी मिलता है कि पुरु लड़ाई में मारा गया। (किन्तु युद्ध में पुरु नहीं, उसका पुत्र मारा गया था)
- ❖ कुछ विद्वानों का मत है कि युद्ध अनिर्णीत रहा और पुरु के दबाव के सामने सिकन्दर ने सन्धि का मार्ग उचित समझा।

पुरु के सन्दर्भ में उक्त मत सिकन्दर के मकदूनिया से झेलम तक की यात्रा तक के इतिहास से मेल नहीं खाते। इससे पूर्व उसने कहीं भी ऐसी उदारता नहीं दिखाई थी। वह एक अत्यन्त ही क्रूर, नृशंस और अत्याचारी-विजेता था। नगरों को जलाना, पराजितों को मौत के घाट उतारना, सैनिकों को रक्षा का वचन

देकर धोखे से मरवा देना उसके स्वाभाविक कृत्य थे। यही नहीं, उसने अपने अनेक सहयोगियों को उनकी छोटी-सी भूल से रुष्ट होकर तड़पा-तड़पाकर मारा था। इस दृष्टि से उसका योद्धा बेसस, उसकी अपनी धाय का भाई क्लीटोस, पर्मीनियन आदि उल्लेखनीय हैं। ऐसा सिकन्दर पुरु के साथ अचानक ही इतना उदार कैसे बन गया कि जंजीरों में जकड़े पुरु को न केवल उसने छोड़ दिया, वरन उसे बराबर बैठाकर राज्य वापस कर दिया, यह समझ में नहीं आता। ऐसा लगता है कि हारे हुए सिकन्दर का सम्मान और प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए यूनानी-लेखकों ने यह सारा वाग्जाल रचा है। वास्तव में पुरु की हस्ति-सेना ने यूनानियों का जिस भयंकर रूप से संहार किया था, उससे सिकन्दर और उसके सैनिक आतंकित हो उठे। यूनानी-सेना का ऐसा विनाश उसके अस्तित्व के लिए चुनौती थी। अतः उसने बाध्य होकर सन्धि की होगी।

पुरु के साथ हुए सिकन्दर के युद्ध के यूनानी-लेखकों ने जिस प्रकार के वर्णन किए हैं, उन्हें देखकर ऐसा लगता है कि यूनानी-लेखक अपने गुण गाने में ज़्यादा विश्वास रखते थे और उसमें माहिर भी ज़्यादा थे। इन अतिरंजित वर्णनों को देखने से यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है कि वे वर्णन विश्वास के योग्य ही नहीं हैं। वास्तव में सिकन्दर को अपने से बड़ा दिखाने और अपनी बात को बढ़ा-चढ़ाकर कहने की आदत थी। उसकी इसी आदत को लक्ष्य करके प्लूटार्क ने लिखा है— '*...to exegerate his glory with posterity*'.<sup>1</sup> (भावी सन्तति के बारे में अपने यश की अतिशयोक्ति के लिए...)।

कतिपय लोगों का मानना है कि सिकन्दर-पुरु का युद्ध कोई बड़ा युद्ध नहीं, बल्कि कोई छोटी-मोटी मुठभेड़ रही होगी, जो भारत के उत्तरी-पश्चिमी भाग में हुई थी। अतः भारतवासियों के लिए यह कोई ऐसी महत्वपूर्ण घटना नहीं रही, जिसका उल्लेख किया जाता। यही कारण है कि भारतीय-स्रोत सिकन्दर के इस कथित आक्रमण के संबंध में मौन रह हैं। अतः मात्र यूनानी-लेखकों के कथन, जो कि सामान्यतः अतिशयोक्तिपूर्ण एवं असत्य हैं, के आधार पर भारत के इतिहास के लिए तिथिक्रम का निर्धारण करना न्यायसंगत नहीं है।

## (ड.) अन्य

1. '*Plutarch's Lives*' (Volume 2 of 2), Edited by Arthur Hugh Clough, Translated by John Dryden, Published by Digireads.com Publishing, 2009, p.142

कुछ अन्य विवरण इस प्रकार हैं—

**‘गंगारिदाइयों’ का सैन्यबल असीम था—** ‘गंगारिदायों’ के पास न केवल 4,000 हाथी थे (उन दिनों युद्धों में हाथियों का विशेष महत्त्व होता था), वरन एक प्रशिक्षित दुर्जेय सेना भी थी, जो हरदम युद्ध के लिए सन्नद्ध रहती थी। इसी कारण इनका देश किसी विदेशी राजा द्वारा खण्डित नहीं हो सका था।

**राजा को रात्रि में शैचया बदलनी पड़ती थी—** वह षड्यन्त्रों का युग था, कब, कौन और कैसे राजा की हत्या कर दे, इस दृष्टि से राजागण दिन में सोते ही नहीं थे और रात्रि में भी शयन का स्थान बदलते रहते थे। ऐसा वे सावधानी की दृष्टि से किया करते थे, जो उचित ही था।

**राजा अपने को चुस्त और स्वस्थ बनाए रखता था—** उस समय अनेक छोटे-बड़े राज्यों को समाप्त करके एक बृहत् साम्राज्य का निर्माण किया गया था। अतः सदा यह डर बना रहता था कि कहीं कोई विजित राज्य का राजा उपद्रव न कर दे। इसलिए सम्राट् शारीरिक शक्ति बढ़ाने और हर समय चुस्त बने रहने की दृष्टि से शरीर की मालिश कराता रहता था और बदन दबवाता रहता था।

उक्त विश्लेषण से यह एकदम साफ़ हो जाता है कि यूनानियों ने अपनी पुस्तकों में विवरण चाहे भौगोलिक दृष्टि से दिए हों या सामाजिक, युद्धों के विवरण दिए हों या अन्य कुछ, सभी में अतिशयोक्ति से काम लिया गया है। हर बात को बढ़ा-चढ़ा कर लिखा है। स्ट्रेबो, श्वानबेक आदि विदेशी विद्वानों ने तो कई स्थानों पर इस बात के संकेत दिए हैं कि मेगस्थनीज़ आदि प्राचीन यूनानी-लेखकों के विवरण झूठे हैं, सुनी-सुनाई बातों पर आधारित हैं और अतिरंजित हैं। इन सबको दृष्टिगत रखने पर ऐसा नहीं लगता कि यूनानी-साहित्य भारत के इतिहास-लेखन की दृष्टि से विश्वास के योग्य है। इसको अपनाने के कारण भी भारत के इतिहास में विकृतियाँ आई हैं।

## विदेशी-पर्यटकों के विवरणों को प्रामाणिक समझकर

भारतीय-संस्कृति की विशिष्टताओं से प्रभावित होकर, भारतीय साहित्य की श्रेष्ठताओं से मोहित होकर और भारत की प्राचीन कला, यथा— मन्दिरों, मूर्तियों, चित्रों आदि से आकर्षित होकर और हिंदू-धर्म की व्यापकता और व्यावहारिकता से अनुप्रेरित होकर समय-समय पर भारत की यात्रा के लिए आनेवाले

विदेशी-पर्यटकों के यात्रा-वृत्तान्तों पर भारत के इतिहास के सन्दर्भ में आधुनिक विदेशी और देशी इतिहासकारों ने भारत में विभिन्न स्रोतों से सुलभ सामग्री की तुलना में अधिक विश्वास किया है। जबकि यह बात जगजाहिर है कि मध्यकाल में जो-जो विदेशी-पर्यटक यहाँ आते रहे हैं, वे अपने एक उद्देश्य-विशेष को लेकर ही आते रहे हैं और अपनी यात्रापर्यटन वे उसी की पूर्ति में लगे भी रहे हैं। हाँ, इस दौरान भारतीय-इतिहास और परम्पराओं के विषय में इधर-उधर से उन्हें जो कुछ भी मिला, उसे अपनी स्मृति में संजो लिया और यात्रा-विवरण लिखते समय स्थान-स्थान पर उसे उल्लिखित कर दिया है।

इन विदेशी-यात्रियों के वर्णनों के सन्दर्भ में विदेशी-विद्वान् सर अलेक्जेंडर कनिंघम (1814-1893) का यह कथन उल्लेखनीय है— 'In this part of the pilgrim's travels, the narrative is frequently imperfect and erroneous and we must therefore trust to our own sagacity, both to supply his omissions and to correct his mistakes....'<sup>1</sup>

वैसे तो भारत-भ्रमण के लिए अनेक देशों से यात्री आते रहे हैं। फिर भी भारत के इतिहास को आधुनिक रूप से लिखते समय मुख्यतः यूनानी और चीनी-यात्रियों के यात्रा-विवरणों को अधिक प्रमुखता दी गई है। उनके संबंध में स्थिति इस प्रकार है—

### यूनानी-यात्री

यूनान देश से अधिकतर पर्यटक/इतिहासकार या तो सिकन्दर के आक्रमण के समय उसकी फौज के साथ आए थे या बाद में भारतीय-राजाओं के दरबार में राजदूत के रूप में नियुक्त होकर आए थे। इनमें से मेगस्थनीज़ और डेमाकस (तृतीय शताब्दी ई पू) ही अधिक प्रसिद्ध रहे। मेगस्थनीज़ की मूल पुस्तक 'इण्डिका' ही नहीं वरन उसके समकालीन अन्य इतिहासकारों की रचनाएँ भी काफी समय पूर्व ही नष्ट हो चुकी थीं। उनकी फटी-पुरानी पुस्तकों से और अन्य लेखकों की रचनाओं से लिए गए उद्धरणों और जनता की स्मृति में शेष कथनों को लेकर जर्मन-विद्वान् श्वानबेक द्वारा लिखित पुस्तक के अनुवाद में दिए गए ब्योरो को देखकर ऐसा नहीं लगता कि वे किसी जिम्मेदार व्यक्ति द्वारा गम्भीरता

से लिखे गए हैं। इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

- ❖ मेगस्थनीज़ ने एक स्थान पर कहा है कि भारत में लड़कियाँ सात वर्ष की आयु में विवाह और सन्तानोत्पत्ति के योग्य हो जाती हैं।<sup>1</sup>
- ❖ मेगस्थनीज़ ने यह भी कहा है कि काकेशस-निवासी सबके सामने स्त्रियों से संगम करते हैं और अपने संबंधियों का मांस खाते हैं। इन दोनों प्रथाओं का उल्लेख हेरोडोटस ने भी किया है।<sup>2</sup>

आचार्य रामदेव ने अपने ग्रन्थ 'भारतवर्ष का इतिहास' में मेगस्थनीज़ के लेखन के संबंध में एक महत्वपूर्ण तथ्य की ओर ध्यान दिलाया है। उनका कहना है कि मेगस्थनीज़ चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में यूनानी-राजदूत के रूप में भारत आया था, अतः उसका परिचय आचार्य चाणक्य से अवश्य ही रहा होगा क्योंकि वे सम्राट् चन्द्रगुप्त के गुरु और महामंत्री— दोनों ही थे।<sup>3</sup>

ऐतिहासिक दृष्टि से दोनों की समसामयिकता को देखते हुए ऐसा सोच लेना भी स्वाभाविक ही है कि तत्कालीन भारतवर्ष के संबंध में इन दोनों विद्वानों ने जो कुछ भी लिखा होगा, उसके ब्योरो में समानता होगी, किन्तु मेगस्थनीज़ के विवरण चाणक्य के 'अर्थशास्त्र' से भिन्न ही नहीं, अपितु विपरीत भी है। यही नहीं, मेगस्थनीज़ के विवरणों में चाणक्य का नाम भी कहीं नहीं मिलता है।

### चीनी-यात्री

भारत आनेवाले चीनी-यात्रियों की संख्या वैसे तो 100 मानी जाती है, किन्तु भारतीय-इतिहास-लेखन में तीन चीनी-यात्रियों— फाह्यान (337-424), ह्वेनसांग (596-664) और इत्सिंग (635-713) का ही सहयोग प्रमुख रूप से लिया गया है। इनके यात्रा-विवरणों के अनुवाद हिंदी और अंग्रेज़ी— दोनों भाषाओं में सुलभ हैं। इन अनुवादों में ऐसे अनेक वर्णन मिलते हैं जो लेखकों के समय के भारत के इतिहास की दृष्टि से बड़े उपयोगी एवं महत्वपूर्ण हैं। आधुनिक रूप में भारत का इतिहास लिखनेवालों ने इन तीनों यात्रियों द्वारा वर्णित अधिकांश बातों को सत्य मानकर उनके आधार पर भारत की विभिन्न ऐतिहासिक घटनाओं के विवरण

1. 'The Ancient Geography of India', 1871, p. 324

1. 'मेगस्थनीज़ का भारत-विवरण', पृ 153-154

2. वही, पृ 40

3. भारतवर्ष का इतिहास, भाग-3, अध्याय 5

लिखे हैं किन्तु उनके वर्णनों में सभी कुछ सही और सत्य हैं, ऐसा नहीं है। उनके वर्णनों में ऐसी भी बातें मिलती हैं, जो अविश्वसनीय लगती हैं। ऐसा लगता है कि वे सब असावधानीपूर्वक लिखी गई हैं। तीनों के विवरणों की स्थिति इस प्रकार है—

**फाह्यान—** यह भारत में जितने समय भी रहा, घूमता ही रहा। चीन लौटने पर इसने अपनी यात्रा के वर्णन लिपिबद्ध किये। वे विवरण अंग्रेज़ी और हिंदी-अनुवादों के माध्यम से हमारे पास पहुँचे हैं। इन ब्योरो में फाह्यान ने चीन से चलकर भारत तक पहुँचने तथा भारतभर में वह जहाँ-जहाँ भी गया, वहाँ के ब्योरे दिए हैं। श्री जगन्मोहन वर्मा द्वारा चीनी से हिंदी में अनूदित पुस्तक में, जिसे काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने प्रकाशित किया है, कई जगह पर लिखा मिलता है कि 'यह सुनी हुई बात पर आधारित है'। आखिर यह 'सुनना' किस भाषा में हुआ था? क्या स्थानीय भाषाओं का उसका ज्ञान इतना पुष्ट था कि सामान्य लोगों की बातों को उसने समझ लिया था? किसी भी विदेशी के लिए इतनी जल्दी भारत-जैसे बहुभाषी देश की विभिन्न भाषाओं को ज्ञान प्राप्त कर लेना एक असम्भव कार्य था जबकि उसके द्वारा लिखे गए विवरणों में विभिन्न स्थानों के अलग-अलग लोगों की स्थिति का उल्लेख मिलता है। यदि ऐसा नहीं था तो उसने जो कुछ लिखा है क्या वह काल्पनिक नहीं है? सम्भव है इसीलिए इन विवरणों के संबंध में कनिंघम को सन्देह हुआ है। (पूर्वोल्लिखित)

**हेनसांग—** यह सम्राट् हर्षवर्धन (606-647) के समय में भारत में बौद्ध-धर्म के साहित्य का अध्ययन करने आया था और यहाँ 14 वर्ष तक रहा था। उसने भारत में दूर-दूर तक भ्रमण किया और भारत के बारे में चीनी-भाषा में बहुत कुछ लिखा था। उसके यात्रा-वृत्तान्त के सैम्युअल बील (1825-1889) द्वारा किए गए अंग्रेज़ी-अनुवाद<sup>1</sup> से ज्ञात होता है कि उसने अपनी भाषा में भारत के समस्त प्रान्तों की स्थिति, रीति-रिवाज़ और सभ्यता, व्यवहार, नगरों और नदियों की लम्बाई-चौड़ाई तथा अनेक महापुरुषों के संबंध में विचार प्रकट किए हैं; लेकिन यहाँ भी वही प्रश्न उठता है कि उसने विभिन्न भारतीय-भाषाओं का ज्ञान कब, कहाँ और कैसे पाया? यह उल्लेख तो अवश्य मिलता है कि उसने नालन्दा विश्वविद्यालय में रहकर संस्कृत का ज्ञान प्राप्त किया था, किन्तु सामान्य लोगों से

उसका वार्तालाप संस्कृत में तो हुआ नहीं होगा, तब वह उनके रीति-रिवाज़ों के बारे में इतनी बातें कैसे जान पाया होगा?

भारत के आधुनिक रूप में लिखित इतिहास में अनेक ब्योरे और निष्कर्ष हेनसांग के वर्णनों को प्रामाणिक मानकर उनके आधार पर दिए गए हैं। इसके लेखों के बारे में कनिंघम का कहना है कि यह मानना होगा कि हेनसांग के लेखों में बहुत-सी बातें इधर-उधर की कही गई बातों के आधार पर कल्पित हैं। इसलिए वे ग़लत और असम्बद्ध हैं। अतः उसने जो कुछ लिखा है, उसे एकदम सत्य और प्रामाणिक मान लेना उचित नहीं है। इसीलिए कनिंघम ने यह सलाह दी है कि इतिहास लिखते समय हमें उसमें उचित संशोधन करने होंगे।<sup>1</sup>

**इत्सिंग—** चीनी-तीर्थयात्री-विद्वान् इत्सिंग 671 में चीन से चलकर 673 में हुगली के मुहाने पर पहुँचा था। उसने नालन्दा में 675 से 685 ई. तक (लगभग 10 वर्षों तक) अध्ययन किया था। इस अवधि में उसने 400 ग्रन्थों का संकलन भी किया था। 685 ई. में उसने अपनी वापसी यात्रा शुरू की। मार्ग में रुकता हुआ वह 689 ई. के सातवें मास में कंग-फूँ पहुँचा। इत्सिंग ने अपने यात्रा-विवरण पर एक ग्रन्थ लिखा था, जिसे 692 ई. में 'श्रीभोज' (सुमात्रा में पलम्बंग) से एक भिक्षुक के हाथ चीन भेज दिया था। जबकि वह स्वयं 695 ई. के ग्रीष्मकाल में ही चीन वापस पहुँचा था।

अपने यात्रा-विवरण में उसने भी ऐसी बहुत-सी बातें लिखी हैं जो इतिहास की कसौटी पर खरी नहीं उतरतीं। इत्सिंग ने प्रसिद्ध विद्वान् भर्तृहरि को अपने भारत पहुँचने से 40 वर्ष पूर्व हुआ माना है। जबकि 'वाक्यपदीय' के लेखक भर्तृहरि प्रथम शती ई. पू. में हुए हैं। इसी प्रकार उसके द्वारा उल्लिखित कई बौद्ध-विद्वानों की तिथियों में भी अन्तर मिलता है। इन अन्तरों के सन्दर्भ में सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि इत्सिंग द्वारा 691-'92 ई. में चीन भेजी गई सामग्री 280 वर्ष तक तो हस्तलिखित रूप में ही वहाँ पड़ी रही। 972 ई. तक वह मुद्रित ही नहीं हुई। फिर जो पुस्तक छपी, उसमें और मूल सामग्री, जो इत्सिंग ने भेजी थी, में अन्तर रहा।<sup>2</sup>

इस ग्रन्थ के अनुवादक काश्यप जी का कहना था कि 'ऐसा जान पड़ता

1. 'Si-Yu-Ki: Buddhist Records of the Western World', by Hiuen Tsiang. 2 vols., translated by Samuel Beal, London, 1884

1. Chronology of Nepal History Reconstructed, by Pt. Kota Venkatchalam, p.20

2. 'इत्सिंग की भारत-यात्रा', अनुवादक : सन्तराम ब्यू ए. , पृ. 30

है कि इस इतिहास के अनेक पाठ हैं। इसके अनेक अवतरण जो शुंग-वंश के त्सांग-निंग (988 ई ), मिंग वंश (1368-1628 ई ) के शोऊक्वंग और जापान के अन्नन (988 ई ) के ग्रन्थों में हैं, वे वर्तमान पुस्तक में नहीं मिलते। मैं अगले पुरातत्त्वविदों से प्रार्थना करता हूँ कि वे चीन और जापान के कुछ प्रसिद्ध मन्दिरों के पत्थर के भण्डारों में मूल पुस्तक को ढूँढ़ें.....।' इस पुस्तक के सन्दर्भ में एक अन्य अनुवादक डॉ. ताकाकुसु जुंजीरो (1866-1945) का कथन काश्यप जी से अधिक भिन्न नहीं है। ऐसा भी कहा जाता है कि इत्सिंग ने स्वयं अपनी मूल प्रति में चीन पहुँचने पर संशोधन कर दिए थे। ऐसे में जो पुस्तक स्वयं में ही प्रामाणिक नहीं रही, उसके विवरण भारत के इतिहास-लेखन के लिए कितने प्रामाणिक हो सकते हैं, यह विचारणीय है।

### अनुवादों के प्रमाण पर

पाश्चात्य इतिहासकारों तथा अन्य विधाओं के विद्वानों ने भारत के इतिहास को आधुनिक रूप में लिखे जाने से पूर्व ही उसके सन्दर्भ में विभिन्न निष्कर्ष निकालकर उनपर कार्रवाई करने के लिए यथावश्यक निर्णय कर लिए थे। बाद में तो उन्होंने पूर्व-निर्धारित निष्कर्षों को सही सिद्ध करने के उद्देश्य से अधिकतर ऐसे विदेशियों द्वारा लिखित पुस्तकों के अंग्रेज़ी-अनुवादों को अपने लेखन का आधार बनाया जिनसे उनके निष्कर्षों की पुष्टि होती हो। जहाँ तक विदेशी-पुस्तकों के अनुवादों को अपने लेखन का आधार बनाने की बात है, वहाँ तक तो बात ठीक है किन्तु मुख्य प्रश्न तो यह है कि क्या वे अनुवाद सही हैं ? क्या वे लेखक के मूल भावों को ठीक प्रकार से अभिव्यक्त करने में समर्थ रहे हैं ? क्योंकि आज यह बड़ी मात्रा में देखने में आ रहा है कि अनुवादकों ने अनेक स्थानों पर मूल लेखकों की भावनाओं के साथ न्याय नहीं किया है। सम्भव है कि वे अनुवादक अंग्रेज़ों की तत्कालीन सत्ता के भारत के इतिहास को बदलने की योजना में सम्मिलित रहे हों और उन्होंने अनुवाद भी उसी दृष्टि से किया हो। अलू-बीरूनी के 'भारत के इतिहास' के गुप्त संवत् से संबंधित अंश का डॉ. फ्लीट द्वारा तीन-तीन बार अनुवाद माँगना यही प्रमाणित करता है कि उसको वही अनुवाद चाहिए था जो उसकी इच्छाओं को व्यक्त करनेवाला हो। इस सन्दर्भ में श्री के. टी. तेलंग (1850-1892) का कहना था कि भारतीय-इतिहास के संबंध में अंग्रेज़ों ने पूर्व-निर्धारित मतों को सही सिद्ध करने के लिए हर प्रकार के प्रयास करके किलिगर्थ की भाषा में 'They dream what they desire and believe

their own dreams'—'वे स्वैच्छिक स्वप्न ही देखते थे और उन्हीं पर विश्वास करते थे'—को सिद्ध किया है।

भारत के इतिहास-लेखन में यूनानी, चीनी, अरबी, फ़ारसी, संस्कृत, पाली, तिब्बती आदि भाषाओं में लिखी गई पुस्तकों के अंग्रेज़ी में हुए अनुवादों का बड़ी मात्रा में उपयोग किया गया है। उनमें से कुछ के उदाहरण देकर यहाँ स्थिति स्पष्ट की जा रही है।

**यूनानी-भाषा—** इसके सन्दर्भ में पूर्व में विचार किया जा चुका है।

**चीनी-भाषा—** चीनी-भाषा से अंग्रेज़ी में हुए अनुवादों से जिस-जिस प्रकार की गड़बड़ाइयाँ हुई, उसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

सैम्युअल बील ने हेनसांग की पुस्तक का अनुवाद करते हुए फुटनोट 33 का चीनी-भाषा से अंग्रेज़ी में अनुवाद इस प्रकार से किया है—

'Lately, there was a king called Amshuvarman (An-chu-fa-mo), who was distinguished for his learning and ingenuity'<sup>1</sup>

बील के उक्त अनुवाद के आधार पर डॉ. बुहलर ने, जिसे भारत के साहित्यिक ग्रन्थ, ऐतिहासिक साक्ष्य, भाषायी प्रमाण आदि सब झूठे लगे हैं, अपने लालबुझकड़ी तर्कों के आधार पर अंशुवर्मन को 3000 कलि या 101 ई पू के स्थान पर ईसा की सातवीं शताब्दी में लाकर बिठा दिया। उक्त अनुवाद के सन्दर्भ में पुं. कोटावेंकटचलम् का कहना है—

'... When Heun - Tsang visited Nepal he found frequently on the lips of the people the memorable name ....' he noted and recorded that there had been a great king of the name Amsuvarman and that he ..... but he never stated that Amsuvarman mentioned was the contemporary or was reigning at the time of his visit..... In the first words of Beal's translation of Heun-Tsang's reference to Amsuvarman (or An- Shu-fa-mo) given in the footnote previously, lately there was a king called Amsuvarman. There is the implication that the 'Amsuvarman was not the contemporary of Heun-Tsang...'

1. *Si-yu-ki (Buddhist Records Of The Western World)*, Translated From The Chinese Of Muen Tsian& (a.d. 629), By Samuel Beal, Vol. II, Published By Trubner & Co., Ludgate Hill, London, 1884, p.81



यह ग़लती चीनी-शब्द के अंग्रेज़ी-अनुवाद 'लेटली' (Lately) के कारण हुई है। यदि लेटली (Lately) की जगह फॉर्मली (Formerly) होता, तो यह ग़लती न होती। 'फॉर्मली' (formerly) का अर्थ है - 'इन फॉर्मर टाइम्स' (in former times) अर्थात् पूर्वकाल में या पहले, जबकि 'लेटली' (lately) का अर्थ है 'हाल में'। इन दोनों शब्दों के अर्थ में समय का अन्तराल स्वयं ही स्पष्ट हो जाता है।

'चीनी-यात्री फाह्यान का यात्रा-विवरण' के अनुवादक श्री जगन्मोहन वर्मा ने लिखा है कि 'इस अनुवाद में अंग्रेज़ी-अनुवाद से बहुत अन्तर दीख पड़ेगा, क्योंकि मैंने अनुवाद को चीनी-भाषा के मूल के अनुसार ही, जहाँ तक हो सका है, करने की चेष्टा की है' अर्थात् इन्हें अंग्रेज़ी का जो अनुवाद हुआ है, वह ठीक नहीं लगा। यदि उसमें गड़बड़ी नहीं होती तो वर्मा जी को ऐसा लिखने की आवश्यकता ही नहीं थी। उन्होंने पुस्तक के अन्दर एक-दो नहीं, कई स्थानों पर शब्दों के अनुवाद का अन्तर तो बताया ही है, एक-दो स्थानों पर ऐसे उल्लेख भी बताए हैं जो मूल लेख में थे ही नहीं और अनुवादक ने डाल दिये। उदाहरण के लिए निम्नलिखित विवरण को देखें—

'...बुद्धदेव गुफा के सामने चंक्रमण कर रहे थे। देवदत्त ने पर्वत के उत्तर के कगारे से पत्थर चलाया। वह बुद्धदेव के पैर के अंगूठे में लगा। यह पत्थर अबतक है। लेगी साहब (अंग्रेज़ी-अनुवादक) ने नीचे टिप्पणी में लिखा है कि हेनसांग ने इस पत्थर को 14-15 हाथ ऊँचा और 30 पग गोल व मोटा लिखा है। पर हमने तो हेनसांग का सारा विवरण उलट मारा, कहीं उसका पता तक न चला। हमें ही क्या, प्रो. समदर (बांग्ला-अनुवादक) को भी इसकी सत्यता की कहीं गन्ध भी नहीं मिली और न उन्होंने अपने बांग्ला-अनुवाद में इसे टिप्पणी में ही लिखा।' (उक्त पुस्तक का पृष्ठ 3।।।) इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि अंग्रेज़ी-अनुवादकों ने रचना का अनुवाद करते समय बड़ी स्वतन्त्रता से काम लिया है और ऐसे अन्तर उन्होंने जान-बूझकर ही आवश्यक स्थलों पर कर दिए हैं जिनके बड़े दूरगामी परिणाम हुए। 'राजतरंगिणी' और 'नेपाल-वंशावली' तथा अन्य पुस्तकों में किए गए अन्तर अब स्पष्ट रूप से सामने आने लगे हैं। अतः इन अनुवादों की प्रामाणिकता की जाँच करना अत्यन्त आवश्यक है। उसके बिना

1. 'चीनी-यात्री फाह्यान का यात्रा-विवरण', भूमिका, पृष्ठ 3

इनको विश्वसनीय और प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

**संस्कृत-भाषा—** यूनानी या चीनी-भाषाओं से ही नहीं, संस्कृत से भी अंग्रेज़ी में अनुवाद करने में भारी भूलें होती रही हैं, यथा—

1. संस्कृत से अंग्रेज़ी में किए गए अनुवाद की एक भूल का उल्लेख पं. भगवदत्त ने इस रूप में किया है—

1. 'अठारह शकों का काल— पुराणों में शकों का राज्यकाल 380 वर्ष का लिखा है। पार्जितर ने इस लेख के अनुवाद में राज्यकाल 183 वर्ष दिया है। यह अनुवाद असंगत है। शक-शिलालेखों और मुद्राओं से शकों का राज्य 300 वर्षों से अधिक का प्रमाणित होता है।'<sup>1</sup>
2. इसी प्रकार से संस्कृत में लिखित 'विष्णुमहापुराण' और 'मत्स्यमहापुराण' का अंग्रेज़ी में अनुवाद करते समय भी पाश्चात्य विद्वानों ने मौर्य-वंश के राज्यकाल में 'तीन सौ' को 'एक सौ' बनाने की भूल की है।
3. गीताप्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित श्रीविष्णुपुराण के संस्कृत-पाठ- 'अब्द शतसप्तत्रिंशदुत्तरम्' का हिंदी-अनुवाद 173 पर दिया गया है।<sup>2</sup> जबकि अन्य स्थानों पर यह 317 या 137 वर्ष दिया गया है।
4. सर मोनियर मोनियर विलियम ने अपने संस्कृत-अंग्रेज़ी कोश में 'कंचिदेक' शब्द का अर्थ महाभारतकालीन एक ग्राम बताया है। वास्तव में वह 'वेणीसंहार' नाटक के निम्नलिखित श्लोक को समझ नहीं सका—

**'इन्द्रप्रस्थं वृकप्रस्थं जयन्तं वारणाव्रतम्।**

**प्रयच्छ चतुरो ग्रामान्कंचिदेकम् तु पं कम ॥'**<sup>3</sup>

कौरव-पाण्डवों का युद्ध टालने के लिए श्रीकृष्ण ने दुर्योधन से पाण्डवों के लिए 5 ग्राम ही दे देने को कहा था। पाँच ग्रामों में से इन्द्रप्रस्थ, वृकप्रस्थ, जयन्त और वारणाव्रत— इन चार ग्रामों के तो नाम उन्होंने गिना दिए थे और पाँचवाँ कोई सा भी अन्य गाँव देने को कहा था। संस्कृत-शब्द 'कंचिदेक' का

1. 'भारतवर्ष का बृहत् इतिहास', भाग 2, पृ. 316

2. गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित श्रीविष्णुपुराण का 14वाँ संस्करण (सं. 2050), चतुर्थ अंश, अध्याय 24, श्लोक 32, पृ. 351

3. वेणीसंहार, 1.16

अर्थ 'कोई सा भी एक' होता है। मोनियर ने इन्द्रप्रस्थ आदि नामों को देखकर इसे भी एक ग्राम का नाम मान लिया है।

उक्त विवेचना से स्पष्ट हो जाता है कि अनुवाद करते समय छोटी-छोटी गलतियों के कारण इतिहास में भयंकर भूलें हो जाती हैं और भारतीय-इतिहास में ऐसी भूलें हुई हैं।

### विकासवाद के अनुसरण पर

आधुनिक वैज्ञानिकों का मत है कि सृष्टि के आरम्भ में सभी प्राणी और वस्तुएँ अपनी प्रारम्भिक स्थिति में थीं। धीरे-धीरे ही उनका विकास हुआ है। यह बात सुनने में बड़ी सही, स्वाभाविक और वास्तविक लगती है लेकिन जब यह सिद्धान्त मानव के विकास पर लागू करके यह कहा जाता है कि मानव का पूर्वज वनमानुष था और उसका पूर्वज बन्दर था और इस प्रकार से जब आगे बढ़ते हुए कीड़े-मकोड़े ही नहीं 'लिजलिजी' झिल्ली तक पहुँचा जाता है तो यह कल्पना बड़ी अटपटी-सी लगती है। चार्ल्स रॉबर्ट डार्विन (1809-1882) ने सन् 1871 ई. में अपने ग्रन्थ 'दि डिसेण्ट ऑफ़ मैन' में 'अमीबा' नाम से अति सूक्ष्म सजीव प्राणी से मनुष्य तक की योनियों के शरीर की समानता को देखकर एक जाति से दूसरी जाति के उद्भव की कल्पना कर डाली। जबकि ध्यान से देखने पर यह बात सही नहीं लगती क्योंकि भारतीय दृष्टि से सृष्टि चार प्रकार की होती है— 1. अण्डज, 2. पिण्डज (जरायुज), 3. उद्भिज्ज और 4. स्वेदज— तथा हर प्रकार की सृष्टि का निर्माण और विकास उसके अपने-अपने जातीय बीजों में विभिन्न अणुओं के क्रम और उनके स्वतः स्वभाव के अनुसार होता है। एक प्रकार की सृष्टि का दूसरे प्रकार की सृष्टि में कोई दखल नहीं होता। इसे इस प्रकार से भी समझा जा सकता है कि एक गौ से दूसरी गौ और एक अश्व से दूसरा अश्व तो हो सकता है किन्तु गौ और अश्व के मेल से सन्तति उत्पन्न नहीं हो सकती। हाँ, अश्व और गधे अथवा अश्व और जेब्रे, जो कि एक जातीय तत्त्व के हैं, के मेल से सन्तति हो सकती है, अर्थात् कीट से कीट, पतंगे से पतंगे, पक्षी से पक्षी, पशु से पशु और मानव से मानव की ही उत्पत्ति होती है। कीट, वानर या वनमानुष से मनुष्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती क्योंकि इनके परस्पर जातीय तत्त्व अथवा बीजों के अणुओं के क्रम अलग-अलग हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि एक जाति के बीजों में विभिन्न अणुओं का एक निश्चित क्रम रहता है। यह क्रम बीज के स्वतः स्वभाव से अन्यत्त्व को प्राप्त नहीं होता।

विकासवाद के मत को स्वीकार कर लेने पर ही मनुष्य के अन्दर ज्ञान की उत्पत्ति के लिए भी एक क्रम की कल्पना की गयी। तदनुसार यह मानने को बाध्य होना पड़ा कि प्रारम्भिक स्थिति में मानव बड़ा जंगली, बर्बर और ज्ञानविहीन था। उसे न रहना आता था और न भोजन करना। वह जंगलों में नदियों के किनारे रहता था और पशुओं को मारकर खाता था। अपनी सुरक्षा के लिए पत्थर के हथियारों का प्रयोग करता था। बाद में धीरे-धीरे धातुओं का प्रयोग करते-करते आगे बढ़कर ही वह आज की स्थिति में आया है।

दूसरी ओर भारत में यह मान्यता चली आ रही है कि सृष्टि के आरम्भ में ही ईश्वर ने विद्वान् ऋषियों के हृदय में ईश्वरीय ज्ञान उत्पन्न किया और उसी ज्ञान को ऋषियों द्वारा वेदों के रूप में प्रकट/संकलित किया गया अर्थात् प्रारम्भिक ऋषि बड़े ही ज्ञानवान् थे। वर्तमान वैज्ञानिकों में प्रारम्भिक मानव के अज्ञानी होने की बात आई ही इसलिए कि उनको मानव जाति के पूरे इतिहास (जो कि भारत के अलावा कहीं और सुलभ ही नहीं है) का पूर्ण ज्ञान ही नहीं है और न ही वे उस ज्ञान को प्राप्त करने में कोई रुचि ही रखते हैं। साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि आज के अधिकांश वैज्ञानिक यूरोप के हैं और उन्होंने वहाँ की स्थिति के अनुरूप मानव-विकास की कल्पना की है। जबकि मानव-सृष्टि का आरम्भ वहाँ हुआ ही नहीं है। उसका प्रारम्भ तो भारत में हुआ है एवं भारत की परम्परा के अनुसार यहाँ प्रारम्भिक काल में ही ऋषियों को ईश्वरीय ज्ञान मिला था। यह बात प्राचीन मिस्री और यूनानी-साहित्य में भी मिलती है अर्थात् इस संबंध में अकेले भारत का ही ऐसा मत नहीं है, अन्य देशों की भी प्राचीन काल में यही अवधारणा रही है। पृ. भगवद्गोता का मत है कि जिस प्रकार प्राणियों की उत्पत्ति के विषय में विकासवाद का मत निराधार है, उसी प्रकार मानव के ज्ञान की दिन-प्रतिदिन उन्नति होने का मत भी निस्सार है। उनके अनुसार तो स्थिति इसके उलट है क्योंकि सत्यता, धर्मपालन, आयु, स्वास्थ्य, शक्ति, बुद्धि, स्मृति, आर्थिक स्थिति, सुख, राज्य-व्यवस्था, भूमि की उर्वरा-शक्ति तथा सस्यों का रस-वीर्य दिन-प्रतिदिन बढ़ने के स्थान पर न्यून हुए हैं। वर्तमान युग में पचास वर्ष के पश्चात् जिस प्रकार मनुष्य निर्बल होना आरम्भ हो जाता है तथा उसकी मस्तिष्क-शक्ति किञ्चित-किञ्चित हासोन्मुख होती जाती है, ठीक उसी प्रकार सत्ययुग के दीर्घकाल के पश्चात् पृथिवी से बने सब प्राणियों में हास का युग आरम्भ हो जाता है। प्राणियों के अतिरिक्त अन्य पदार्थों में भी हास हो रहा है।

इस सन्दर्भ में उन्होंने निम्नलिखित उद्धरण दिए हैं—

मनुस्मृति में लिखा है—

**‘अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः।  
कृते त्रेतादिषु ह्येषां आयुर्हसति पादशः॥’**

अर्थात् सत्ययुग में मनुष्य नीरोग और सर्वप्रकार से पूर्णकाम थे। तब मानव की आयु 400 वर्ष थी। प्रतियुग मानव की आयु पाद-पाद न्यून होती जाने से त्रेता में 300 वर्ष, द्वापर में 200 वर्ष और कलि में 100 वर्ष रह जाती है।

महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास ने लिखा है—

**‘आयुर्वीर्यमथो बुद्धिर्बलं तेजश्च पाण्डव।  
मनुष्याणामनुयुगं हसतीति निबोध मे॥’**

अर्थात्, हे पाण्डव ! युग-युग में मनुष्यों की आयु, वीर्य, बुद्धि, बल और तेज हास को प्राप्त होता है।

यह हास केवल मनुष्य में ही नहीं हुआ अपितु पशु आदि में भी यही हास युग-युग में होता है। वायुपुराण ( 58.111 एवं 59.93-94) में भी इसका वर्णन है।

विकासवाद के इस सिद्धान्त के कारण भारत के प्राचीन इतिहास को आधुनिक रूप में लिखते समय अनेक भ्रान्तियाँ पैदा करके उसे विकृत किया गया है।

## **पुरातात्विक सामग्री की भ्रामक समीक्षा को स्वीकारकर**

प्राचीन इतिहास को जानने का एक प्रमुख आधार किसी भी स्थान विशेष से उत्खनन में प्राप्त पुरातात्विक सामग्री, यथा— ताम्रपत्र तथा अन्य प्रकार के अभिलेख, सिक्के, मुहरें और प्राचीन नगरों, किलों, मकानों, मृदभाण्डों, मन्दिरों, स्तम्भों आदि के अवशेष भी हैं।

उत्खननों से प्राप्त उक्त सामग्री के आधार पर पुरातात्विक लोग अपने

शास्त्रीय विवेचन से उस स्थान से संबंधित सभ्यता की प्राचीनता का आकलन करते हैं। उसी से पता चलता है कि वह सभ्यता कब पनपी थी, कहाँ-कहाँ फैली थी और किस स्तर की थी तथा उस कालखण्ड विशेष में समाज की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि स्थितियाँ क्या और कैसी थीं ? भारत में 1920 ई के बाद से निरन्तर होती आ रही पुरातात्विक खोजों में प्राप्त हुई सामग्रियों का ही यह परिणाम है कि आज भारत के प्राचीन इतिहास के अनेक ऐसे अज्ञात पृष्ठ, जिनके बारे में सामान्यतः आज लोगों को कुछ पता ही नहीं था, खुलकर सामने आते जा रहे हैं।

अब तक कुल 1,400 स्थानों (971 भारत में, 428 पाक में और एक अफ़गानिस्तान) पर पुरातात्विक खुदाई हो चुकी है। उत्खननों से प्राप्त सामग्री के आधार पर स्थिति इस प्रकार रही है—

**सिंधु नद उपत्यका के उत्खनन—** लाहौर और मुल्तान के बीच रावी नदी की एक पुरानी धारा के तट पर बसे हड़प्पा (जो प्राचीन भारत के मद्रदेश का भाग था) तथा सिंध प्रान्त (जिसका प्राचीन नाम सौवीर था) के लरकाना ज़िले के मोयां-जा-दड़ों अर्थात् मरे हुआ की ढेरी या टीले में हुए उत्खननों से भारत की प्राचीनता और उसके मौलिक स्वरूप का विलक्षण प्रमाण मिला है। उत्खननों में मिले प्रमाणों के आधार पर ही वे इतिहासकार, जिन्हें भारतीय-इतिहास, सभ्यता और संस्कृति की प्राचीनता, श्रेष्ठता और व्यापकता पर विश्वास नहीं था, जिनका यह मानना था कि भारत में सभ्यता का उदय पश्चिम के कुछ देशों की तुलना में बहुत बाद में हुआ था, और वह भी दूसरे देशों के अनुकरण पर ही हुआ था जिन्होंने भारत के सम्पूर्ण इतिहास की प्राचीनतम सीमा को 2500 ई पू तक में बाँध दिया था, यह मानने को बाध्य हुए कि भारतीय-सभ्यता निश्चय ही उससे कहीं अधिक प्राचीन है जितनी कि भारतीय-इतिहास को आधुनिक रूप से लिखनेवाले इतिहासकार मानते आ रहे हैं।

हड़प्पा सभ्यता, जिसे नगर सभ्यता माना गया और जिसका प्रारम्भिक काल 3250-2750 ई पू निश्चित किया गया था, के अवशेषों को देखकर इतिहासकारों को यह सोचने के लिए भी बाध्य होना पड़ा कि यह सभ्यता एकाएक तो पैदा हो नहीं गई होगी, कहीं-न-कहीं और किसी-न-किसी जगह ऐसा केन्द्र अवश्य रहा होगा जहाँ यह विकसित हुई होगी और जहाँ से आगे जाकर

1. मनुस्मृति, 1.83

2. महाभारत, वनपर्व, 190.12-13 (गीताप्रेस-संस्करण)

लोगों ने बस्तियों का निर्माण किया होगा।

**हड़प्पा-पूर्व सभ्यता की खोज—** इस दृष्टि से पाकिस्तान-स्थित क्वेटाघाटी के किलीगुज मुहम्मद, रानी घुंडई, आग्री बस्ती, कोट दीजी और भारत में गंगा की घाटी में आलमगीरपुर, गुजरात में लोथल, रंगपुर, मोतीपीपली आदि, राजस्थान में कालीबंगन, पंजाब-हरियाणा में रोपड़ तथा मध्यप्रदेश में कई स्थानों की खुदाइयों में मिली सामग्री हड़प्पा-पूर्व की ओर ले जा रही है। धोलावीरा की खुदाई में तो एक पूरा विकसित नगर मिला है, जिसमें पानी की उपलब्धि के लिए बाँध आदि की तथा जल-निकासी के लिए नालियों की सुन्दर व्यवस्था के साथ भवन आदि बहुत ही परिष्कृत रूप में वैज्ञानिक ढंग से बने हुए मिले हैं। एक अभिलेख भी मिला है जो पढ़ा नहीं जा सका है। यही नहीं, वहाँ ऐसे चिह्न भी मिले हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि वहाँ का व्यापार उन्नत स्तर का रहा है।

**सिंधुघाटी सभ्यता सरस्वती नदी की घाटी में पनपी वैदिक सभ्यता का ही अंग है—** भारत और पाकिस्तान के विभिन्न भागों में जैसे-जैसे नये उत्खननों में पुरानी सामग्री मिलती जा रही है, उसके आधार पर भारत के आधुनिक इतिहासकारों द्वारा निर्धारित भारतीय-सभ्यता की प्राचीनता की सीमा 4,500-5,000 वर्ष से बढ़ते-बढ़ते 10,000 वर्ष तक पहुँच गई है। अब तो भारतीय-इतिहास के आधुनिक लेखकों को भी यह मानना पड़ रहा है कि वह सभ्यता, जिसे एक समय सीमित क्षेत्र में केन्द्रित मानकर सिंधुघाटी सभ्यता का नाम दिया गया था, वास्तव में बिलोचिस्तान, सिंध, पूरा पंजाब, हरियाणा, उत्तरप्रदेश, बिहार, बंगाल, मध्यप्रदेश, राजस्थान और गुजरात, अर्थात् लगभग पूरे भारत में ही फैली हुई थी। इस सन्दर्भ में जैसलमेर के एक पार्क में ज़मीन में लेटी पेड़ों की पूरी-पूरी वे आकृतियाँ उल्लेखनीय हैं, जिनकी लकड़ी पत्थर-जैसी बन चुकी है, किन्तु वह पत्थर-जैसी लकड़ी वजन में सामान्य लकड़ी के समान ही हलकी है। पार्क में लगे एक सूचना-पट्ट (1980-'81 में हिंदी में लिखा यह सूचना-पट्ट लेखक ने स्वयं देखा था) में बताया गया था कि लकड़ी से पत्थर बनने का यह परिवर्तन लगभग दो करोड़ वर्ष में हुआ होगा। सूचना में यह भी बताया गया था कि यहाँ पहले सागर था, फिर रेगिस्तान बना था। सम्भव है कि इस पार्क का संबंध जलप्रलय अथवा सरस्वती नदी के लोप से रहा हो।

पुरातत्त्व-विज्ञान का कार्यक्षेत्र आलोच्य विषय पर विश्वसनीय

सिद्धान्तों को बताकर सही निष्कर्ष निकालने के मार्ग को प्रशस्त करने तक ही है। यह नहीं कि वह उस विषय पर सिद्धान्तों की आड़ लेकर तरह-तरह की हैरानी, परेशानी या उलझनें पैदा करे। जबकि भारत के प्राचीन इतिहास के काल-निर्धारण के सन्दर्भ में ज्यादातर मामलों में ऐसा ही देखा गया है कि पुरातात्विकों द्वारा प्राचीन सामग्री का विश्लेषण करते समय एक-से-एक हैरानी-परेशानी भरे उलझनपूर्ण निष्कर्ष निकाले गये। इसीलिए जब उन्हें भारतीय-कालगणना के आधार पर कसा जाता है तो वे सही नहीं लगते। उनमें बहुत बड़े परिमाण में अन्तर आता है। इस सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि पुरातात्विक साक्ष्य न तो अन्तिम होते हैं और न स्वतः सिद्ध। अतः केवल उनके आधार पर निकाले गए निष्कर्ष भ्रामक हो सकते हैं; क्योंकि जैसे-जैसे नये-नये उत्खनन होते जाते हैं, वैसे-वैसे नयी-नयी वस्तुएँ उपलब्ध होती रहती हैं और उनके आधार पर पहली स्थितियाँ बदल जाती हैं। हड़प्पा-काल की सामग्री से भारतीय-सभ्यता, संस्कृति और इतिहास 3200 ई. पू. तक पहुँच गया था किन्तु पाकिस्तान में जे. एफ. जैरिंग (जन्म : 1940) द्वारा की गई मेहरगढ़ की खुदाई में मिली सामग्री ने उसे और भी पुरानी (8000 ई. पू.) सिद्ध कर दिया और अब मिल रही नयी-नयी सामग्री उसे 10,000 वर्ष से अधिक पूर्व तक ले जा रही है।

### तिथ्यांकन-प्रणाली की भ्रामक समीक्षा को मानकर

आजकल पुरातात्विक साक्ष्यों की प्राचीनता का आकलन करने के लिए कार्बन तिथ्यांकन प्रणाली (Radio Carbon Dating Technique) का काफी उपयोग किया गया है। डॉ. संकालिया (1908-1989) आदि भारतीय-पुरातात्विकों को इस प्रणाली पर बड़ा विश्वास है। इस प्रणाली की खोज 1949 ई. में शिकागो विश्वविद्यालय के डॉ. विलियर्ड फ्रैंक लिब्बी (1908-1980) और उनके दो सहयोगियों ने की थी। इसके आविष्कर्ताओं ने स्वयं यह स्वीकार किया था कि यह प्रणाली अभी (1952 ई. में) प्रयोगात्मक अवस्था में है और उसमें सुधार की सम्भावना हो सकती है।

डॉ. रिचर्ड एडिंगेन्फेल्टोव ने डॉ. लिब्बी के इस प्रणाली से संबंधित

1. सर मोर्टिमर हीलर-कृत 'Archaeology from the Earth' (1954) का हिंदी-अनुवाद 'पृथ्वी से पुरातत्त्व', पृ. 44-45, अनुवादक डॉ. हरिहर त्रिवेदी

विचारों को बड़ा त्रुटिपूर्ण बताया है—

'....That there is strong indication despite the large errors, that the present natural production rate exceeds the natural decay rate by a much as 25%. It appears that equilibrium in the production and decay of carbon 14 may not be mentioned in detail.'

पुरातत्त्व संस्थान, लन्दन विश्वविद्यालय के सर मोर्टिमर हीलर (1890-1976) के अनुसार भी इस प्रणाली के आधार पर निकाले गए निष्कर्ष असत्य हो सकते हैं।

भारतीय-विद्वान् डॉ. किरण कुमार थपलियाल ने भी इस प्रणाली को दोषपूर्ण माना है।

डॉ. रिचर्ड आदि के आक्षेप तो पुराने हो गए हैं परन्तु बाद के अनुसन्धानों से भी यह प्रणाली दोषयुक्त सिद्ध होती है। श्री शशांक भूषण राय ने 'डेट ऑफ महाभारत बैटल' के पृ. 5-6 पर इस प्रणाली के भारतीय-विशेषज्ञ धर्मपाल अग्रवाल के प्रमाण से लिखा है कि उत्खनन में प्राप्त एक द्रव्य की आयु जाँचने के लिए उसको तीन विभिन्न प्रयोगशालाओं में भेजा गया, जिनसे नौ अलग-अलग परिणामों में 2737 ई. पू. से 2058 ई. पू. तक का समय निर्धारित किया गया अर्थात् कुल मिलाकर उस द्रव्य के काल-निर्धारण के निष्कर्ष में 679 वर्ष का बड़ा अन्तर आ गया। एक ही द्रव्य के काल में इतने बड़े अन्तर को देखकर कार्बन-14 तिथ्यांकन प्रणाली को कितना प्रामाणिक माना जा सकता है, यह विचारणीय है।

श्री थपलियाल एवं श्री शुक्ला ने भी इस प्रणाली की प्रामाणिकता पर सन्देह व्यक्त किया है।<sup>1</sup> उनका कहना है कि एक बात तो स्पष्ट हो गई है कि अब विद्वज्जन कार्बन-14 विधि के महत्त्व को स्वीकार करते हुए भी इसे इतनी निश्चित रूप से सही तिथि बतानेवाली विधि नहीं मानते जितनी कि शुरू-शुरू में, जब इस विधि की खोज हुई थी। विदेशों में अब 'वृक्ष-कालानुक्रमिका' (डेन्ड्रोक्रोनोलॉजी) विधि से प्राप्त और अपुवर्ण मृत्तिका (Clay Varve) परीक्षण

1. *Revival of Geophysics* (Journal), Vol. I, p.51, 1963

2. 'सिंधु सभ्यता', पृ. 312

से प्राप्त तिथियाँ और कार्बन-14 विधि में प्राप्त तिथियों में पर्याप्त अन्तर पाया गया है। मिस्र और मेसोपोटामिया की मध्ययुग की अनेक सिद्ध ऐतिहासिक तिथियों का जब कार्बन-14 विधि में परीक्षण किया गया तो वे काफी समय बाद की निकलीं। कार्बन-14 विधि के अनुसार तृतीय राजवंश के जोसोर (Djoser : 2670 BCE) की जो तिथि निकली वह इसके उत्तराधिकारी हुनी (Huni : 2625 BCE) की लगभग निश्चित तिथि के 800 वर्ष बाद की रही। बहुत सम्भव है कि इन्हीं बातों को देखकर हीलर का यह मत बना हो कि 'हो सकता है कि सिंधु-सभ्यता की कार्बन-तिथ्यांकन प्रणाली के आधार पर निकाली गई तिथियों के साथ भी ऐसा ही कुछ हुआ हो।'

सन् 1968 से 1972 तक भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के महानिदेशक प्रो. ब्रजवासी लाल (जन्म : 1921) ने भी अयोध्या में किए गए पूर्व उत्खनन से प्राप्त सामग्री का इसी विधि से परीक्षण करके श्रीराम को श्रीकृष्ण के बाद में हुआ बताया था किन्तु सन् 2003 में किए गए उत्खनन में मिली सामग्री के विश्लेषणों ने पूर्व-निर्धारित तथ्यों को बदल दिया है। अब श्रीराम को श्रीकृष्ण से पूर्व हुआ माना गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कार्बन-14 तिथ्यांकन-प्रणाली स्वयं में ही सन्देह के घेरे में बनी हुई है। ऐसी विधि के आधारों पर निकाले गए उक्त निष्कर्षों से सहमत कैसे हुआ जा सकता है ? ऐसे-ऐसे असंगत निष्कर्षों से इतिहास का वास्तविक प्रयोजन ही समाप्त हो जाता है और वह व्यर्थ के विवाद का विषय बन जाता है। अतः भारतीय इतिहास के सन्दर्भ में भी जो तिथियाँ कार्बन-तिथ्यांकन प्रणाली से निकाली गई हैं वे और उनके आधार पर निकाले गए ऐतिहासिक निर्णय कहाँ तक माने जाने योग्य हैं, यह एक विचारणीय प्रश्न है।

## पाश्चात्य विद्वानों के संस्कृत के अधिकचरे ज्ञान की श्रेष्ठता पर विश्वासकर

भारतीय-संस्कृति का मूलाधार उसका प्राचीन वाङ्मय, जिसमें वेद, पुराण, स्मृति, रामायण, महाभारतादि ग्रन्थ सम्मिलित हैं, संस्कृत-भाषा में ही सुलभ हैं। देश में अनेक बार उथल-पुथल हुई, भाषाओं के कितने ही रूपान्तर हुए, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक परिवर्तन भी हुए, फिर भी संस्कृत उसी रूप में विद्यमान रही। संस्कृत-भाषा के कारण ही भारत के लोग प्राचीनतम काल से चली आ रही अपनी



संस्कृति से अनन्य रूप से जुड़े रहे। देश की जनता को एकसूत्र में बाँधने में संस्कृत-भाषा का जो योगदान रहा है, उसे कभी भुलाया नहीं जा सकता।

अंग्रेजों ने भारत की सत्ता की बागडोर संभालने के समय ही देश, धर्म और समाज में संस्कृत-भाषा के प्रभाव को परिलक्षित करके चाहे अपने स्वार्थ के लिए ही क्यों न हो, संस्कृत को भाषा के रूप में महत्व दिया। फलतः इंग्लैण्ड, जर्मनी आदि देशों में भी संस्कृत के अध्ययन को बल मिला।

परन्तु कोई भी, चाहे कितना भी योग्य क्यों न हो, विदेशी भाषा में उतना पारंगत नहीं हो पाता, जितना अपनी भाषा में। फिर यूरोप में तो ऐसे ही लोगों ने, जिनका संस्कृत का ज्ञान अधिक परिपक्व नहीं था, संस्कृत की पुस्तकें लिखीं तथा उन्हीं पुस्तकों के आधार पर वहाँ के लोग संस्कृत में शिक्षित हुए। अधिकचरे ज्ञान पर आधारित ग्रन्थों के माध्यम से पढ़े हुए व्यक्ति अपेक्षाकृत कम ही दक्ष रहते हैं और अदक्ष व्यक्ति लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक पहुँचाता है। यही यूरोप के संस्कृत के विद्वानों ने किया। फिर चाहे वह मैक्समूलर हो या कर्नल टॉड, विंटरनिट्ज़ हो या वेबर, रॉथ हो या कीथ— सभी ने भारत के संस्कृत-वाङ्मय को पूरी तरह से न समझ सकने के कारण अर्थ का अनर्थ ही किया। भारतीय-इतिहास के सन्दर्भ में पाश्चात्य विद्वानों के ऐसे अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं, जिन्होंने अपने अधिकचरे ज्ञान के कारण न केवल संस्कृत के प्राचीन साहित्य के अमूल्य रत्नों को ही नष्ट किया है, वरन् भारतीय-इतिहास की रचना में अपने भ्रष्ट उल्लेखों द्वारा बिगाड़ भी पैदा किया है। यहाँ मात्र दो विद्वानों के उदाहरण, एक तो यूरोप में संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित माने जानेवाले मैक्समूलर का और दूसरे संस्कृत सीखने का प्रयास करनेवाले कोलोनल जेम्स टॉड का, देकर विदेशियों के संस्कृत-ज्ञान की समीक्षा की जा रही है—

### फ्रेडरिक मैक्समूलर

कात्यायन कृत ‘ऋक्सवर्णिकमणी’ की वृत्ति की भूमिका में षड्गुरु शिष्य का एक श्लोकार्द्ध इस रूप में मिलता है—

‘स्मृतेश्च कर्ता श्लोकानां भ्राजमानां च कारकः’

मैक्समूलर ने इसका अर्थ 'The slokas of the Smriti' करके अपने नोट में लिखा कि— ‘भ्राजमान पद समझ में नहीं आता, यह पार्षद हो सकता है।’ जबकि वास्तविकता यह है कि वह समझ ही नहीं सका कि इसका अर्थ है—

‘कात्यायन, स्मृति का और भ्राज नामक श्लोकों का कर्ता था’।

मैक्समूलर के संस्कृत-ज्ञान के सन्दर्भ में स्वामी दयानन्द सरस्वती (1824-1883) ने कहा है कि जो लोग कहते हैं कि जर्मन-देश में संस्कृत-विद्या का बहुत प्रचार है और जितनी संस्कृत मोक्षमूलर साहब पढ़े हैं, उतनी कोई नहीं पढ़ा, यह कहने मात्र को है, क्योंकि ‘यस्मिन्देशे दुमो नास्ति तत्रौरण्डो दुमायते’ अर्थात् जिस देश में कोई वृक्ष नहीं होता, उस देश में एरण्ड को ही बड़ा वृक्ष मान लेते हैं, वैसे ही यूरोप देश में संस्कृत-विद्या का प्रचार न होने से जर्मन लोगों ने और मोक्षमूलर साहब ने जो थोड़ा-सा पढ़ा, वही उस देश के लिए अधिक है, परन्तु आर्यावर्त देश की ओर देखें तो उनकी बहुत न्यून गणना है।... उनका संस्कृत-ज्ञान कितना और कैसा था, यह इस मंत्र के उनके अर्थ से पता चलता है—

‘युवन्ति ब्रध्नमरुशं चरन्तं परितः तस्थुः। रोचन्ते राचना दिवि।’

मैक्समूलर ने इस मंत्र का अर्थ ‘घोड़ा’ किया है। इससे तो जो सायणाचार्य ने ‘सूर्य’ अर्थ किया है, वह अच्छा है, परन्तु इसका ठीक अर्थ ‘परमात्मा’ है।’

### कोलोनल जेम्स टॉड

इनके संस्कृत-ज्ञान के बारे में पुं गौरीशंकर हीराचन्द ओझा (1863-1947) ने ‘राजस्थान’ के पृष्ठ 26-27 में लिखा है कि ‘राजस्थान में रहने के कारण यहाँ की भाषा से तो वे परिचित हो गए थे परन्तु संस्कृत का ज्ञान अधिक न होने से संस्कृत-पुस्तक, लेख और ताम्रपत्रों का सारांश तैयार करने में उनको अपने गुरु यति ज्ञानचन्द्र पर भरोसा रखना पड़ता था। ज्ञानचन्द्र कविता के प्रेमी थे। अतः वे कविता की भाषा के तो ज्ञाता थे परन्तु प्राचीन लेखों को भलीभाँति नहीं पढ़ सकते थे। ऐसे ही उनका संस्कृत-ज्ञान भी साधारण ही था, इसलिए टॉड साहब की संग्रह की हुई सामग्री में से संस्कृत-पुस्तक, लेखादि का वे अधिक उपयोग न कर सके और जो लेखादि पुं ज्ञानचन्द्र जी ने पढ़े भी, उनमें बहुत-सी अशुद्धियाँ रह गईं, वे ‘द एनल्स ऑफ़ राजस्थान’ में ज्यों-का-त्यों दर्ज हैं।... कसबा के लेख के 13वें श्लोक में ‘देगिणीनाम तस्यासी धर्मपत्नी द्विजोद्भवां’ उत्कीर्ण है,

जिसमें से ‘द्विजोद्भवां’ को ‘यदूदभवां’ पढ़कर जाटों का यादवों के साथ विवाह होना अनुमानकर जाटों की राजपूतों में गणना कर ली। यह बड़ी भारी भूल उस लेख का शुद्ध भाषांतर न मिलने से हुई। ऐसी ही और भी बहुत-सी अशुद्धियाँ उक्त पुस्तक के लेखादि के शुद्ध भाषांतर के अभाव में हुई हैं। संस्कृत का अच्छा ज्ञान न होने से जहाँ उन्होंने कई शब्दों के मनमाने अर्थ किए हैं, वहीं कई प्राचीन स्थानों के प्राचीन नाम कल्पित धरे हैं, जैसे— ‘शील’ का अर्थ ‘पर्वत’, ‘कुकुत्थ’ का अर्थ ‘कुश-संबंधी’, ‘द्वारकानाथ’ का अर्थ ‘ईश्वर का द्वार’, ‘अन्नदेव’ का अर्थ ‘अन्नदाता’ ‘बृहस्पति’ का अर्थ ‘बैल का मालिक’ किया है तथा ‘मंडोर’ को ‘मंदोदरी’, ‘जालोर’ को ‘जालीन्द्र’, ‘नरवर’ को ‘निस्सिद्’ बता दिया है और गुजरात के चालुक्य-नरेश कुमारपाल (1125-1171) को चौहान-वंश का बता दिया है आदि आदि।

संस्कृत-भाषा के सन्दर्भ में सर विलियम ज़ोन्स और फ्रेंच-विद्वान् चेजी का यह कथन उल्लेखनीय है— ‘संस्कृत-भाषा सीखने में बहुत सहज है पर इसके बावजूद इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि संस्कृत वास्तव में उतनी सहज है नहीं और किसी भी व्यक्ति के लिए यह असम्भव है कि वह अपने जीवनकाल में इसे सीखकर और इसके साहित्य की किसी एक भी शाखा पर पूरी सिद्धि पा सके।’

स्पष्ट है कि पाश्चात्य विद्वानों के संस्कृत के अधकचरे ज्ञान के कारण भी भारतीय-इतिहास में अनेक विकृतियाँ पैदा हुई हैं।

## भारत के इतिहास में विकृतियाँ की गई, क्या-क्या ?

यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि कोई भी शासक जाति कभी भी अपने से शासित जाति को अपने से किसी भी रूप में श्रेष्ठ और उच्च मानने को तैयार नहीं हो पाती। अंग्रेज़ जाति भी इसमें अपवाद नहीं रही। वह अपने शासनकाल में न तो राजनीतिक और न ही सामाजिक स्तर पर कभी भी यह मानने को तैयार हो सकी कि भारतीय-समाज कभी भी उससे अधिक ज्ञानवान् और गौरवपूर्ण रहा था। धार्मिक दृष्टि से तो वह प्रारम्भ में यह भी मानने को तैयार नहीं हुई कि आर्य (हिंदू) धर्म में कभी भी कुछ भी अच्छा रहा है। उनके अनुसार यदि उसमें कुछ अच्छा मिलता भी है तो सिर्फ इसलिए कि उसपर ईसायत की छाप पड़ गई थी। जर्मन-प्राच्यविद् अल्ब्रेट वेबर (1825-1901) ने गीता और महाभारत ईसाई-विचारों से प्रभावित है, ऐसा सिद्ध करने का दुःसाहस किया। उसने लिखा है— ‘सारे ग्रन्थ में व्यापक कृष्ण के मत का विचित्र चित्रण विचार करने योग्य है। ईसाई-कथानक और दूसरे पाश्चात्य प्रभाव उसमें निःसन्देह विद्यमान हैं।’

ईसा की 16वीं-17वीं शताब्दी में व्यापारी बनकर आए अंग्रेज़ 18वीं शताब्दी के अन्त तक आते-आते उन्हीं भारतीय-राजाओं और नवाबों के वंशजों पर पूरी तरह से छा गए थे, जिनके सामने अपने लिए सुख-सुविधाओं की मांग करने की दृष्टि से वे कभी हाथ बांधकर खड़े रहा करते थे। दो सौ वर्ष के

1. 'The peculiar colouring of the Krishna sect, which pervades the whole book, is noteworthy: Christian legendry matter and other Western influences are unmistakably present...'

—The History of Sanskrit Literature, Popular ed. 1914, p. 189, f: cf. also p. 300, f.

कालखण्ड में छल से, बल से और कूटनीति से भारतीय-नरेशों की सत्ताएँ हथियाकर देश की प्रमुख राजशक्ति ही नहीं बन गए वरन् वे देश की बागडोर संभालने में भी सफल हो गये। अपनी सत्ता को ऐतिहासिक दृष्टि से उचित ठहराने के लिए तत्कालीन कम्पनी-सरकार ने भारत के इतिहास में विकृतियाँ लाने के लिए विभिन्न प्रकार की भ्रान्तियों का निर्माण कराकर उनको विभिन्न स्थानों पर विभिन्न व्यक्तियों द्वारा विभिन्न प्रकार से प्रचारित कराया। ये विकृतियाँ तो अनगिनत हैं, पर यहाँ कुछ का ही उल्लेख 4 खण्डों, यथा— ऐतिहासिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक और विविध में वर्गीकृत करके किया जा रहा है—

**ऐतिहासिक :** आर्य लोग भारत में बाहर से आए ● आर्यों ने भारत के मूल निवासियों को युद्धों में हराकर दास या दस्यु बनाया ● भारत के मूल निवासी द्रविड़ ● दासों या दस्युओं को आर्यों ने अनार्य बनाकर शूद्र की कोटि में डाला ● यूरोपवासी आर्यवंशी भारत की सभ्यता विश्व में सर्वाधिक प्राचीन नहीं ● आदिमानव जंगली और मांसाहारी ● वेदों का संरचना-काल 1500 से 1200 ई पू तक ● भारत की ऐतिहासिक घटनाओं और महापुरुषों की तिथियों की हेर-फेर

**साहित्यिक :** भारत में ऐतिहासिक सामग्री का अभाव ● भारत का प्राचीन साहित्य, यथा— रामायण, महाभारत, पुराणादि ग्रन्थ 'मिथ' ● राजाओं और राजवंशों के वर्णन अतिरंजित एवं अवास्तविक ● सिकन्दर का भारत पर आक्रमण 327 ई पू में हुआ और सेंड्रोकोटस (चन्द्रगुप्त मौर्य) 320 ई पू में भारत का सम्राट् बना ● यूनानी-साहित्य में वर्णित सेंड्रोकोटस ही चन्द्रगुप्त मौर्य ● पालीबोध्या ही पाटलिपुत्र

**वैज्ञानिक :** भारतीय-कालगणना अतिरंजित और अवैज्ञानिक ● प्रागैतिहासिक काल की अवधारणा ● वैज्ञानिकता के नाम पर ऐतिहासिक तथ्यों की उलट-फेर

**विविध :** ऐतिहासिक महापुरुषों की तिथियाँ : ● (क) गौतम बुद्ध 563 ई पू में पैदा हुए ● (ख) कुमारिल भट्ट 8वीं शताब्दी में हुए ● (ख) आद्य जगद्गुरु शंकराचार्य 788 ई में अवतरित हुए ● (घ) अशोक 265 ई पू में गद्दी पर बैठा ● (ङ) कनिष्क का राज्यारोहण 78 ई में हुआ ● (च) विक्रम संवत् के

प्रवर्तक उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य का कोई ऐतिहासिक अस्तित्व नहीं ● सरस्वती नदी का कोई अस्तित्व नहीं ● भारत का शासन समग्र रूप में एक केन्द्रीय सत्ता के अंतर्गत केवल अंग्रेजों के शासनकाल में आया, उससे पूर्व वह कभी भी एक राष्ट्र के रूप में नहीं रहा

## ऐतिहासिक

### आर्य लोग भारत में बाहर से आए

अंग्रेजों ने भारत में विदेश से आकर की गई अपनी सत्ता की स्थापना को सही ठहराने के उद्देश्य से ही आर्यों के संबंध में, जो कि यहाँ के मूल निवासी थे, यह प्रचारित कराना शुरू कर दिया कि वे लोग भारत में बाहर से आए थे और उन्होंने भी बाहर से ही आकर यहाँ अपनी राज्यसत्ता स्थापित की थी। फिर उन्होंने आर्यों को ही नहीं, अपितु नीग्रिटो, प्रोटो आस्ट्रोलायड, मंगोलाभ, द्रविड़ आदि विभिन्न जातियों को भी भारत के बाहर से आनेवाली बताया।

यह ठीक है कि पाश्चात्य विद्वान् और उनके पदानुगामी भारतीय-इतिहासकार 'आर्यों' को भारत में बाहर से आनेवाला भले ही मानते हों किन्तु भारत के किसी भी स्रोत से इस बात की पुष्टि नहीं होती। अनेक भारतीय-विद्वान् इसे मात्र एक भ्रान्ति से अधिक कुछ नहीं मानते। भारत के अधिकांश वैदिक विद्वान् इस बात पर एकमत हैं कि यहाँ की किसी भी प्राचीन साहित्यिक या अन्य प्रकार की रचना में कोई भी ऐसा उल्लेख नहीं मिलता, जिससे यह सिद्ध होता हो कि आर्यों ने बाहर से आकर यहाँ राज्य-सत्ता स्थापित की थी।

आर्यों के आदि देश, आर्य-भाषा, आर्य-सभ्यता और संस्कृति के संबंध में सबसे प्राचीन और प्रामाणिक साक्ष्य ऋग्वेद है। यह आर्यों का ही नहीं अपितु विश्व का सबसे प्राचीन ग्रन्थ माना जाता है। किन्तु इसमें जितना भी भौगोलिक या सांस्कृतिक उल्लेख आता है वह सब इसी देश के परिवेश का है। ऋग्वेद के नदीसूक्त में एक भी ऐसी नदी का नाम नहीं मिलता जो भारत के बाहर की हो। इसमें सिंधु, सरस्वती, गंगा आदि का ही उल्लेख आता है। अतः इन नदियों से घिरी भूमि ही आर्यों का देश है और आर्य लोग यहीं के मूल निवासी हैं। यदि आर्य कहीं बाहर से आए होते तो कहीं तो उस भूमि अथवा परिवेश का कोई तो उल्लेख ऋग्वेद में मिलता। सायणादि भाष्यकारों ने भी आर्यों के बाहर से आने के सन्दर्भ में भारत से बाहर के किसी भी स्थान का कोई विवरण नहीं दिया।

इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि आर्यों ने भारत को ही अपनी मातृभूमि, धर्मभूमि और कर्मभूमि मानकर इसपर अपना सर्वस्व न्यौछावर किया है। जिस रूप में उन्होंने भारतवर्ष को अपनाया है, वैसा किसी भी पराए देश का निवासी उसको नहीं अपना सकता था। यहाँ यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि आर्यों ने सप्तसिंधु के बाहर के निवासियों को बहुत ही घृणापूर्वक 'म्लेच्छ' कहकर पुकारा है— 'म्लेच्छदेशस्त्वतः परः'।<sup>1</sup> क्या ऐसा कहनेवाले स्वयं म्लेच्छ देश से आनेवाले हो सकते हैं, ऐसा नहीं हो सकता।

दूसरी ओर भारत के इतिहास-लेखन के क्षेत्र में 18वीं और 19वीं शती में आनेवाले पाश्चात्य विद्वानों ने अपने तर्कों के सामने, भले ही वे अनर्गल ही क्यों न रहे हों, इन बातों पर ध्यान नहीं दिया। उल्टे अपने कथ्यों से सभी को इस प्रकार का विश्वास दिलाने का पूरा प्रयास किया कि आर्य लोग भारत में बाहर से ही आए थे जबकि भारत के सन्दर्भ में विश्व के भिन्न-भिन्न देशों में मिल रहे प्राचीन ऐतिहासिक एवं साहित्यिक ब्योरो तथा उत्खननों में मिल रही पुरातात्विक सामग्रियों का जैसे-जैसे गहन अध्ययन होता जा रहा है, वैसे-वैसे विद्वान् लोग इस निष्कर्ष पर पहुँचते जा रहे हैं कि भारत ही आर्यों का मूल स्थान है और यहीं से आर्य बाहर गए थे। वे लोग बाहर से यहाँ नहीं आए थे।

इस दृष्टि से विदेशी विद्वानों में यूनान के मेगस्थनीज, फ्राँस के लुई जकोलियट, इंग्लैण्ड के कर्जन, मुरो, एलफिन्सटन आदि तथा देशी विद्वानों में स्वामी विवेकानन्द, डॉ॰ भीमराव अम्बेडकर, डॉ॰ सम्पूर्णानन्द, डॉ॰ राधाकुमुद मुखर्जी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। उन्होंने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा है कि आर्य भारत में विदेशी नहीं थे। दूसरी ओर मैक्समूलर, पोर्कोक, जोन्स, कुक टेलर, नारायणराव भवानराव पावगी, भजन सिंह आदि अनेक विदेशी और देशी विद्वानों का तो यह मानना रहा है कि आर्य विदेशों से भारत में नहीं आए वरन भारत से ही विदेशों में गए हैं।

जिस समय यूरोप के अधिकांश विद्वान् और भारत के भी अनेक इतिहासकार यह मान रहे थे कि आर्य भारत में बाहर से आए, तभी 1900 ई. में पेरिस सम्मेलन में स्वामी विवेकानन्द ने सिंह-गर्जना की थी कि यह एक

मूर्खतापूर्ण प्रलाप मात्र है कि भारत में आर्य बाहर से आए हैं—

'...where is your proof? Guess-work? Then keep your fanciful guesses to yourselves! In what Veda, in what *Sukta* do you find that the Aryans came into India from a foreign country? ...And what your European Pandits say about the Aryan's swooping down from some foreign land, snatching away the lands of the aborigines, and settling in India by exterminating them, are all pure nonsense, foolish talk!'

आर्यों के भारत से विदेशों में जाने की दृष्टि से जब प्राचीन भारतीय-वाङ्मय का अध्ययन किया जाता है तो ज्ञात होता है कि अत्यन्त प्राचीन काल से ही भारत के लोग एक-दो बार नहीं वरन बार-बार विदेश जाते रहे हैं। इनका प्रव्रजन कभी राजनीतिक कारणों से, यथा- ऋग्वेद और जेन्द अवेस्ता के अनुसार देवयुग में इन्द्र की सत्ता के भय से त्वष्टा का और विष्णुपुराण के अनुसार महाराजा सगर से युद्ध में हार जाने पर ब्रात्य बना दिए जाने से शक, काम्बोज, पारद आदि क्षत्रिय-राजाओं का और कभी सामाजिक कारणों, यथा- ऐतरेयब्राह्मण के अनुसार विश्वामित्र के 50 पुत्रों के निष्कासन आदि से हुआ है। महाभारत-युद्ध में मृत्यु के भय या हार जाने पर अपमानित महसूस करने पर आत्मग्लानी के और भगवान् श्रीकृष्ण के स्वर्गारोहण से पूर्व हुए यादवी संघर्ष के फलस्वरूप भी बहुत-से लोग भागकर देश के बाहर गए थे। यही नहीं, कभी-कभी स्वेच्छा से व्यापार, भ्रमण, धर्मप्रसार और उपनिवेश-निर्माण के हेतु भी भारतीयों ने प्रव्रजन किया है।

## आर्यों ने भारत के मूल निवासियों को युद्धों में हराकर

### दास या दस्यु बनाया

अपने राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु अंग्रेजों द्वारा फैलाई गई विभिन्न भ्रान्तियों में से ही यह भी एक थी। सर्वप्रथम यह विचार 'कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया' में प्रतिपादित किया गया था कि आर्य लोगों ने विदेशों से आकर भारत पर आक्रमण करके यहाँ के मूल निवासी द्रविड़, कोल, भील, सन्थाल आदि को अपनी शक्ति के

1. मनुस्मृति, 2.23

1. The Complete Works of Swami Vivekananda, Vol. V, 1919, pp.436-437

बल पर पराजित करके जीता और अपमानित करके उन्हें दास या दस्यु बनाया।

आर्यों द्वारा बाहर से आकर स्थानीय जातियों को जीतने के प्रश्न पर भारत के प्रसिद्ध विधिवेत्ता डॉ॰ अम्बेडकर ने लिखा है कि ऋग्वेद में 'दास' और 'दस्यु' को आर्यों का शत्रु अवश्य बताया गया है और उसमें ऐसे मंत्र भी आए हैं, जिसमें वैदिक ऋषियों ने अपने देवताओं से उनको मारने और नष्ट करने की प्रार्थनाएँ भी की हैं किन्तु इससे भारत में आर्यों के आक्रमण के पक्ष में निर्णय नहीं किया जा सकता। उन्होंने ऋग्वेद के आधार पर इस संबंध में तीन तर्क प्रस्तुत किए हैं—

1. ऋग्वेद में आर्यों और दासों या दस्युओं के बीच युद्धों के सन्दर्भ नहीं मिलते। ऋग्वेद में 33 स्थानों पर 'युद्ध' शब्द आया है, जिनमें से केवल आठ स्थानों में उसका प्रयोग 'दस्यु' के विरोधी अर्थ में हुआ है और वह भी दोनों के मध्य किसी बड़े युद्ध को नहीं, बल्कि छिटपुट लड़ाइयों को ही दर्शाता है, जिनके आधार पर आर्यों की विजय-कथा को प्रमाणित नहीं किया जा सकता।
2. दासों और आर्यों के बीच जो भी छिटपुट संघर्ष था, वह दोनों की आपसी सहमति से शान्तिपूर्ण ढंग से तय हो गया था। ऋग्वेद (6.33.3, 7.83.1, 8.51.9, 10.102.3) से यह भी स्पष्ट होता है कि दासों और आर्यों का एक ही शत्रु था और दोनों ने मिलकर अपने शत्रु के विरुद्ध युद्ध किया था।
3. संघर्ष या विरोध का कारण जातीय नहीं था, अपितु उपासना-भेद था। स्वयं ऋग्वेद से ही यह प्रमाणित होता है कि यह संघर्ष उपासना-भेद के कारणों से उत्पन्न हुआ था, जातिभेद के कारण नहीं क्योंकि, ऋग्वेद के मंत्र (1.51.8, 1.32.4, 4.41.2, 6.14.3) बताते हैं कि आर्यों और दासों या दस्युओं के उपासना से संबंधित आचार-विचार भिन्न-भिन्न थे।

डॉ॰ अम्बेडकर ने अपने मत की पुष्टि में ऋग्वेद के एक मंत्र (10.22.8) को विशेष रूप से उद्धृत किया है, जिसमें कहा गया है— 'हम दस्युओं के बीच में रहते हैं। वे लोग न तो यज्ञ करते हैं और न किसी में विश्वास ही करते हैं। इनके रीति-रिवाज भी पृथक् हैं। वे मनुष्य कहलाने के योग्य नहीं हैं। हे, शत्रुहंता! तू उनका नाश कर।'।

डॉ॰ अम्बेडकर का कहना है कि ऐसे मंत्रों के सामने दासों या दस्युओं को आर्यों द्वारा विजित करने के सिद्धान्त को किसी प्रकार से नहीं माना जा

सकता। अपने कथन की पुष्टि में उन्होंने ने श्री पी टी श्रीनिवास आयरंगर (1863-1931) के एक लेख का उद्धरण दिया है—

‘मंत्रों के परीक्षण से ज्ञात होता है कि उनमें जो ‘आर्य’, ‘दास’ या ‘दस्यु’ शब्द आए हैं, वे जातिसूचक नहीं हैं, अपितु उनसे आस्था या उपासना का बोध होता है। वे शब्द मुख्य रूप से ऋग्वेद-संहिता में आए हैं। इनसे कहीं भी यह प्रमाणित नहीं होता कि जो जातियाँ अपने को आर्य कहती थीं, वे हमलावर थीं और उन्होंने इस देश को विजित करके यहाँ के लोगों का नाश किया था...।’

दास या दस्यु कौन थे, इस सन्दर्भ में मनुस्मृति के प्रख्यात टीकाकार कुल्लूक भट्ट (1150-1300) का यह कथन, जो उसने मनुस्मृति की टीका में लिखा है, उल्लेखनीय है— ‘ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जाति में, जो क्रियाहीनता के कारण जातिच्युत हुए हैं, वे चाहे म्लेच्छभाषी हों या आर्यभाषी, सभी दस्यु कहलाते हैं।

ऋग्वेद का यह मंत्र—

‘अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यत्रतो अमानुषः ।  
त्वं तस्यामित्रहन् वधर्दासस्य दम्भय ॥’<sup>1</sup>

कर्महीन, मननहीन, विरुद्धव्रती और मनुष्यता से हीन व्यक्ति को दस्यु बताकर उसके वध की आज्ञा देता है और ‘दास’ तथा ‘दस्यु’ को अभिन्नार्थी बताता है। यदि दस्यु का अर्थ आज की भाँति दास या सेवक होता तो ऐसी आज्ञा कभी नहीं दी जाती।

ऐतरेयब्राह्मण में एक स्थान पर कहा गया है— ‘तुम्हारे वंशधर भ्रष्ट होंगे। यही (भ्रष्ट या संस्कारविहीन) आन्ध्र, पुण्ड्र, शवर आदि उत्तर दिक् वासी अनेक जातियाँ हैं’। दूसरे शब्दों में सभ्यता और संस्कारविहीन लोगों की वंश-परम्पराएँ चलीं और स्वतः ही अलग-अलग जातियाँ बन गईं, इन्हें किसी ने बनाया नहीं। आज की जरायमपेशा जातियों में ब्राह्मण भी हैं और राजपूत भी।<sup>2</sup>

उक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि दस्यु या दास कैसे बने ?

1. ऋग्वेद, 10.22.8

2. हिंदुत्व, प्रो॰ रामदास गौड़, 1938, पृ॰ 772



अतः आर्यों द्वारा भारत के मूल निवासियों को हराकर उन्हें दास या दस्यु बनाने की बात एक भ्रम के अतिरिक्त कुछ नहीं। इसके पीछे अंग्रेजों की गहरी साजिश थी, वे लोग सामाजिक विद्वेष फैलाकर देश की एकता को तोड़ना चाहते थे।

### भारत के मूल निवासी द्रविड़

अंग्रेजों के आने से पूर्व भारत में यह कोई जानता ही नहीं था कि द्रविड़ और आर्य दो अलग-अलग जातियाँ हैं। यह बात तो देश में अंग्रेजों के आने के बाद ही सामने लाई गयी। अंग्रेजों को यह कहना भी इसलिए पड़ा क्योंकि वे आर्यों को भारत में हमलावर बनाकर लाए थे। हमलावर के लिए कोई हमला सहनेवाला भी तो चाहिए था। बस, यहीं से मूल निवासी की कथा चलाई गई और इसे सही सिद्ध करने के उद्देश्य से 'द्रविड़' की कल्पना की गयी। अन्यथा भारत के किसी भी साहित्यिक, धार्मिक या अन्य प्रकार के ग्रन्थ में इस बात का कोई उल्लेख नहीं मिलता कि द्रविड़ और आर्य कहीं बाहर से आए थे। यदि थोड़ी देर के लिए इस बात को मान भी लिया जाए कि आर्यों ने विदेशों से आकर यहाँ के मूल निवासियों को युद्धों में हराया था तो पहले यह बताना होगा कि उन मूल निवासियों के समय इस देश का नाम क्या था ? क्योंकि जो भी व्यक्ति जहाँ रहते हैं, वे उस स्थान का नाम अवश्य रखते हैं। जबकि किसी भी प्राचीन भारतीय-ग्रन्थ या तथाकथित मूल निवासियों की किसी परम्परा या मान्यता में ऐसे किसी भी नाम का उल्लेख नहीं मिलता।

रामधारी सिंह 'दिनकर' (1908-1974) का कहना है कि जाति या रस (Race) का सिद्धान्त भारत में अंग्रेजों के आने के बाद ही प्रचलित हुआ, इससे पूर्व इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता कि द्रविड़ और आर्य जाति के लोग एक दूसरे को विजातीय समझते थे। वस्तुतः द्रविड़ आर्यों के ही वंशज हैं। मैथिल, गौड़, कान्यकुब्ज आदि की तरह द्रविड़-शब्द भी यहाँ भौगोलिक अर्थ देनेवाला है।<sup>1</sup> उल्लेखनीय बात तो यह है कि आर्यों के बाहर से आनेवाली बात को प्रचारित करनेवालों में जॉन म्यूर (1810-1882), जो सबके अगुआ थे, को भी अन्त में निराश होकर यह स्वीकार करना पड़ा है कि 'किसी भी प्राचीन पुस्तक या प्राचीन गाथा से यह बात सिद्ध नहीं की जा सकती कि आर्य किसी अन्य देश से यहाँ आए।'<sup>2</sup>

1. 'संस्कृति के चार अध्याय', पृ 25

2. Muir Sanskrit Textbook, Part 2, p.523

इस सन्दर्भ में टॉमस बरो (1909-1986) नामक एक प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता द्वारा प्रकाशित और ए. एल. बाशम (1914-1986) द्वारा संपादित 'कल्चरल हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया'<sup>1</sup> में छपे 'दि अर्ली आर्यन्स' में उद्धृत यह कथन उल्लेखनीय है— 'आर्यों के भारत पर आक्रमण का न कहीं इतिहास में उल्लेख मिलता है और न इसे पुरातात्विक आधारों पर सिद्ध किया जा सकता है।'<sup>2</sup>

इस सन्दर्भ में रोमिला थापर का यह कथन भी उल्लेखनीय है कि 'आर्यों के सन्दर्भ में बनी हमारी धारणाएँ कुछ भी क्यों न हों, पुरातात्विक साक्ष्यों से बड़े पैमाने पर किसी आक्रमण या आब्रजन का कोई संकेत नहीं मिलता... गंगा की उपत्यका के पुरातात्विक साक्ष्यों से यह प्रकट नहीं होता कि यहाँ के पुराने निवासियों को कभी भागना या पराजित होना पड़ा था।'<sup>3</sup>

दूसरी ओर शतपथब्राह्मण (1.41) से यह ध्वनित होता है कि जब आर्य लोग शिवालिक पर्वतमाला से उतरकर सरस्वती-दृषद्वती सिञ्चित प्रदेश में आए, तो उन्होंने लकड़ियाँ काट-काटकर और जंगल जला-जलाकर मैदान निकाले। यह एक ऐसा सूत्र है जो भारत में आर्यों के मैदानी भाग में आने पर क्षेत्र-विस्तार से पहले यहाँ किसी भी दूसरी जाति का अस्तित्व नहीं बतलाता; क्योंकि यदि यहाँ कोई दूसरी जाति इससे पूर्व होती, तो आर्यों को ऐसा करने की ज़रूरत ही न पड़ती, अर्थात् पाश्चात्य विद्वानों का यह मानना कि आर्य विदेशों से आए, एक भ्रान्ति से अधिक कुछ नहीं।

अंग्रेजों ने इस बात को भी बड़े जोर से उछाला है कि 'आक्रान्ता आर्यों' ने द्रविड़ों के पूर्वजों पर नृशंस अत्याचार किए थे। बाशम, कृ. ए. नीलकण्ठ शास्त्री (1892-1975) आदि विद्वान् यद्यपि अनेक बार यह लिख चुके हैं कि 'आर्य' और 'द्रविड़' शब्द नस्लवाद नहीं है फिर भी संस्कृत के अपने अधिकचरे ज्ञान के आधार पर बने लेखक, साम्राज्यवादी प्रचारक और राजनीतिज्ञ स्वार्थ-सिद्धि को सर्वोपरि माननेवाले नेता इस विवाद को आँख मीचकर बढ़ावा देते रहे हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने द्रविड़ों की सभ्यता को आर्यों की सभ्यता से अलग बताने के लिए 'हड़प्पाकालीन सभ्यता' को एक बड़े सशक्त हथियार के रूप

1. Published by Oxford University Press, 1998, Total No. of pages : 585

2. आर्यों का आदि देश और उनकी सभ्यता, पृ 126

3. वही, पृ 113

में लिया था। पहले तो उन्होंने हड़प्पाकालीन सभ्यता को द्रविड़-सभ्यता बताया किन्तु जब विभिन्न विद्वानों की नयी खोजों से उनका यह कथन असत्य हो गया तो वे कहने लगे कि हड़प्पा के लोग वर्तमान 'द्रविड़' नहीं, वे तो भूमध्यसागरीय 'द्रविड़' थे, अर्थात् वे कुछ भी थे किन्तु आर्य नहीं थे। इस प्रकार की भ्रान्तियाँ जान-बूझकर फैलाई गई थीं। जबकि सत्य तो यह है कि हड़प्पा की सभ्यता भी आर्य-सभ्यता का ही अंश थी और आर्य-सभ्यता वस्तुतः इससे भी हजारों-हजार वर्ष पुरानी है।

इस सन्दर्भ में प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् डॉ. फतेह सिंह का 'भारतीय-इतिहास के अवरोधक' (आदिकाल से सिंधु-सभ्यता के काल तक) लेख उल्लेखनीय है, इसमें उन्होंने लिखा है—

'...उन्हीं दिनों मेरे गाँव के पास उत्तरप्रदेश की खनौत नदी की तलहटी में चाँदी के सिक्कों से भरा हुआ ताम्रपात्र मिला था। उसके जो सिक्के पुलिस ने सरकारी खजाने में भिजवाए, उनमें से साफ़ किए गए 20 सिक्के संबंधित इतिहास-प्रेमी अधिकारी ने मेरे पास भी भेज दिए। उन सिक्कों पर मुझे सिंधु-लिपि देखकर आश्चर्य हुआ और इससे भी अधिक विस्मय की बात यह थी कि उनमें से कई सिक्कों पर राम का नाम था, सूर्य और गाय का चित्र था या खड़ाऊँ का चिह्न था।'<sup>1</sup>

इससे यही सिद्ध होता है कि आर्य और द्रविड़ अलग नहीं थे। जब अलग थे ही नहीं तो यह कहना कि भारत के मूल निवासी आर्य नहीं द्रविड़ थे, ठीक नहीं है। अब समय आ गया है कि आर्यों के आक्रमण और आर्य-द्रविड़ भिन्नतावाली इस मान्यता को विभिन्न नयी पुरातात्विक खोजों और शोधपरक अध्ययनों के प्रकाश में मात्र राजनीतिक 'मिथ' मानकर त्याग दिया जाना चाहिए।

## दासों या दस्युओं को आर्यों ने

### अनार्य बनाकर शूद्र की कोटि में डाला

अंग्रेज़ी-सत्ता ने अपने राजनीतिक स्वार्थ की पूर्ति हेतु भारतीय-समाज को जाति, मत, क्षेत्र, भाषा आदि के आधार पर बाँटकर उसकी एकात्मता छिन्न-भिन्न करने

1. भारतीय इतिहास संकलन योजना समिति, दिल्ली प्रान्त की 1990 में प्रकाशित स्मारिका, पृष्ठ 35

के लिए ही यह भ्रान्ति भी फैलाई थी कि आर्यों ने बाहर से आकर यहाँ पर पहले से रह रही द्रविड़, भील, कोल आदि जातियों को युद्धों में हराकर दास या दस्यु बनाकर बाद में अपनी संस्कृति में दीक्षितकर उन्हें शूद्र की कोटि में डाल दिया। इस सन्दर्भ में कई प्रश्न उठते हैं कि क्या दास या दस्यु आर्यतर जातियाँ थीं ? यदि नहीं, तो इन्हें अनार्य घोषित करने के पीछे अभिप्राय क्या था और क्या शूद्र कोटि भारतीय-समाज में उस समय घृणित या अस्पृश्य अथवा छोटी मानी जाती थी ? इन प्रश्नों पर पृथक्-पृथक् विचार करना होगा।

**क्या दास या दस्यु आर्यतर जातियाँ थीं ?—** दास या दस्यु आर्यतर जातियाँ थीं या नहीं, यह जानने के लिए पहले यह देखना होगा कि आर्य-वाङ्मय में दास या दस्यु शब्द का प्रयोग किस-किस अर्थ में अथवा किस अभिप्राय से किया गया है। आर्यों के सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद के मंत्र-संख्या 1.5.19 तथा 9.41.2 में दास या दस्यु शब्द का प्रयोग अयाज्ञिक और अत्रतों के लिए और मंत्र-संख्या 1.51.8 में इसका प्रयोग शत्रु, चोर, डाकू अथवा धार्मिक क्रियाओं का विनाश करनेवालों के लिए किया गया है। मनुस्मृति (10.4) में कम्बोज आदि जातियों के पतित हो जानेवाले लोगों को दास या दस्यु कहा गया है। महाभारत के भीष्मपर्व में निष्क्रिय व्यक्तियों को दास या दस्यु शब्द से अभिहित किया गया है। स्पष्ट है कि इन शब्दों का प्रयोग सभी जगह कुछ विशिष्ट प्रकार के लोगों के लिए ही किया गया है, किसी जाति विशेष के रूप में नहीं।

**इनको अनार्य बनाने के पीछे क्या अभिप्राय रहा ?—** आर्य-वाङ्मय में स्थान-स्थान पर 'अनार्य' शब्द का प्रयोग किया गया है। वाल्मीकिरामायण (2.18.31) में कैकेई के लिए 'अनार्या' शब्द का प्रयोग किया गया है। भगवद्गीता (2.2) में 'अनार्यजुष्टमस्वर्गमकीर्तिकरमर्जुन' के द्वारा अकीर्तिकर कार्यों के लिए 'अनार्यजुष्ट'-जैसे शब्दों का प्रयोग किया गया है। ऋग्वेद (7.6.3) के अनुसार अत्रतियों, अयाज्ञिकों, दम्भियों, अपूज्यों और दूषित भाषा का प्रयोग करनेवालों के लिए 'मृगवाच' शब्द का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार किसी भी आर्य-ग्रन्थ में 'अनार्य' शब्द जातिवाचक के रूप में प्रयुक्त नहीं हुआ है। स्पष्ट है कि ऋग्वेदादि में स्थान-स्थान पर आए अनार्य, दस्यु, कृष्णगर्भा, मृगवाच आदि शब्द आर्यों से भिन्न जातियों के लिए न होकर आर्य-कर्मों से च्युत व्यक्तियों के लिए प्रयुक्त हुए हैं अर्थात् 'अनार्य' शब्द जातिवाचक रूप में कहीं भी प्रयोग में नहीं लाया गया।

**क्या शूद्र—कोटि भारतीय—समाज में उस समय घृणित या अस्पृश्य अथवा छोटी मानी जाती थी ?—** प्राचीन काल में भारतीय-समाज के चारों वर्ण, यथा— ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र परस्पर सहयोगी थे। एक वर्ण दूसरे में जा सकता था। उस समय वर्ण नहीं समाज में उसकी उपयोगिता कर्म की प्रमुखता से थी। भारत के किसी भी प्राचीन ग्रन्थ में कहीं भी ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता, जहाँ कहा गया हो कि शूद्र घृणित या अस्पृश्य या छोटा होता है या उच्च वर्ग बड़े होते हैं। समाज में सभी का समान महत्त्व था।

चारों वर्णों को समाजरूपी शरीर का चार प्रमुख अंग माना गया था, यथा— ब्राह्मण-सिर, क्षत्रिय-बाहु, वैश्य-उदर और शूद्र-चरण। चारों वर्णों की समान रूप से अपनी-अपनी उपयोगिता होते हुए भी शूद्र की उपयोगिता समाज के लिए सर्वाधिक रही है। समाजरूपी शरीर को चलाने, उसे गतिशील बनाने और सभी कार्य-व्यवहार संपन्न कराने का सम्पूर्ण भार वहन करने का कार्य पैरों का होता है। समाज ने इस वर्ण (चरण) को सदा सम्मान दिया है। भारतीय-समाज में शूद्रों के साथ छुआछूत या भेदभाव का व्यवहार, जैसा कि आजकल प्रचारित किया जाता है, प्राचीन काल में नहीं था। वैदिक साहित्य से तो यह भी प्रमाणित होता है कि ‘शूद्र’ मंत्रद्रष्टा ऋषि भी बन सकते थे। ‘कवष ऐलुषु’ दासीपुत्र अर्थात् शूद्र थे किन्तु उनकी विद्वत्ता को परखकर ऋषियों ने उन्हें अपने में समा लिया था। वे ऋग्वेद की कई ऋचाओं के द्रष्टा थे। सत्यकाम जाबालि शूद्र होते हुए भी यजुर्वेद की एक शाखा के प्रवर्तक थे।<sup>1</sup> इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि ‘शूद्रों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है’— ऐसा कहनेवाले झूठे हैं। कारण शूद्रों द्वारा वेद-पाठ की तो बात ही क्या वे तो वेद के मंत्रद्रष्टा भी थे। सामाजिक दृष्टि से यह भेदभाव तो मुख्यतः मुसलमानों और अंग्रेजों द्वारा अपने-अपने राज्यकालों में इस देश के समाज को तोड़ने के लिए पैदा किया गया था।

वस्तुतः वर्ण-व्यवस्था समाज में अनुशासन लाने के लिए, उसकी उन्नति के लिए और उसके आर्थिक विकास के लिए बनाई गई थी।

डॉ० अम्बेडकर ने बड़े प्रबल प्रमाणों से सिद्ध किया है कि शूद्र वर्ण समाज से भिन्न नहीं है अपितु क्षत्रियों का ही एक भेद है।<sup>2</sup> संस्कृत-साहित्य में

1. छांदोग्योपनिषद्, 4.4

2. ‘शूद्र पूर्वी कोण होते’, पृ 66 और 74-75

सदाचरण या असदाचरण के आधार पर ही ‘आर्य’, ‘अनार्य’, ‘दस्यु’, ‘दास’ आदि संज्ञाओं का प्रयोग किया गया है। वास्तव में ‘आर्य’ शब्द को सुसंस्कारों से सम्पन्न धर्माचरण करनेवाले व्यक्ति के लिए प्रयुक्त किया गया है।

इस संबंध में ऋग्वेद के मंत्र 6.22.10 का अनुवाद दर्शनीय है— ‘हे वज्री! अपनी शक्ति द्वारा तूने दासों को आर्य और दुर्जनों को सुजन बना डाला।’ यहाँ दास को आर्य-श्रेष्ठ बनाए जाने का उल्लेख है। इसी प्रकार इन्द्र का यह कथन कि ‘मैंने दस्युओं का आर्यत्व नष्ट कर दिया’<sup>1</sup> भी दस्युओं के आर्यत्व अर्थात् श्रेष्ठभाव को नष्ट कर देने की बात कहता है। अर्थात् दोनों स्थानों पर ही यह शब्द गुणवाचक है जातिवाचक नहीं।

अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यह भी अंग्रेजों द्वारा भारतीय-समाज को तोड़ने के लिए फैलाई गई एक भ्रान्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं।

### यूरोपवासी आर्यवंशी

अंग्रेजी सत्ता के उद्देश्य की पूर्ति में लगे न केवल अंग्रेज-विद्वान् ही वरन उनसे प्रभावित और उनकी योजना में सहयोगी बने अन्य पाश्चात्य विद्वान्, यथा- मैक्समूलर, वेबर, विंटेर्निट्ज आदि भी शुरू-शुरू में भारत के इतिहास और साहित्य तथा सभ्यता और संस्कृति की प्राचीनता, महानता और श्रेष्ठता को नकारते ही रहे तथा भारत के प्रति बड़ी अनादर और तिरस्कार की भावना भी दिखाते रहे किन्तु जब उन्होंने देखा कि यूरोप के ही काउन्ट जार्नस्टर्जना, जैकालियट, हम्बोल्ट आदि विद्वानों ने भारतीय-साहित्य, सभ्यता और संस्कृति की प्रभावी रूप में सराहना करनी शुरू कर दी है तो इन लेखकों ने इस डर से कि कहीं उनको दुराग्रही न मान लिया जाए, भारत की सराहना करनी शुरू कर दी। इन्होंने यह भी सोचा कि यदि हम यूँ ही भारतीय ज्ञान-भण्डार का निरादर करते रहे तो विश्व-समाज में हमें अज्ञानी माना जाने लगेगा अतः इन्होंने भी भारत के गौरव, ज्ञान और गरिमा का बखान करना शुरू कर दिया। कारण यह रहा हो या अन्य कुछ, विचार-परिवर्तन की दृष्टि से पाश्चात्य विद्वानों के लेखन में क्रमशः आनेवाला अन्तर एकदम स्पष्ट रूप से दिखाई देता है— पहली स्थिति में इन विद्वानों ने भारत की निन्दा की, दूसरी स्थिति में सराहना की और बाद में तीसरी

1. ऋग्वेद, 10.49.3

स्थिति में गुण-ग्राहकता दिखायी। इनके विचार किस प्रकार बदले हैं, यह बात निम्नलिखित उद्धरणों से अधिक स्पष्ट हो जाती है—

### पहली स्थिति : तिरस्कार और निन्दा

(1) 'India has been conquered once but India must be conquered again and the second conquest should be attained by education.'<sup>1</sup> (भारत को एक बार जीता जा चुका है, अवश्य ही इसे पुनः जीतना होगा, किन्तु इस बार शिक्षा के माध्यम से)।<sup>1</sup>

(2) "Large number of Vedic hymns are childish in the extreme, tedious, low, common place..."<sup>1</sup> (वैदिक सूक्तों की एक बड़ी संख्या बालकों जैसी अत्यन्त मूर्खतापूर्ण है। साथ ही जटिल, निम्न कोटि की और साधारण है)

### दूसरी स्थिति : सराहना

‘जिसने बर्कले का दर्शन, उपनिषदों तथा ब्रह्मसूत्रों का समान रूप से अध्ययन किया है, वह विश्वास के साथ कहेगा कि उपनिषदों तथा ब्रह्मसूत्रों के सामने बर्कले का दर्शन नितान्त अधूरा और बौना है।’<sup>2</sup>

### तीसरी स्थिति : गुणग्राहकता

1. ‘यूरोपीय राष्ट्रों के विचार, वाङ्मय और संस्कृति के स्रोत तीन ही रहे हैं— ग्रीस, रोम तथा इज्राइल। अतः उनका आध्यात्मिक जीवन अधूरा है, संकीर्ण है। यदि उसे परिपूर्ण, भव्य, दिव्य और मानवीय बनाना है तो मेरे विचार में भाग्यशाली भरतखण्ड का ही आधार लेना पड़ेगा।’<sup>3</sup>
2. ‘आचार्य (शंकर) भाष्य का जब तक किसी यूरोपीय-भाषा में सुचारु अनुवाद नहीं हो जाता तब तक दर्शन का इतिहास पूरा हो ही नहीं सकता। भाष्य की

1. Letter to the Duke of Argyll, published in *The Life and Letters of Right Honorable Friedrich Max Müller* (1902) edited by Georgina Müller

1. 'Lecture on the Vedas'— first presented at the Philosophical Institution, Leeds (March 1865). *Chips from a German workshop*, second edition, 1866, p.27.

2. *विश्वव्यापिनी संस्कृति*, पृ 46

3. *वही*, पृ 51

महिमा गाते हुए साक्षात् सरस्वती भी थक जायेगी।’<sup>1</sup>

किन्तु इस तीसरी स्थिति के बावजूद भी यूरोपीय लेखक यह स्वीकार करने में असमर्थ रहे कि यूरोपवाले आर्यों (भारतीयों) से निचले स्तर पर रहे थे। अतः उन्होंने संस्कृत और लैटिन आदि भाषाओं के शब्दों की समानता को लेकर ‘एक ही भाषा के बोलनेवाले एक ही स्थान पर रहे होंगे’— के सिद्धान्त की स्थापना की और इस प्रकार आर्यों से यूरोपवालों का रक्त-संबंध स्थापित कर दिया। मैक्समूलर आदि अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने पहले तो आर्यों को एक जाति-विशेष बनाया और धीरे-धीरे एक-के-बाद-एक कई ऐसे यूरोपीय-विद्वान् आए जिन्होंने आर्यों के गुणों से आकृष्ट होकर यूरोपीय लोगों को इस जाति-विशेष से ही जोड़ दिया। इस सन्दर्भ में मैक्समूलर का कहना है कि—

‘आर्यावर्त का प्राचीन देश ही गोरी जाति का उत्पत्ति-स्थान है। भारतभूमि ही मानव जाति की माता और विश्व की समस्त परम्पराओं का उद्गम-स्थल है। उत्तर भारत से ही आर्यों का अभियान फ़ारस की ओर गया था।’<sup>2</sup>

मैक्समूलर ने यह भी कहा है कि—

‘यह निश्चित हो चुका है कि हम सब पूर्व की ओर से आए हैं। इतना ही नहीं हमारे जीवन की जितनी भी प्रमुख और महत्वपूर्ण बातें हैं, सब-की-सब हमें पूर्व से मिली हैं। ऐसी स्थिति में जब हम पूर्व की ओर जाएँ, तब हमें यह सोचना चाहिए कि पुरानी स्मृतियों को संजोए हम अपने पुराने घर की ओर जा रहे हैं।’<sup>3</sup>

कर्जन तो स्पष्ट रूप से कहता है कि ‘गोरी जातिवालों का उद्गम-स्थान भारत ही है।’<sup>4</sup>

एडवर्ड पोकाक तो यहाँ तक कह बैठे कि ‘प्राचीन रोमन देवता भारतीय वीर पुरुषों के ही दैविक रूप हैं। ‘रोम’ वस्तुतः लैटिन का है ही नहीं। वह तो ‘राम’ शब्द से निकला है। संस्कृत का ‘आ’ लैटिन में ‘ओ’ हो जाता है।’<sup>5</sup>

1. *विश्वव्यापिनी संस्कृति*, पृ 46-47

2. *India, What can it Teach Us ?* (1883)

3. *Ibid*, p.29

4. *Journal of Royal Asiatic Society*, Vol. XVI, pp.172-200

5. *India in Greece*, p.142

भारतीय-मनीषी तो चाहे प्राचीन काल के रहे हों या अर्वाचीन काल के, यही मानते हैं कि आर्य कोई जाति-विशेष नहीं है। ऋग्वेद में 'आर्य' शब्द के प्रयोग और उसके अर्थ के संबंध में भारत के प्रसिद्ध विधिवेत्ता डॉ. अम्बेडकर ने कहा है—

‘ऋग्वेद में ‘अर्य’ और ‘आर्य’ — दोनों ही शब्द आए हैं। ऋग्वेद में ‘अर्य’ शब्द 88 बार आया है, किन्तु जहाँ भी आया है, वहाँ इसका अर्थ शत्रु, सभ्य आदमी, स्वामी, वैश्य, निवासी, भारत देश आदि निकलता है। जहाँ तक ‘आर्य’ शब्द का संबंध है, वह 31 बार आया है किन्तु कहीं भी इसका प्रयोग जातिविशेष के लिए नहीं हुआ है।’<sup>1</sup>

उक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि आर्य कोई जातिविशेष नहीं है। वेद सहित समस्त प्राचीन भारतीय-साहित्य में जहाँ भी ‘आर्य’ शब्द का प्रयोग किया गया है, वहाँ ‘श्रेष्ठ व्यक्ति’ के लिए ही किया गया है। इस श्रेष्ठत्व से भारतवासी ही आवेष्टित क्यों हों यूरोपवाले क्यों नहीं, अतः उन्होंने इस श्रेष्ठत्व से यूरोपवालों को महिमामण्डित करने का सुअवसर हाथ से खोना नहीं चाहा और उन्हें भी आर्यवंशी बना दिया।

इस सन्दर्भ में जॉर्ज ग्रियर्सन (1851-1941) का यह कथन पठनीय है—

‘भारतीय मानव स्कन्ध में उत्पन्न भारत-तूरानी अपने को वास्तविक अर्थ में साधिकार ‘आर्य’ कह सकते हैं किन्तु हम अंग्रेजों को अपने को ‘आर्य’ कहने का अधिकार नहीं हैं।’<sup>2</sup>

### भारत की सभ्यता विश्व में सर्वाधिक प्राचीन नहीं

भारत के पुराण तथा अन्य पुरातन साहित्य में स्थान-स्थान पर ऐसे उल्लेख मिलते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि भारत में मानव-सभ्यता का जन्म सृष्टि-निर्माण के लगभग साथ-साथ ही हो चुका था और धीरे-धीरे उसका विस्तार विश्व के अन्य क्षेत्रों में भी होता रहा अर्थात् भारतीय-सभ्यता विश्व में सर्वाधिक प्राचीन तो है ही वह विश्वव्यापिनी भी रही है किन्तु आज का इतिहासकार इस तथ्य से सहमत नहीं है। वह तो इसे 2500 से 3000 वर्ष ई. पू. के बीच की मानता रहा है। साथ

ही वह भारतीयों को घरघुस्सु और ज्ञान-विज्ञान से विहीन भी मानता रहा है किन्तु भारत में और उसकी वर्तमान सीमाओं के बाहर विभिन्न स्थानों पर हो रहे उत्खननों में मिली सामग्री के पुरातात्विक विज्ञान के आधार पर निकाले गए निष्कर्ष उसे प्राचीन-से-प्राचीनतर बनाते जा रहे हैं। हड़प्पा और मोहनजोदड़ों की खोजों से वह 4000 ई. पू. तक पहुँच ही चुकी थी। मोतिहारी (बिहार), लोथल और रंगपुर (गुजरात), बहादुराबाद और आलमगीरपुर (उत्तरप्रदेश) आदि में हुए उत्खननों में मिली सामग्री उसे 5000 ई. पू. से पुरानी घोषित कर रही है। तिथ्यांकन की कार्बन और दूसरी प्रणालियाँ इस काल सीमा को आगे से आगे ले जा रही हैं। इस सन्दर्भ में बलोचिस्तान (पाकिस्तान) के मेहरगढ़ तथा भारत के धौलावीरा आदि की खुदाइयाँ भी उल्लेखनीय हैं, जो भारतीय-सभ्यता को 10000 ई. पू. की सिद्ध कर रही है। सन् 2000 में गुजरात के पास खम्भात की खाड़ी में पानी के नीचे मिले नगर के अवशेष इसे 10000 ई. पू. से भी प्राचीन बताए जा रहे हैं।

दूसरी ओर आज अमेरिका और अफ्रीका ही नहीं, अपितु जावा में मिली मानव-खोपड़ियाँ और अस्थि-पंजर, लाखों वर्ष पूर्व के सिद्ध हो रहे हैं। प्रो. डब्ल्यू. ड्रेपर (1811-1882) के कथनानुसार स्कॉटलैण्ड में 1.40 लाख वर्ष पूर्व के प्राचीन हाथियों आदि जानवरों के अवशेषों के साथ मानव-अस्थियाँ भी मिली हैं।<sup>1</sup>

इस सन्दर्भ में प्रख्यात इतिहास-संशोधक पुरुषोत्तम नागेश ओक (1917-2007) ने लिखा है— ‘केन्या के राष्ट्रीय संग्रहालय के डॉ. लुईस लीके (1903-1972) ने 1.70 लाख वर्ष पूर्व विद्यमान मानव का अस्थि-पंजर खोज निकाला है। अमेरिका के येल विद्यालय के प्रो. ई. एल. साइमन्स ने ऐसे मनुष्य के जबड़े की अस्थियों का पता लगाया है जो 1.40 करोड़ वर्ष पुरानी हैं।’<sup>2</sup>

ईसाइयत के अनुसार यह भले ही माना जा रहा हो कि मानव-सृष्टि का निर्माण कुछ हजार वर्ष पूर्व ही हुआ है किन्तु आज की नयी-नयी वैज्ञानिक खोजें इस काल को लाखों-लाख वर्ष पूर्व तक ले जा रही हैं। पाश्चात्य जगत् के एक-दो नहीं, अनेक विद्वानों का मानना है कि सृष्टि का प्रथम मानव भारत में ही पैदा

1. शूद्र पूर्वी कोण होते

2. *The linguistic survey of India*

1. आचार्य रामदेव-कृत *भारतवर्ष का इतिहास*, भाग-3, पृ. 27-28

2. *भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें*, पृ. 279



हुआ है। कारण वहाँ की जलवायु ही मानव की उत्पत्ति के लिए सर्वाधिक अनुकूल रही है। भारतीय पुरातन साहित्य में उल्लिखित इस तथ्य की कि भारतीय-सभ्यता विश्व की सर्वाधिक प्राचीन सभ्यता है, पुष्टि यहाँ पुरातत्त्वशास्त्र द्वारा की जा रही है।

### आदिमानव जंगली और मांसाहारी

मानव जाति का इतिहास लिखते समय आधुनिक इतिहासकारों, विशेषकर पाश्चात्यों के सामने जहाँ डार्विन-जैसे वैज्ञानिकों का मानव जीवन के विकास को दर्शानेवाले 'विकासवाद' का सिद्धान्त था, जिसके अनुसार मानव का पूर्वज वनमानुष था और उसका पूर्वज बन्दर था और इस प्रकार पूर्वजों की गाथा को आगे बढ़ाकर कीड़े-मकौड़े ही नहीं एक लिजलिजी झिल्ली तक पहुँचा दिया जाता है, वहीं उनके सामने इंग्लैण्ड आदि देशों के पूर्वजों के जीवन-यापन का ढंग भी था, जिसमें वे लोग जंगलों में रहते थे, पेड़ों पर सोते थे, पशुओं का शिकार करते थे और उनके मांस आदि का आहार करते थे। ऐसी स्थिति में उनके द्वारा यह मान लिया जाना अत्यन्त स्वाभाविक था कि आदि काल में मानव अत्यन्त ही अविकसित स्थिति में था। उसे न तो ठीक प्रकार से रहना आता था और न ही खाना-पीना। वह खुले आकाश के नीचे नदियों के किनारे अथवा पहाड़ों की गुफाओं में रहता था और आखेट में मारे पशु-पक्षियों के मांस से वह अपने जीवन का निर्वाह करता था। दूसरे शब्दों में इन इतिहासकारों की दृष्टि में आदि मानव जंगली और मांसाहारी था।

वस्तुतः उक्त निष्कर्ष निकालते समय पाश्चात्य इतिहासकारों के समक्ष विभिन्न यूरोपीय देशों के प्रारम्भिक मानवों के जीवन का चित्र था। जबकि मानव-सृष्टि का प्रारम्भ इस क्षेत्र में हुआ ही नहीं था। आज विश्व के बड़े-बड़े विद्वान् इस बात पर सहमत हो चुके हैं कि आदि काल में मानव का सर्वप्रथम प्रादुर्भाव भारत में ही हुआ था। इस सन्दर्भ में फ्रांस के क्रूजर और लुईस जैकोलियट (1837-1890), अमेरिका के डॉ. डान, इंग्लैण्ड के सर वाल्टर रेले (1554-1618) के साथ-साथ इतिहासकार कोलोनल जेम्स टॉड (1782-1835), भू-वैज्ञानिक मेडलीकट, ब्लम्फर्ड आदि के कथन भी उल्लेखनीय हैं।

इस विषय पर प्राचीन वाङ्मय, चाहे वह भारत का हो या विदेशों का, जब अध्ययन किया जाता है तो आदिमानव के मांसाहारी होने की बात की पुष्टि

नहीं हो पाती क्योंकि उसमें प्रारम्भिक मानव के भोजन के संबंध में जो तथ्य दिए गए हैं, उनसे यह बात बहुत ही स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आती है कि उस काल में मानव विशुद्ध शाकाहारी था।

### प्राचीन भारतीय वाङ्मय

भारत के प्राचीन वाङ्मय में वेद, ब्राह्मण-ग्रन्थ, पुराण, चरकसंहितादि का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनमें इस सन्दर्भ में आए ब्योरे इस प्रकार हैं—

**ऋग्वेद—** इस वेद में यज्ञ के सन्दर्भ में जितने भी शब्दों का प्रयोग किया गया है, उनमें से किसी के भी अर्थ का पशुवध या हिंसा से दूर तक का भी संबंध नहीं है। प्रत्युत 'अध्वर'—जैसे शब्दों से अहिंसा की ध्वनि निकलती है। यज्ञों में 'अध्वर्यू' की नियुक्ति अहिंसा के उद्देश्य से ही की जाती है। वह इस बात का ध्यान रखता है कि यज्ञ में कायिक, वाचिक और मानसिक—किसी भी प्रकार की हिंसा न हो। यही नहीं, ऋग्वेद में मांसभक्षी का सर कुचल देने की बात भी कही गई है—

**‘यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः।  
यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ॥’**

**यजुर्वेद—** इस वेद में पशु-हत्या का निषेध करते हुए उनके पालन पर जोर दिया गया है। जब उनकी हत्या ही वर्जित है तो उनको खाने के लिए कैसे स्वीकारा जा सकता है ?

**अथर्ववेद—** इसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि मांसाहारी, शराबी और व्यभिचारी एक समान ही मार डालने योग्य हैं—

**‘यथा मांसं यथा सुरा यथाक्षा अधिदेवने।  
यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः॥’**<sup>2</sup>

इसमें तो और भी स्पष्ट रूप में कहा गया है कि 'गाय का दूध, दही, घी खाने योग्य है, मांस नहीं—

**‘एतद्वा उ स्वादीयो यदधिगवं क्षीरं वा मांसं वा तदेव नाश्नीयात्।’**<sup>3</sup>

1. ऋग्वेद, 10.87.16

2. अथर्ववेद, 6.70.1

3. वही, 9.6.9

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि वेद में पशुओं को मारने और मांस खाने के लिए मना किया गया है अर्थात् वैदिक आर्य लोग न तो मांस खाते थे और न ही पशुओं को मारते थे। दूसरे शब्दों में आदिकालीन मानव मांसाहारी नहीं था।

**चरकसंहिता**— भारत में आयुर्वेद के महान् आचार्य चरक ने 'चरकसंहिता' में लिखा है—

**‘आदिकाले खलु यज्ञेषु पशवः समालभनीयाः बभूवर्नालम्भाय प्रक्रियन्ते स्म’**  
अर्थात्, आदिकाल में यज्ञों में पशुओं का स्पर्शमात्र होता था। वे आलम्भ थे यानि उनका वध नहीं किया जाता था। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि आदिकाल में पशुओं को मारकर खा जाना तो दूर, यज्ञों में भी पशुओं का वध नहीं किया जाता था।

महाभारत के अनुशासनपर्व और मत्स्यमहापुराण में भी इस प्रकार के तथ्यों के उल्लेख आए हैं। वसिष्ठधर्मसूत्र का अध्याय 21 भी इस दृष्टि से पठनीय है। इसके अनुसार उस काल में भी वृथा मांसभक्षण निषिद्ध था।

### प्राचीन विदेशी—वाङ्मय

**यहूदी और यवन**— आर्यों की भाँति ही यहूदी और यवन लोग भी कालमान में चतुर्युगी में विश्वास करते थे। उनके यहाँ प्राचीन ग्रन्थों में लिखा मिलता है कि सुवर्णयुग (सत्ययुग) में मनुष्य निरामिषभोजी था—

'Among the Greeks and Semites, therefore, the idea of a Golden age, and the trait that in that age man was vegetarian in his diet...'<sup>1</sup>

**हेरोडोटस**— प्रसिद्ध यूनानी-इतिहासकार हेरोडोटस (484-425 ई पू) ने अपने ग्रन्थ के भाग-1 के पृ 173 पर लिखा है कि मिस्र के पुरोहितों का यह धार्मिक सिद्धान्त था कि वे यज्ञ के अतिरिक्त किसी जीवित पशु को नहीं मारते थे—

'...The Egyptian priests make it a point of religion

1. चरकसंहिता, चिकित्सास्थान, 19.4

2. Lectures on the Religion of the Semites: First Series the Fundamental Institutions, by William Robertson Smith, Published by Transaction Publishers, 1894, p.303

not to kill any live animal except those which they offer in sacrifices.'

स्पष्ट है कि यज्ञ के अलावा पशु-हत्या वहाँ भी नहीं होती थी। विदेशों में भी बलि की प्रथा सम्भवतः तभी चालू हुई होगी जब भारत में पतन के काल में पशु-हत्या यज्ञ का एक अंग बन गई थी।

**मेगास्थनीज**— यूनानी-राजदूत मेगास्थनीज (350-290 ई पू) के अनुसार आदिकालीन मानव पृथिवी से स्वाभाविक रूप से उत्पन्न आहार से जीवन-यापन पर निर्भर था—

'...The legends further inform us that in primitive times the inhabitants subsisted on such fruits as the earth yielded spontaneously...'

भारतीय और विदेशी-वाङ्मय के आधार पर दिए गए उक्त विवरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि आदिकालीन मानव मांसाहारी नहीं वरन निरामिषभोजी था।

**आदिमानव के मांसाहारी न होने का नैसर्गिक साक्ष्य**— आदिमानव मांसाहारी नहीं था, यह बात प्राचीन भारतीय और पाश्चात्य वाङ्मय के आधार पर तो सिद्ध होती ही है, किन्तु इससे भी प्रबल साक्ष्य तो मानव के शरीर की नैसर्गिक बनावट का है। उसकी रचना मांसाहारी के रूप में हुई ही नहीं है। मांसाहारी प्राणियों के शरीर की रचना के साथ मनुष्य के शरीर की रचना में कोई समता नहीं है। कारण जितने भी मांसाहारी जीव होते हैं, वे सब जीभ से पानी पीते हैं, अंधेरे में देख लेते हैं, मैथुन के समय जुड़ जाते हैं, उनकी आँतें शरीर के परिमाण में बड़ी होती हैं, उनका मेदा बड़ा होता है, शरीर की बनावट भयानक होती है, स्वभाव से डरपोक होते हैं साथ ही उनके दाँत नुकीले और चुभनेवाले होते हैं। यही नहीं, उनके शरीर पर पसीना भी नहीं आता और उनके बच्चों की आँखें जन्म के समय बन्द होती हैं।

मानव के शरीर में ये सब बातें नहीं होतीं। अतः स्पष्ट है कि मानव नैसर्गिक रूप से प्रारम्भ से ही स्वभावतः मांसाहारी नहीं रहा।

### वेदों का रचना—काल 1500 से 1200 ईउपू तक

1. Indica, Fragment I, p.3

भारत की प्राचीन परम्परा के अनुसार वेदों के संकलन का सृष्टि-निर्माण से बड़ा घनिष्ठ संबंध रहा है। कारण, उसका मानना है कि सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी ने सृष्टि का निर्माण करके उसके संचालन के लिए जो विधान दिया है, वह वेद ही है। भारतीय-कालगणना के अनुसार वर्तमान सृष्टि को प्रारम्भ हुए 1.97 अरब वर्ष से अधिक हो गए हैं, जबकि बाइबल के आधार पर पाश्चात्य विद्वानों का मानना है कि वर्तमान सृष्टि को बने 6,000 वर्ष से अधिक नहीं हुए हैं अर्थात् इससे पूर्व कहीं भी कुछ भी नहीं था। इस सन्दर्भ में पाश्चात्य विद्वान् एच्यू जी वेल्स (1866-1946) का निम्नलिखित कथन उल्लेखनीय है-

‘केवल दो सौ वर्ष पूर्व मनुष्योत्पत्ति की आयु 6,000 वर्ष तक मानी जाती थी, परन्तु अब पर्दा हटा है तो मनुष्य अपनी प्राचीनता लाखों वर्ष तक आँकने लगा है।’<sup>1</sup>

आज भारत के ही नहीं, विश्व के अनेक देशों के विद्वान् यह मानने लगे हैं कि मानव-सभ्यता का इतिहास लाखों-लाख वर्ष पुराना है और वह भारत से ही प्रारम्भ होता है। भारतीय-पौराणिक विचारों को, जो कि इस सन्दर्भ में एकदम स्पष्ट हैं, यदि छोड़ भी दिया जाए तो भी विभिन्न देशों के विविध विषयों के विद्वानों के निष्कर्ष भी आज यही संकेत दे रहे हैं। विगत दो शताब्दियों में अनेक स्थानों पर हुए भू-उत्खननों में जो सामग्री मिली है, उससे भी यही स्पष्ट होता है कि मानव-सभ्यता लाखों-लाख वर्ष पुरानी है। इसकी पुष्टि स्कॉटलैण्ड में मिली 1.40 लाख वर्ष पुरानी और अमेरिका में मिली 2 लाख वर्ष पुरानी मानव-हड्डियाँ कर रही हैं। अन्य अनेक स्थलों पर इनसे भी और अधिक प्राचीन सामग्री मिली है। जहाँ तक भारत में ही सृष्टि के प्रारम्भ होने की बात है तो इस विषय में प्राणीशास्त्र के ज्ञाता मेडलीकट और ब्लम्फर्ड, इतिहास विषय के विद्वान् थोर्टन, कर्नल टॉड और सर वाल्टर रेले, भूगर्भशास्त्री डॉ. डॉन (अमेरिका) तथा जेकालियट, रोम्यां रोलां (1866-1946), रैनेग्वानां-जैसे अन्य विद्वानों का भी मानना है कि सृष्टि का प्रारम्भ भारत में ही हुआ था क्योंकि मानव के जन्म और विकास के लिए आवश्यक समशीतोष्ण तापमान के चिह्न प्राचीनकाल में भारत में ही मिलते हैं। इन प्रमाणों के समक्ष पाश्चात्य जगत् के उन विद्वानों के निष्कर्ष, जो 17वीं से 19वीं शताब्दी के बीच विश्व के विभिन्न देशों में गए हैं और जिन्हें

किसी भी देश का इतिहास तीन से पाँच हजार वर्ष पूर्व से अधिक का नहीं लगा। उनके द्वारा लिखे गए नोट्स, लेख और पुस्तकें पढ़कर ऐसा लगता है कि जैसे सब जगह पाँच हजार वर्ष पूर्व एक ऐसा पर्दा पड़ा हुआ है जिसके पार उन्हें कुछ दिखाई ही नहीं देता। उनकी दृष्टि में, सभ्यता चाहे सिंधुघाटी की हो या मेसोपोटामिया की, दक्षिण अमेरिका के पेरू की हो या मध्य अमेरिका के मैक्सिको की अथवा मिस्रियों की हो या हितियों की— सभी का इतिहास पाँच हजार वर्ष के भीतर ही सिमटकर रह जाता है।

आज यह सर्वमान्य तथ्य है कि ऋग्वेद भारत का ही नहीं विश्व का सर्वाधिक प्राचीन लिखित ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ को पाश्चात्य विद्वानों द्वारा 1500 ई. पू. का में रचित माना गया है। ऋग्वेद की रचना के लिए 1500 ई. पू. का काल-निर्धारण करनेवालों में सबसे प्रमुख जर्मनी के संस्कृत-विद्वान फ्रेडरिक मैक्समूलर हैं। मैक्समूलर आदि कुछ पाश्चात्य विद्वान् तो वेदों के रचनाकाल को 1000 ई. पू. से पूर्व का मानने को भी तैयार नहीं हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि पाश्चात्य विद्वानों ने विश्व के सबसे प्राचीन ग्रन्थ की रचना का काल आज से मात्र 3,000-3,500 वर्ष पूर्व ही निर्धारित किया है। यदि ऐसा है तो क्या लाखों वर्ष पूर्व से चलती आई मानव-सभ्यता के पास अपना कोई लिखित साहित्य 3,500 वर्ष से पूर्व था ही नहीं ? यह बात प्रामाणिक नहीं लगती, विशेषकर उस स्थिति में जब भारतीय-कालगणना के अनुसार वर्तमान सृष्टि का निर्माण हुए 1 अरब, 97 करोड़, 29 लाख से अधिक वर्ष हो गए हैं और आज के वैज्ञानिकों द्वारा भी पृथिवी की आयु 2 अरब वर्ष या इससे अधिक की निश्चित की जा रही है। यदि भारत के कल्प संवत् (कल्पाब्द), सृष्टि संवत्तादि की बात छोड़ भी दें तो भी कल्याण के ‘हिंदू-संस्कृति-अंक’ के पृ. 755 पर दी गई विदेशी संवत्तों की सूची के अनुसार चीनी संवत् 9.60 करोड़ वर्ष से ऊपर का है, खताई संवत् 8 करोड़ 88 लाख वर्ष से ऊपर का है, पारसी संवत् 1.89 लाख वर्ष से ऊपर का है, मिस्री संवत् (इस सभ्यता को आज के विद्वान् सर्वाधिक प्राचीन मानते हैं) 27 हजार वर्ष से ऊपर का है, तुर्की और आदम संवत् 7-7 हजार वर्ष से ऊपर के हैं, ईरानी और यहूदी-संवत् क्रमशः 6 हजार और 5 हजार वर्ष से ऊपर के हैं। इतने दीर्घकाल में क्या किसी भी देश में कुछ भी नहीं लिखा गया ? कई लोग कह देते हैं कि उस समय लिपि ही नहीं रही होगी, इसलिए कुछ लिखा नहीं जा सका होगा। किन्तु यह बात भी सही नहीं लगती, क्योंकि ऋग्वेद के

1. *Outline of World History*, 1934, p.15

निम्नलिखित मंत्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि वेदों के संकलन के समय में भी भाषा का निम्नलिखित स्वरूप विद्यमान था—

**‘उत त्वः पश्चन् न ददर्शवाचम् उत त्वः शृण्वन् न शृणोत्येनाम्।  
उतो त्वस्मै तन्वं विसन्ने जायेव पत्य उषसी सुवासाः॥’**

अर्थात्, कोई-कोई शब्द को देखकर भी देख नहीं पाता (लिपि-रूप में— लिपि के माध्यम से लिखित रूप में आए बिना शब्द देखा ही नहीं जा सकता) और कोई शब्द को सुनकर भी ठीक से सुन नहीं पाता (ध्वनि-रूप में)। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि वेद के संकलन-काल में ही भाषा के लिखित और श्रौत— दोनों रूप विद्यमान थे और जब भाषा का लिखित रूप उस समय विद्यमान था तो साहित्य अवश्य ही लिखा जाना चाहिए था। इस दृष्टि से यह भी उल्लेखनीय है कि इस मंत्र के सामने आज के वे भाषा और लिपि के वैज्ञानिक-विद्वान् भी कहीं नहीं ठहरते जो यह कहते हैं कि भारत में लिपि का प्रारम्भ 800 ई पू में हुआ था। निश्चित ही यह सबकुछ वेदों के संबंध में भ्रम फैलाने के लिए ही किया गया था।

यह ठीक है कि मैक्समूलर ने वेदों के निर्माण के लिए जो काल निर्धारित किया था, उसे पाश्चात्य विद्वानों ने तो मान्यता दी ही, भारत के भी अनेक विद्वानों ने थोड़े बहुत हेर-फेर के साथ उसे ही मान्यता प्रदान कर दी; किन्तु ऐसे विदेशी और देशी विद्वानों की संख्या भी काफी रही है और अब निरन्तर बढ़ती जा रही है जो 1500 ई पू में वेदों की रचना हुई है, ऐसा मान लेने को तैयार नहीं हैं। अलग-अलग विद्वानों ने वेद-संकलन के लिए अलग-अलग काल-निर्धारण किया है। कुछ विद्वानों द्वारा किया गया काल-निर्धारण इस प्रकार है—

मैक्डॉनल आदि विभिन्न पाश्चात्य विद्वान्	— 1200 से 1000 ई पू
ए ए कीथ	— 1200 ई पू
बुह्लर	— 1500 ई पू
फ्रेडरिक मैक्समूलर	— 1500 ई पू से 1200 ई पू
हॉग, ह्विटने, विल्सन ग्रिफिथ, रमेशचन्द्र दत्त	— 2000 ई पू
विंटर्नट्स	— 2500 ई पू
शंकर बालकृष्ण दीक्षित	— 3000 ई पू

1. ऋग्वेद, 10.71.4

जैकोबी	— 3000-4000 ई पू
बाल गंगाधर तिलक	— 6000-10,000 ई पू
हड़प्पा की प्राचीनता के आधार पर *	— 6,000 ई पू
जे एफ् जेरिंग **	— 10,000 ई पू से अधिक
डॉ डेविड फ्रॉले	— 12,000 वर्ष से अधिक
डॉ सम्पूर्णानन्द	— 18,000 से 30,000 ई पू तक
डॉ विष्णु श्रीधर वाकणकर ***	— 25,000 वर्ष से अधिक
अविनाशचन्द्र दास	— 25,000 से 50,000 ई पू
देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय	— 25,000 से 50,000 ई पू
भारतीय पौराणिक आधार पर	— सृष्टि-निर्माण के प्रारम्भिक काल में

इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि जैसे-जैसे नये-नये पुरातात्विक उत्खनन होते जा रहे हैं, वैसे-वैसे भारतीय-सभ्यता प्राचीन-से-प्राचीनतर सिद्ध होती जा रही है और वैसे-वैसे ही विश्व के सर्वप्रथम लिखित ग्रन्थ वेद की प्राचीनता भी बढ़ती जा रही है क्योंकि यह भारत का सर्वप्रथम लिखित ग्रन्थ है।

## भारत की ऐतिहासिक घटनाओं और महापुरुषों की तिथियों की हेरा-फेरी

भारतीय-इतिहास का आधुनिक रूप में लेखन करनेवाले पाश्चात्य विद्वानों ने इतिहास लिखते समय भारतीय-वाङ्मय, जोकि सम्पूर्णता का परिचायक है, के स्थान पर भारत के संबंध में विदेशियों द्वारा लिखे गए ग्रन्थों, जोकि प्रायः एकपक्षीय ही रहे हैं, को मुख्य रूप में आधार बनाया है। ऐसा करके उन्होंने अपने लेखन के क्षेत्र के आधार को सीमित करके उसे एकांगी बना लिया। भारतीय-ग्रन्थों को उन्होंने या तो पढ़ा ही नहीं, यदि पढ़ा भी तो उन्हें गम्भीरता से नहीं लिया और गहराई में जाए बिना ही उन्हें अप्रामाणिक की कोटि में डाल दिया। इसी कारण भारत के इतिहास के सन्दर्भ में चाहे उसकी ऐतिहासिक घटनाओं की तिथियों की बात रही हो या महापुरुषों से संबंधित तिथियों की—

\* नवीनतम शोधों के अनुसार 3500 ई पू से आगे की मानी जा रही है।

\*\* विलोचिस्तान में बोलन दर्रे के निकट मेहरगढ़ की खुदाई में मिली सामग्री के लिए दी गई 7,500-8,000 ई पू की तिथि के आधार पर।

\*\*\* सरस्वती-नदी के आधार पर। इसी के किनारों पर वेदों का संकलन हुआ था।

उनमें तरह-तरह की भ्रान्तियाँ पैदा हो गयीं। उन भ्रान्तियों के निराकरण के लिए अर्थात् अपने असत्य को सत्य सिद्ध करने के लिए उन लोगों को जबरन नयी-नयी और विचित्र कल्पनाएँ करनी पड़ीं, जो स्थिति का सही तौर पर निदान प्रस्तुत करने के स्थान पर उसे और अधिक उलझाने में ही सहायक हुई।

**भारत की ऐतिहासिक घटनाओं की तिथियाँ—** भारत की ऐतिहासिक घटनाओं की तिथियों में अशुद्धता, मुख्यतः विंटेर्नट्ज-जैसे पाश्चात्य लेखकों के स्पष्ट रूप में यह मान लेने पर कि भारत के इतिहास के सन्दर्भ में भारतीयों द्वारा बताई गई तिथियों की तुलना में चीनियों द्वारा बताई गई तिथियाँ आश्चर्यजनक रूप से उपयुक्त एवं विश्वसनीय हैं, अर्थात् भारतीय-आधारों का निरादर करके उनके स्थान पर यूनान, चीन, सीलोन (श्रीलंका) आदि देशों अर्थात् विदेशियों द्वारा भारत के सन्दर्भ में लिखे गए ग्रन्थों में उल्लिखित अप्रामाणिक तिथियों के अपनाने से आई हैं। इसी कारण जोन्स आदि को भारत के ऐतिहासिक तिथिक्रम में ऐसी कोई तिथि नहीं मिली, जिसके आधार पर वे भारत के प्राचीन इतिहास के तिथिक्रम का निर्धारण कर पाते। कितने आश्चर्य की बात है कि भारतीय-पुराणों में उल्लिखित एक ठोस तिथिक्रम के होते हुए भी जोन्स ने यूनानी-साहित्य के आधार पर 327 ई पू में सेंड्रोकोट्स के रूप में चन्द्रगुप्त मौर्य को जीवित मानकर 320 ई पू में उसके राज्यारोहण की कल्पना कर डाली और इसी तिथि को आधार बनाकर भारत का एक ऐसा पूरा ऐतिहासिक तिथिक्रम निर्धारित कर दिया जो कि भारतीय-स्रोतों के आधार पर कहीं टिक ही नहीं पाता। इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि एक देश विशेष का इतिहास लिखते समय विदेशी साहित्य का सहयोग लेना तो उचित माना जा सकता है किन्तु उसके आधार पर उस देश का ऐतिहासिक तिथिक्रम तैयार करना किसी भी प्रकार से न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता। 320 ई पू के आधार पर भारत के ऐतिहासिक तिथिक्रम का निर्धारण करके और वह भी भारतीय-स्रोतों को न केवल नकारकर वरन उसे कपोल-कल्पित तथा अप्रामाणिक बताकर पाश्चात्य लेखकों ने भारत की भावी संतति के साथ अन्याय ही नहीं किया, वरन विश्वासघात भी किया है।

विदेशी आधारों पर पाश्चात्य विद्वानों द्वारा भारतीय-इतिहास की घटनाओं की जो तिथियाँ निर्धारित की गई, उनकी पुष्टि किसी भी भारतीय-स्रोत के आधार पर नहीं हो पाती। कुछ महत्वपूर्ण तिथियाँ इस प्रकार हैं—

- \* भारतीय-इतिहास अधिक-से-अधिक 3000-2500 ई पू से प्रारम्भ होता है।
- \* वेदों की रचना 1500 से 1000 ई पू के बीच में हुई थी।
- \* महाभारत अधिक-से-अधिक 800 ई पू में हुआ था।
- \* स्मृतियों का रचनाक्रम अधिक-से-अधिक 200 ई पू में प्रारम्भ हुआ था।

**भारत के ऐतिहासिक महापुरुषों से संबंधित तिथियाँ—** पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय-इतिहास को आधुनिक रूप में लिखते समय अपनी धोंगामुस्ती के बल पर ऐतिहासिक घटनाओं के साथ-साथ विभिन्न ऐतिहासिक महापुरुषों की तिथियों का भी निर्धारण किया और उनका अनुसरण करनेवाले भारतीय-इतिहासकारों ने नतमस्तक होकर उन्हें ही शिरोधार्य कर लिया, किन्तु वे भी वास्तव में सही नहीं रहीं; क्योंकि उनके अनुसार निर्धारित तिथियाँ चाहें गौतम बुद्ध से संबंधित हों या चन्द्रगुप्त मौर्य से, अशोक से हों या कनिष्क से, आद्य शंकराचार्य से हों या कुमारिल भट्ट से अथवा अन्य विभिन्न बौद्ध-विद्वानों से, ऐसी नहीं बनतीं, जिनकी सत्यता सन्देह से परे हो, यथा—

- \* गौतम बुद्ध का महानिर्वाण 483 ई पू में
- \* चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्यारोहण 320 ई पू में
- \* अशोक 265 ई पू में गद्दी पर बैठा
- \* कनिष्क का राज्यारोहण 78 ई में
- \* आद्य शंकराचार्य का भू-अवतरण 788 ई में
- \* कुमारिल भट्ट का जन्म ईसा की 8वीं शती में

आज की तथाकथित शुद्ध ऐतिहासिक परम्परा में यदि किसी घटना या किसी प्राचीन महापुरुष से संबंधित तिथि ही ग़लत हो तो अन्य विवरणों का कोई मूल्य नहीं रह जाता। जबकि भारत के इतिहास में पाश्चात्य विद्वानों द्वारा एक-दो नहीं अनेक स्थानों पर ऐसा किया गया है। इससे बड़े-बड़े लोगों की कल्पित तिथियाँ देने तथा उनसे संबंधित घटनाओं को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करने के कारण अनेक स्थानों पर ऐतिहासिक घटनाओं की शृंखलाएँ टूट गई हैं। टूटी हुई शृंखलाओं को मिलाने के लिए आधुनिक इतिहासकारों को बे-सिर-पैर की विचित्र-विचित्र कल्पनाएँ करनी पड़ीं, जिससे स्थिति बड़ी ही हास्यास्पद बन गयी। जैसे— कई विद्वानों ने भिन्न-भिन्न कालों में हुए चार अशोकों की एक व्यक्ति



के रूप में कल्पना की है, कई विद्वानों के अनुसार कालिदास एक नहीं दो, और कई के अनुसार तीन हुए हैं। इसी प्रकार कई विद्वानों द्वारा भास्कराचार्य भी दो और प्रभाकर भी दो माने गए हैं। श्री चन्द्रकान्त बाली ने तो एक शूद्रक की जगह तीन बना दिए हैं।<sup>1</sup> शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने दो वराहमिहिर माने हैं।<sup>2</sup> यही नहीं, कुछ विद्वानों ने शौनक ऋषि के समकालीन आश्वलायन को बुद्ध का समकालीन आस्सलायन बता दिया है। इसी प्रकार प्रद्योत-वंश के संस्थापक को अवन्ती का चण्डप्रद्योत समझ लिया है। ऐसी कल्पनाओं के फलस्वरूप भारतीय-इतिहास में विद्यमान भ्रान्तियों की लम्बी सूची दी जा सकती है। ये भ्रान्तियाँ इस बात का स्पष्ट प्रमाण हैं कि अशुद्ध और अप्रामाणिक तिथियों के आधार पर लिखा गया किसी देश का इतिहास कितनी मात्रा में विकृत हो जाता है।

### साहित्यिक

#### भारत में ऐतिहासिक सामग्री का अभाव

भारतीय-दृष्टि से इतिहास एक विद्या विशेष है। विद्या के रूप में इतिहास का उल्लेख सर्वप्रथम *अथर्ववेद* में किया गया है—

‘तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन्’<sup>3</sup>

*अथर्ववेद* सृष्टि-निर्माता ब्रह्माजी की देन है, ऐसा माना जाता है। अतः भारत में ऐतिहासिक सामग्री की प्राचीनता असंदिग्ध है। ऐसी स्थिति में यह कहना कि भारत में ऐतिहासिक सामग्री का अभाव था, वास्तविकता को जान-बूझकर नकारने के अतिरिक्त कुछ नहीं है। व्यास-शिष्य लोमहर्षण के अनुसार प्रत्येक राजा को अपने समय का काफी बड़ा भाग इतिहास के अध्ययन में लगाना चाहिए और राजमंत्री को तो इतिहास-तत्त्व का विद्वान् होना ही चाहिए। राजा के लिए प्रतिदिन इतिहास सुनना एक अनिवार्य कार्य था। यदि प्राचीन काल में ऐतिहासिक सामग्री नहीं थी तो वे लोग क्या सुनते थे ?

भारत के इतिहास का आधुनिक रूप में लेखन करते समय मुख्य बात तो यह रही कि सत्ताधारी और उनके समर्थक इतिहासकार भारत की प्राचीन

सामग्री को सही रूप से प्रकाश में लाना ही नहीं चाहते थे। इसीलिए उसको प्रकाश में लाने के लिए जितने श्रम और लगन से खोज करने की आवश्यकता थी, वह नहीं की गई। इस सन्दर्भ में कोलोनल जेम्स टॉड ने अपने ग्रन्थ ‘*एनल्स ऑफ़ राजस्थान*’ नामक ग्रन्थ के प्रथम खण्ड की भूमिका में सर्वथा उपयुक्त कहा है—

‘जब सर विलियम जोन्स ने संस्कृत-साहित्य की खोज शुरू की तो बड़ी आशा बंधी थी कि इससे संसार के इतिहास को बहुत कुछ प्राप्त होगा किन्तु वह आशा अब तक पूर्ण नहीं हुई। इससे उत्साह के स्थान पर निराशा और उदासीनता व्याप्त हो गयी। सभी मानने लगे कि भारतवर्ष का कोई जातीय इतिहास ही नहीं है। इसके उत्तर में एक फ्रांसीसी ओरियंटलिस्ट के कथन को रख सकते हैं जिसने बड़ी चतुराई से पूछा कि अबुल फजल ने हिंदुओं के प्राचीन इतिहास के लिए सामग्री कहाँ से प्राप्त की थी ?’<sup>1</sup>

‘वास्तव में मि. विल्सन ने काश्मीर के ‘*राजतरंगिणी*’ नामक इतिहास का अनुवाद करते समय इस अविचार को बहुत कुछ घटाया है, जिससे यह सिद्ध होता है कि इतिहास लिखने की नियमबद्ध परिपाटी भारतवर्ष में अविदित नहीं थी और ऐसा निश्चित करने के लिए सन्तोषजनक प्रमाण मिलते हैं कि किसी समय में इतिहास की पुस्तकें वर्तमान समय की अपेक्षा अधिक मात्रा में उपलब्ध थीं...।’<sup>2</sup>

1. When Sir William Jones first began to explore the vast mines of Sanskrit literature, great hopes were entertained that the history of the world would acquire considerable accessions from this source. The sanguine expectations that were then formed have not been realized ; and, as it usually happens, excitement has been succeeded by apathy and indifference. It is now generally regarded as an axiom, that India possesses no national history ; to which we may oppose the remark of a French Orientalist, who ingeniously asks, whence Abu-l Fazl obtained the materials for his outlines of ancient Hindu history ?

—M. Abel Rémusat, in his *Mélanges Asiatiques*, makes many apposite and forcible remarks on this subject, which, without intention, convey a just reproof to the lukewarmness of our countrymen. The institution of the Royal Asiatic Society, especially that branch of it devoted to Oriental translations, may yet redeem this reproach.

1. Mr. Wilson has, indeed, done much to obviate this prejudice, by his translation of the *Rajatarangini*, or History of Kashmir,<sup>2</sup> which clearly demonstrates that regular historical composition was an art not unknown in Hindustan, and affords satisfactory ground for

1. सरस्वती, मई 1973

2. भारतीय ज्योतिष, पृ. 294

3. अथर्ववेद, 15.6.11

जहाँ तक भारत में ऐतिहासिक ग्रन्थों का प्रश्न है, इस दृष्टि से निराशा की इतनी बात नहीं है, जितनी कि पाश्चात्य इतिहासकारों ने दर्शाई है। मूल ऐतिहासिक ग्रन्थों के अभाव के इस युग में भी एक-दो नहीं, बल्कि अनेक ऐसे ग्रन्थ उपलब्ध हैं, जिनमें बड़ी मात्रा में भारत की ऐतिहासिक सामग्री सुलभ है। मुख्य प्रश्न तो संस्कृत आदि भाषाओं के ग्रन्थों में यत्र-तत्र बिखरी सामग्री को खोजकर निकालने और उसे सही परिप्रेक्ष्य में तथा उचित ढंग से सामने लाने का था, जो कि सही रूप में नहीं किया गया।

### 1. संस्कृत-वाङ्मय

संस्कृत-वाङ्मय में से यहाँ कुछ ऐसे वैदिक और ललित साहित्य के साथ-साथ ज्योतिष, आयुर्वेद तथा व्याकरण के कुछ ग्रन्थों का उल्लेख किया जा रहा है, जिनमें महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक उल्लेख सुलभ हैं।

#### क. वैदिक साहित्य

(अ) **संहिताएँ**— यह ठीक है कि वेदों को शुद्ध रूप में ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता, फिर भी उनमें ऐतिहासिक घटनाओं के सूत्र मिलते हैं, जैसे— इन्द्र द्वारा किए गए विविध युद्धों के वर्णन, विश्वामित्र और वसिष्ठ की शत्रुता का उल्लेख, इन्द्र द्वारा नहुष और दिवोदास को बल प्रदान करने जैसी अनेक कथाएँ इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी हैं। अथर्ववेद में भी प्राचीन घटनाओं के संक्षिप्त सूत्र सुलभ हैं।

(आ) **ब्राह्मण-ग्रन्थ**— इन ग्रन्थों में भी ऐतिहासिक देवासुर संग्राम की अनेक घटनाएँ दी गई हैं। कालक्रम की दृष्टि से *ऐतरेयब्राह्मण*, *जैमिनीयब्राह्मण*, *गोपथब्राह्मण*, *शतपथब्राह्मण* आदि का अध्ययन करके भी बहुत कुछ निश्चित किया जा सकता है। इनमें अधिकतर ब्राह्मण-ग्रन्थ महाभारत से पूर्व काल के हैं।

(इ) **अन्य ग्रन्थ**— विभिन्न आरण्यक, उपनिषद्, वेदांग-साहित्य (कल्पसूत्र, ग्रहसूत्र इत्यादि), स्मृति-ग्रन्थों आदि के साथ-साथ अन्य संस्कृत-ग्रन्थों में भी भारत के प्राचीन इतिहास की सामग्री बड़ी मात्रा में विद्यमान

concluding that these productions were once less rare than at present, and that further exertion may bring more relics to light.

—*Asiatic Researches*, vol. xv. [The *Rājatarangini* of Kalhana has been translated by M. A. Stein, 2 vols., London, 1910.

है। इन ग्रन्थों में महाभारत-युद्ध से भी हज़ारों-हज़ार वर्ष पूर्व की ऐतिहासिक घटनाएँ संकलित हैं।

#### ख. ललित साहित्य

(अ) **महाकाव्य/काव्य**— वाल्मीकि आदि की विभिन्न रामायणों, *महाभारत*, कालिदास का *रघुवंश*, माघ का *शिशुपालवध*, प्रवरसेन का *सेतुबन्ध*, भट्टिका का *रावणवध*, कुमारदास का *जानकीहरण*, क्षेमेन्द्र का *दशवतारचरित* और ऐसे अनेक महाकाव्यों/काव्यों के नाम उल्लेखनीय हैं, जिनमें भारत के प्राचीन इतिहास के अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्य बिखरे हुए हैं।

(आ) **नाटक**— संस्कृत में नाटकों की लम्बी और सशक्त परम्परा विद्यमान रही है। महाभारत से पूर्व और बाद की ही नहीं, आधुनिक काल की विविध ऐतिहासिक घटनाओं को लेकर अनेक नाटक लिखे गए हैं। यह ठीक है कि नाटकों में कल्पना का पुट रहता है, फिर भी फिर भी नाटकों से संबंधित काल की विभिन्न स्थितियों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

(इ) **कथा-साहित्य**— भारत में ऐतिहासिक कथा-ग्रन्थों की दृष्टि से भी कभी कोई कमी नहीं रही है। *बन्धुमतिकथा*, *भैरथीकथा*, *सुमनोत्तराकथा*, *बृहद्कथा*, *शूद्रकथा*, जैनाचार्य पादलिप्त की प्राकृत में *तरंगवतीकथा*, रुद्र की *त्रैलोक्यसुन्दरीकथा*, वररुचि की *चारुमति*, धवल की *मनोवती*, *विलासवती*, *नर्मदासुन्दरी*, *बिन्दुमती*, *अवन्तिसुन्दरी* आदि अनेक ऐतिहासिक कथा-ग्रन्थ विद्यमान रहे हैं। यह ठीक है कि अब उनमें से अनेक ग्रन्थ लुप्तप्राय हैं। फिर भी वाणभट्ट की *कादम्बरी*-जैसे कथा-ग्रन्थ पर्याप्त मात्रा में हैं, जिनमें काफी ऐतिहासिक तथ्य मिलते हैं। क्षेमेन्द्र की *बृहत्कथामंजरी* और सोमदेव का *कथासरित्सागर* भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय है।

(ई) **जीवन-चरित**— इतिहास-लेखन में जीवन-चरित बड़े उपयोगी होते हैं और भारत में वे पर्याप्त मात्रा में सुलभ भी हैं। प्राचीनकाल में *पुरुरवाचरित*, *ययातिचरित* आदि, महाभारत-पूर्व काल का *देवर्षिचरित* और बाद के *चन्द्रचूड़चरित*, *बुद्धचरित*, *शूद्रकचरित*, *साहसांकचरित*, *हर्षचरित*, *रामचरित*, *नवसाहसांकचरित*, *विक्रमांकदेवचरित*, *पृथ्वीराजरासो*-जैसे अनेक प्रसिद्ध जीवन-चरित उपलब्ध हैं। इनसे चरित्र-नायकों के संबंध में पर्याप्त मात्रा में अंतरंग ऐतिहासिक तथ्यों का पता चलता है।

## ग. अन्य ग्रन्थ

(अ) **ज्योतिष, आयुर्वेदादि के ग्रन्थ**— कश्यप, वसिष्ठ, पराशर, देवल आदि तथा इनसे पूर्व के ज्योतिष से संबंधित विद्वानों की रचनाएँ और वराहमिहिर, भट्टोत्पल, गर्ग आदि की ज्योतिष विषय पर लिखित रचनाएँ ऐतिहासिक काल-निर्धारण के सन्दर्भ में बड़े महत्त्व की हैं। *गर्गसंहिता* का युगवृत्तान्त अध्याय इस दृष्टि से बड़ा उपयोगी है। मौर्य-साम्राज्य के सन्दर्भ में इसमें दिए गए विचार इतिहास की दृष्टि से बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। आयुर्वेद के प्रखर विद्वान् चरक की '*चरकसंहिता*' में भी अनेक ऐतिहासिक सूत्र विद्यमान हैं।

(आ) **अर्थशास्त्र**— भारत में अर्थशास्त्र लिखने की सुदीर्घ परम्परा रही है। कौटिल्य का '*अर्थशास्त्र*' इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। कौटिल्य ने अपने *अर्थशास्त्र* में कहा है कि मैंने पृथिवी के लाभ और पालन के लिए पूर्वाचार्यों के सभी कथनों का संक्षेप यहाँ प्रस्तुत किया है। इसमें चार स्थानों पर, यथा— अध्याय 6, 13, 20 और 95 में प्राचीन आर्य-राजाओं के सन्दर्भ में बहुत-सी उपयोगी बातें लिखी हैं जिनसे भारत के प्राचीन इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

(इ) **व्याकरण-ग्रन्थ**— भाषा को सम्पूर्ण बनाने की दृष्टि से भारत में प्राचीन काल से ही व्याकरण-ग्रन्थों के लिखने की परम्परा रही है, किन्तु ये ग्रन्थ केवल भाषा-निर्माण के सिद्धान्तों तक ही सीमित नहीं रहे हैं, उनमें तत्कालीन ही नहीं, उससे पूर्व के समय के भी धर्म, दर्शन, राजनीतिशास्त्र, राजनीतिक संस्थाओं आदि के ऐतिहासिक विकास पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है, जिससे वे इतिहास विषय पर लेखन करनेवालों के लिए परम उपयोगी बन गए हैं। पाणिनि की *अष्टाध्यायी* इस दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है। इसके गण-पाठ खण्ड में जो सामग्री दी गई है, वह इतिहासकारों के लिए प्राचीन अभिलेखों के समान महत्त्वपूर्ण है। *अष्टाध्यायी* पर पतञ्जलि की टीका *व्याकरणमहाभाष्य* भी ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत अधिक उपयोगी है। इसमें उस समय के मगध आदि राज्यों की स्थिति, पुष्यमित्र के उदय तथा देश पर यवनों के आक्रमण के संबंध में जो जानकारी मिलती है, वह इतिहासकारों के लिए बहुमूल्य है। उत्तरवर्ती वैयाकरणों ने अकेले क्षुद्रकों द्वारा सिकन्दर की पराजय, यवनों द्वारा मथुरा और अयोध्या का घेराव तथा माध्यमिक (राजस्थान का एक शहर) का विनाश करने जैसी घटनाओं को

इतिहास-लेखन के लिए सुरक्षित कर दिया है। पुं युधिष्ठिर मीमांसक का '*संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास*' का उल्लेख भी किया जा सकता है, जिसमें भारतीय-इतिहास के अनेक पक्ष उजागर किए गए हैं।

उक्त वैदिक और ललित साहित्य तथा ज्योतिष, आयुर्वेद, अर्थशास्त्र, व्याकरणादि के ग्रन्थों के अलावा भी संस्कृत-भाषा के बहुत-से उल्लेखनीय ग्रन्थ आज भी हमारे यहाँ इतनी बड़ी मात्रा में उपलब्ध हैं कि उन सबका विवरण यहाँ दे पाना कठिन ही नहीं, असम्भव है। यह भी उल्लेखनीय है कि परतन्त्रता के काल में मुस्लिम-आक्रान्ताओं ने प्राचीन काल में बहुत बड़ी मात्रा में लिखित धार्मिक, ऐतिहासिक, तान्त्रिक, साहित्यिक आदि विभिन्न विषयों के ग्रन्थों के रूप में उपलब्ध अपार ज्ञानराशि को जलाकर नष्ट कर दिया था। यदि वह सब सामग्री सुलभ होती, तो आज इतिहास के क्षेत्र में जो धींगामुस्ती दिखाई दे रही है, सम्भवतः वह न हो पाती।

## 2. ऐतिहासिक ग्रन्थ

(अ) **राजतरंगिणी**— काश्मीरी-कवि कल्हण-कृत '*राजतरंगिणी*' में काश्मीर के राजवंशों का इतिहास दिया गया है। इसकी रचना 1148 ई. में हुई थी। इसमें दिए गए विवरण ऐतिहासिक दृष्टि से आम तौर पर सही पाए गए हैं। विल्सन, स्मिथ आदि कई पाश्चात्य लेखकों ने भी इस पुस्तक की प्रशंसा की है।

'*राजतरंगिणी*' में काश्मीर राज्य का इतिहास महाभारत-युद्ध (3139-38 ई. पू.) से 312 वर्ष पूर्व से दिया गया है। इसमें 3450 ई. पू. से 1148 ई. ('*राजतरंगिणी*' के रचनाकाल) तक का इतिहास सुलभ है। इसमें उल्लिखित विवरणों से भारत के प्राचीन इतिहास की अनेक घटनाओं और व्यक्तियों पर काफी प्रकाश पड़ता है। पुं कोटावेंकटचलम् ने '*क्रोनोलॉजी ऑफ़ काश्मीर हिस्ट्री रिकन्स्ट्रक्टेड*' में बताया है कि इसमें महाभारत से पूर्व हुए मथुरा के श्रीकृष्ण-जरासंध युद्ध, महाभारत-युद्ध और महाभारत के बाद की काश्मीर की ही नहीं अपितु भारत की विभिन्न ऐतिहासिक घटनाओं, यथा— परीक्षित की काश्मीर-विजय, परीक्षित की मृत्यु, गौतम बुद्ध का निर्वाण, कनिष्क का राज्यारोहण आदि का उल्लेख भी मिलता है। '*राजतरंगिणी*' में दिए गए अनेक ब्योरों की पुष्टि पुराणों में उल्लिखित ब्योरों से हो जाती है, किन्तु भारत के इतिहास-लेखन में इस पुस्तक का कोई भी सहयोग नहीं लिया गया। उल्टे पत्तीट

आदि के द्वारा इसमें उल्लिखित तथ्यों को हर प्रकार से अप्रामाणिक सिद्ध करने का प्रयास किया गया।

**(आ) नेपालवंशावली—** नेपाल की राजवंशावली में वहाँ के राजाओं का लगभग 5 हजार वर्षों का ब्योरा सुलभ है। पृं कोटावेंकटचलम् ने इस वंशावली पर काफी कार्य किया है और उन्होंने मगध, काश्मीर तथा नेपाल राज्यों के विभिन्न राजवंशों के क्रमानुसार राजाओं का पूरा विवरण 'क्रोनोलॉजी ऑफ नेपाल हिस्ट्री रिकन्सट्रक्टेड' के परिशिष्ट 1 (पृ 89 से 100) में दिया है। इसमें नेपाल के 104 राजाओं के 4,957 वर्षों के राज्यकाल की जो सूची दी गई है, उसमें कलियुग के 3,899 वर्षों के साथ-साथ द्वापर के अन्तिम 1,058 वर्षों का ब्योरा भी दिया गया है।

इस वंशावली से भारतीय-इतिहास के भी कई अस्पष्ट पन्नों को स्पष्ट करने में सहयोग मिल जाता है। उदाहरण के लिए आद्य जगद्गुरु शंकराचार्य जी के जन्म और विक्रम संवत् के प्रवर्तक उज्जैन के महाराजा विक्रमादित्य के ऐतिहासिक व्यक्तित्व होने जैसे विषयों को लिया जा सकता है। इन दोनों ही विषयों में भारत के इतिहास के विषय में स्थिति बड़ी अस्पष्ट है।

इसके अतिरिक्त भी अन्य कई प्रसंग 'नेपाल राजवंशावली' में ऐसे मिलते हैं, जिनसे भारतीय-इतिहास के कई लुप्त पृष्ठ स्पष्ट हो जाते हैं, किन्तु भारत के इतिहास के आधुनिक लेखकों ने इतिहास लिखते समय इससे कोई सहायता नहीं ली। उल्टे डुं बुद्ध ने अपने कुतर्कों के आधार पर इसके विवरणों को भ्रष्ट ही किया।

### 3. बौद्ध-साहित्य

बौद्धों का सबसे प्राचीन ग्रन्थ *त्रिपिटक* है। इसमें तीन पिटक, यथा— सुत्त, विनय और अभिधम्म हैं। इनसे उस समय के भारत के सामाजिक और धार्मिक जीवन पर बहुत प्रकाश पड़ता है। इनके अतिरिक्त विभिन्न राजाओं के समय में अनेक लेखकों द्वारा भी तरह-तरह के ग्रन्थों की रचना की गई, जिनमें तत्कालीन स्थिति का निरूपण व्यापक स्तर पर किया गया है। बौद्ध-ग्रन्थ *महावग्ग*, *महापरिनिव्वाणसुत्त*, *दीघनिकाय*, *निरयावलीसुत्त*, *पेतवत्थुअट्ठकथा*, *सुमंगलविलासनी*, *संयुक्तनिकाय*, *विप्रानिकाय*, *सुत्तनिपात*, *विमानवत्थुअट्ठकथा*, *थेरीगाथा*, *धम्मपदअट्ठकथा*, *मज्झिमनिकाय*, *अंगुत्तरनिकाय* आदि ग्रन्थों में

विम्बिसार, अजातशत्रु, दर्शक, उदायि आदि राजाओं के संबंध में बड़ी जानकारी मिलती है। 'मिलिन्दपन्ह' में यूनानी राजा मिनाण्डर और बौद्ध-भिक्षु नागसेन की जीवनी है। इसमें ईसा पूर्व पहली दो शताब्दियों के उत्तर-पश्चिमी भारत के जनजीवन की झाँकी मिलती है। 'दिव्यावदान' में अनेक राजाओं की कथाएँ हैं। ऐतिहासिक सामग्री की दृष्टि से पृं गणपति शास्त्री द्वारा प्रकाश में लाए गए ग्रन्थ 'मंजुश्रीमूलकल्प' का नाम उल्लेखनीय है। इस अकेले ग्रन्थ में बड़ी संख्या में ऐतिहासिक तथ्य सुलभ हैं। इसमें बौद्ध-दृष्टिकोण से गुप्त-सम्राटों का वर्णन मिलता है। भारतीय-बौद्ध-साहित्य के आधार पर भारत के प्राचीन इतिहास के अनेक टूटे हुए तार जुड़ सकते हैं। लेकिन आधुनिक ढंग से भारत का इतिहास-लेखन करनेवालों ने भारतीय-पौराणिक ग्रन्थों की तरह भारतीय-बौद्ध-ग्रन्थों को भी नकारा है।

### 4. जैन-साहित्य

बौद्ध-साहित्य की तुलना में जैन-साहित्य ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक सशक्त है। यह सही है कि जैन-साहित्य का संकलन काफी समय बाद में शुरू किया गया था। फिर भी अनेक राजाओं से संबंधित घटनाएँ, संवत् तथा विभिन्न ऐतिहासिक घटनाएँ जैन-साहित्य में विस्तार से मिलती हैं। इस दृष्टि से 'उत्तराध्ययन' नामक ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं। विक्रम की चौथी और पाँचवीं शताब्दियों से लेकर नौवीं-दसवीं शताब्दियों तक जैनाचार्य जिनसेन, हरिभद्रसूरी, हेमचन्द्र आदि विद्वानों ने जैन मत की टूटी हुई प्राचीन परम्परा को पुनः जोड़ा और इतिहास का संग्रह किया; क्योंकि भगवान् बुद्ध और वर्द्धमान महावीर, जिन्हें अनेक विद्वानों द्वारा लगभग समसामयिक माना जाता है, की मृत्यु के पश्चात् बड़े भयंकर अकाल में सहस्रों भिक्षु नष्ट हो गए थे और बहुत से उत्तर से दक्षिण को चले गये। इससे बौद्ध और जैन-साहित्य काफी छिन्न-भिन्न हो गया। अतः उसका पुनर्संकलन आवश्यक प्रतीत हुआ। जैन-रचनाओं के आधार पर भी प्राचीन भारत के इतिहास के अनेक टूटे हुए सूत्र जोड़े जा सकते हैं। इस दृष्टि से छठी शताब्दी ई पू में आचार्य यतिवृषभ द्वारा लिखित ग्रन्थ 'तिलोयपण्णत्ति' उल्लेखनीय है। ऐसे जैन-ग्रन्थों की संख्या काफी अधिक है, जिनमें तत्कालीन ऐतिहासिक तथ्य विस्तार से दिए गए हैं। कुछ ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं— 'उपासमदसाओं', 'राजावलिकथा', 'विविधतीर्थकल्प', 'जम्बुद्वीपप्रज्ञप्ति', 'बृहत्कल्पसूत्र', 'निर्युक्तिगाथा', 'ज्ञाताधर्मकथा', 'ओमवार्तिकसूत्र', 'निशीथचूर्णि' आदि। किन्तु



इन ग्रन्थों का कोई उल्लेखनीय सहयोग भारत के आधुनिक इतिहास लिखने में नहीं लिया गया। यदि सहयोग लिया जाता, तो हरिषेण-कृत 'कथाकोश', नाथूराम-कृत 'पुण्याश्रयकथाकोश', आचार्य हेमचन्द्र-कृत 'परिशिष्टपर्व' आदि से मौर्य-साम्राज्य के विविध राजाओं के संबंध में बड़ी मात्रा में जानकारी मिल सकती थी।

## 5. अन्य क्षेत्रीय ग्रन्थ

सम्राट् हर्षवर्धन के पश्चात् देश में केन्द्रीय सत्ता समाप्त हो जाने पर देश छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित हो गया। पंजाब, हिमाचल, गुजरात, राजस्थान आदि क्षेत्रों में स्थापित स्वतन्त्र राज्यों में अपने-अपने राज्यानुसार ऐतिहासिक विवरण तैयार कराए गये। इन राज्यों में मिले कई विवरण प्राचीन इतिहास की अमूल्य धरोहर हैं।

पंजाब और हिमाचल राज्यों में मिली राजवंशावलियों में कई प्राचीन ऐतिहासिक तथ्य मिलते हैं। इसी प्रकार से गुजरात के राजवंशों के संबंध में भी कई ऐतिहासिक ग्रन्थ सुलभ हो चुके हैं। राजस्थान के विभिन्न राजवंशों के सन्दर्भ में वहाँ के ही राजकीय संग्रहालयों में अनेक रचनाएँ विद्यमान हैं जिनके सन्दर्भ में कोलोनल टॉड ने अपने ग्रन्थ 'एनल्स ऑफ़ राजस्थान' में संकेत दिए हैं।

इतनी सामग्री के होते हुए भी भारत में ऐतिहासिक सामग्री के अभाव की बात करनी कहाँ तक न्यायसंगत है, यह विचारणीय है।

## भारत का प्राचीन साहित्य, यथा— रामायण, महाभारत, पुराणादि 'मिथ'

भारत में अंग्रेज़ों के आगमन से पूर्व सभी भारतीयों को अपने प्राचीन साहित्य में, चाहे वह रामायण हो या महाभारत, पुराण हो या अन्य ग्रन्थ, पूर्ण निष्ठा थी। इसके सन्दर्भ में 'मिथ' की मिथ्या धारणा अंग्रेज़-इतिहासकारों द्वारा ही फैलाई गई; क्योंकि अपने उद्देश्य की प्राप्ति की दृष्टि से उनके लिए ऐसा करना एक अनिवार्यता थी। बिना ऐसा किए इन ग्रन्थों में उल्लिखित ऐतिहासिक तथ्यों की सच्चाई से बच पाना उनके लिए कठिन था। जबकि भारतीय-ग्रन्थ, यथा— रामायण, महाभारत, पुराणादि भारत के सच्चे इतिहास के दर्पण हैं। इनके तथ्यों को यदि मान लिया जाता तो अंग्रेज़ लोग भारत के इतिहास-लेखन में मनमानी कर ही नहीं सकते थे। अपनी मनमानी करने के लिए ही उन लोगों ने भारत के

प्राचीन ग्रन्थों के लिए 'मिथ', 'अप्रामाणिक', 'अतिरञ्जित', 'अविश्वसनीय'—जैसे शब्दों का न केवल प्रयोग ही किया वरन् अपने अनर्गल वर्णनों को हर स्तर पर मान्यता भी दी और दिलवायी। फलतः आज भारत के ही अनेक विद्वान् उक्त ग्रन्थों के लिए ऐसी ही भावना रखने लगे जबकि ये सभी ग्रन्थ ऐतिहासिक तथ्यों से परिपूर्ण हैं। इनके सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि काव्यात्मकता, काव्यमयता और प्रस्तुति की विशिष्ट ध्वनि के कारण इन्हें काव्य की कोटि में भले ही रख दिया जाए, किन्तु इनमें विष्णु जी के नाना प्रकार के चरितों और उनसे सम्बद्ध कथाओं के माध्यम से लाखों-लाख वर्ष पूर्व का भारत का इतिहास प्रस्तुत किया जा सकता है।

**रामायण—** वाल्मीकि ने श्रीरामकथा के माध्यम से उनसे पूर्व के लाखों-लाख वर्षों के भारत के इतिहास को सामने रखते हुए भारत के स्वर्णिम अतीत का ज्ञान बड़े ही व्यापक रूप में वर्णित किया है।

**रामायण इतिहास है—** रामायण की कथा की ऐतिहासिकता के सन्दर्भ में महर्षि व्यास का महाभारत में यह कथन सबसे बड़ा प्रमाण है, जो उन्होंने वनपर्व में श्रीरामकथा का उल्लेख करते हुए कहा है— 'राजन ! पुरातन काल के इतिहास में जो कुछ घटित हुआ है अब वह सुनो'। यहाँ 'पुरातन' और 'इतिहास'— दोनों ही शब्द रामायण की कथा की प्राचीनता और ऐतिहासिकता प्रकट कर रहे हैं। यही नहीं, श्रीरामकथा की ऐतिहासिकता का सबसे प्रबल आधुनिक युग का वैज्ञानिक प्रमाण अमेरिकी-अंतरिक्ष एजेंसी 'नासा' द्वारा 14 सितम्बर, 1966 को और भारत द्वारा 1992 में छोड़े गए उपग्रहों ने श्रीराम द्वारा लंका जाने के लिए निर्मित कराए गए सेतु के समुद्र में डूबे हुए अवशेषों के चित्र खींचकर प्रस्तुत कर दिया है। दिनांक 24 मार्च, 1993 के दिल्ली के 'इण्डियन एक्सप्रेस' में न केवल भारत को श्रीलंका से जोड़नेवाली भू-पट्टी के चित्र ही प्रकाशित हुए थे, वरन् 'बिटविन दि हिस्ट्री एण्ड वाल्मीकि' शीर्षक से यह समाचार भी प्रकाशित हुआ था—

'Computer altered image shows the mythological land bridge between India and Sri Lanka through Ramreshwaram and Jafana.'

इस कथा की ऐतिहासिकता का ज्ञान इस बात से भी हो जाता है कि वाल्मीकिरामायण में बताया गया है कि जब हनुमान जी सीता जी की खोज के



लिए लंका में रावण के भवन के पास से निकले तो वहाँ उन्होंने तीन और चार दाँतोंवाले हाथी देखे—

**‘चतुर्विषाणैर्द्विर्दस्त्राविषाणस्तथैव च।  
परिक्षिप्तमसम्बाधं रक्ष्यमाणमुदायुधैः॥’<sup>1</sup>**

इसके अन्यत्र भी *वाल्मीकिरामायण* में चार दाँतोंवाले हाथियों का उल्लेख है—

**‘वारणेश्च चतुर्दन्तैः श्वेताभ्रनिचयोपमैः।  
भूषितै रुचिरद्वारं मत्तैश्च मृगपक्षिभिः ॥’<sup>2</sup>**

श्री पी. एन. ओक के अनुसार आधुनिक प्राणीशास्त्रियों का मानना है कि ऐसे हाथी पृथिवी पर थे तो अवश्य किन्तु उनकी नस्ल को समाप्त हुए 10 लाख वर्ष से अधिक समय हो गया। दूसरे शब्दों में श्रीरामकथा दस लाख वर्ष से अधिक प्राचीन तो है ही, साथ ही ऐतिहासिक भी है।

**महाभारत—** यह महर्षि वेदव्यास की वह कालजयी कृति है, जिसे उन्होंने महाभारत-युद्ध के तुरन्त बाद ही लिखा था और जिसे उनकी ही आज्ञा से सर्पसत्र के समय उनके शिष्य वैशम्पायन ने राजा परीक्षित के पुत्र जनमेजय को सुनाया था, जिसका राज्यकाल कलि की प्रथम शताब्दी में रहा था अर्थात् इसकी रचना को 5 हजार वर्ष से अधिक हो गए हैं। यद्यपि इसकी कथा में एक परिवार के परस्पर संघर्ष का उल्लेख किया गया है, तथापि उसकी चपेट में सम्पूर्ण भारत ही नहीं अन्य अनेक देश भी आए हैं। फिर भी सारी कथा श्रीकृष्ण के चारों ओर ही घूमती रही है। यह ठीक है कि आज अनेक लेखक श्रीकृष्ण के भू-अवतरण को काल्पनिक मान रहे हैं किन्तु वे भारत के एक ऐतिहासिक पुरुष हैं, इसका प्रमाण भारत का साहित्य ही नहीं आधुनिक विज्ञान भी प्रस्तुत कर रहा है।

**महाभारत—काल में लोहे का प्रयोग होता था—** महाभारत ग्रन्थ में युद्ध के दौरान लोहे के हथियारों के प्रयोग का उल्लेख कई स्थलों पर आया है, किन्तु आज के पुरातात्विक, जिनमें डॉ. हंसमुख धीरजलाल संकालिया (1908-1989) प्रमुख हैं, यह मानने के लिए तैयार नहीं हैं कि यह 5 हजार वर्ष पूर्व की घटना है; क्योंकि उनके अनुसार 800 ई. पू. से पूर्व भारत में ‘लोहा’

नामक धातु का ज्ञान और उसके नियमित प्रयोग की जानकारी थी ही नहीं।<sup>1</sup> आधुनिक पुरातात्विकों का यह भी मानना है कि यदि महाभारत-युद्ध में लोहे का प्रयोग हुआ है, तो वह 800 ई. पू. के बाद की घटना है। किन्तु समुद्र में तेल खोजते समय भारतीय-अन्वेषकों को 5,000 वर्ष पूर्व समुद्र में डूबी श्रीकृष्ण जी की द्वारका के कुछ अवशेष दीखे। खोज हुई और खोज में वहाँ मिली सामग्री के सन्दर्भ में 1994 में तत्कालीन प्रधानमंत्री-कार्यालय के मंत्री द्वारा लोकसभा में दिए गए एक प्रश्न के उत्तर में बताया गया था कि वहाँ मिली सामग्री में 3 छिद्रित लंगर, मोहरें, उत्कीर्णित जार, मिट्टी के बर्तन, फ्लैग पोस्ट के साथ-साथ एक जेटी (घाट) आदि उल्लेखनीय हैं। लंगरों में लोहा लगा हुआ मिला है, स्पष्ट है कि महाभारत-काल में लोहे का प्रयोग भारत में होता था। महाभारत-युद्ध का काल भारतीय-पौराणिक कालगणना के अनुसार आज से 5144-45 वर्ष पूर्व का है। द्वारका की खोज ने भारतीय पुरातन साहित्य में उल्लिखित श्रीकृष्ण और द्वारका के साथ-साथ *महाभारत* की कथा को ‘मिथ’ की कोटि से निकालकर इसे इतिहास भी सिद्ध कर दिया है।

**पुराण—** पुराण भारतीय-जनजीवन के ज्ञान के प्राचीनतम स्रोतों में से हैं। इन्हें प्राचीन काल से लेकर आज तक भारतीय-समाज में पूर्ण सम्मान दिया जाता रहा है। पुराणों को श्रुति अर्थात् वेदों के समान महत्त्व दिया गया है— ‘श्रुतिस्मृति उभेनेत्रे पुराणं हृदयं स्मृतम्’ अर्थात् श्रुति और स्मृति— दोनों ही नेत्र हैं तथा पुराण हृदय। *मनुस्मृति* में श्राद्ध के अवसर पर पितरों को वेद और धर्मशास्त्र के साथ-साथ इतिहास और पुराणों को सुनाने के लिए कहा गया है। पुराणों की कथाओं का विस्तार आज से करोड़ों-करोड़ वर्ष पूर्व तक माना जाता है। इनके अनुसार सृष्टि का निर्माण आज से 1,97,29,49,115 वर्ष पूर्व हुआ था। पहले इस बात को कपोल-कल्पित कहकर टाला जाता रहा है किन्तु आज तो विज्ञान भी यह बात स्पष्ट रूप में कह रहा है कि पृथिवी का निर्माण दो अरब वर्ष से अधिक पूर्व में हुआ था। दूसरे शब्दों में पुराणों में कही गई बात विज्ञान की कसौटी पर सही पाई गई है। अतः इनकी प्रामाणिकता स्वतः सिद्ध हो जाती है।

**पुराणों में इतिहास—** पुराणों से केवल भारतीय-जीवन के इतिहास का ही नहीं, वरन् सृष्टि-रचना, प्राणी की उत्पत्ति, भारतीय-समाज के पूर्व-पुरुषों के

1. *वाल्मीकिरामायण*, सुन्दरकाण्ड, 9.5 (गीताप्रेस-संस्करण)

2. *वही*, सुन्दरकाण्ड, 4.28

1. राजेन्द्र सिंह की अप्रकाशित पुस्तक ‘महाभारत-युद्ध की ऐतिहासिकता’

कार्य की दिशा, प्रयास और मन्तव्य के ज्ञान के साथ-साथ विभिन्न मानव जातियों की उत्पत्ति, ज्ञान-विज्ञान, जगत् के भिन्न-भिन्न विभागों के पृथक्-पृथक् नियमों आदि का भी पता चलता है। इनमें देवताओं और पितरों की नामावली के साथ-साथ अयोध्या, हस्तिनापुर आदि के राजवंशों का महाभारत-युद्ध के 1,504 वर्ष के बाद तक का वर्णन मिलता है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं लगाया जाना चाहिए कि पुराणों की रचना महाभारत के 1,500 वर्ष के बाद हुई है। विभिन्न भारतीय-विद्वानों का कहना है कि पुराण तो प्राचीन हैं किन्तु उनमें राजवंशों के प्रकरण समय-समय पर संशोधित किए जाते रहे हैं। यही कारण है कि अलग-अलग पुराणों में एक ही वंश के राजाओं की संख्या में अन्तर मिल जाता है। उदाहरण के लिए सूर्यवंश के राजाओं की संख्या *विष्णुपुराण* में 92, *भविष्यपुराण* में 91, *भागवतपुराण* में 87 और *वायुपुराण* में 82 दी गई है। इससे लगता है कि संशोधनों के ही समय इनमें कुछ बातें ऐसी भी समाविष्ट हो गई हैं जिनके कारण इनकी कुछ बातों की सत्यता पर ऊँगली उठा दी जाती है।

### राजाओं और राजवंशों के वर्णन

#### अतिरिक्त एवं अवास्तविक

महाभारत-युद्ध के 200-250 वर्ष के पश्चात् ही भारत की केन्द्रीय सत्ता हस्तिनापुर से निकलकर मगध राज्य में चली गई और मगध की गद्दी पर एक के पश्चात् दूसरे वंश का अधिकार होता चला गया। इन सभी वंशों के राजाओं की सूचियाँ *वायुपुराण*, *ब्रह्माण्डपुराण*, *मत्स्यपुराण*, *विष्णुपुराण*, *भागवतपुराण* आदि में मिलती हैं। साथ ही *कलियुगराजवृत्तान्त* और *अवन्तिसुन्दरीकथा* में भी इन राजवंशावलियों का उल्लेख किया गया है। इन सभी ग्रन्थों में वर्णित राजाओं के नामों तथा उनकी आयु और राज्यकालों में कहीं-कहीं परस्पर अन्तर मिलता है। किन्तु यह अन्तर ऐसा नहीं है जिसे ठीक न किया जा सके। जबकि जोन्स आदि ने उनके संबंध में पूर्ण विवेचन किए बिना ही निम्नलिखित कारणों से उन्हें अतिरिक्त, अविश्वसनीय और अवास्तविक कहकर नकार दिया—

- सभी राजवंशों का अन्त लगभग समान रूप से हुआ है।
- एक ही राजा के अलग-अलग पुराणों में नाम अलग-अलग हैं।
- राजाओं की आयु और राजवंशों की राज्यावधि बहुत अधिक दिखाई गई है।

**सभी राजवंशों का अन्त लगभग समान रूप में हुआ है—** महाभारत

के बाद मगध के प्रथम राजवंश बार्हद्रथ के पुत्रविहीन अन्तिम नरेश रिपुंजय, जो 50 वर्ष तक अशक्त रहकर राज्य चलाता रहा था, को उसके मंत्री ने मारकर राजगद्दी अपने पुत्र को दे दी। दूसरे राजवंश प्रद्योत के अन्तिम राजा नन्दिवर्धन को काशीनरेश शिशुनाग ने मारकर गद्दी हथिया ली। नन्दवंश के अन्तिम राजा को चाणक्य ने मरवाकर चन्द्रगुप्त मौर्य को गद्दी दिला दी। मौर्य वंश के अन्तिम सम्राट् बृहद्रथ, जो 87 वर्ष तक राज्य करते रहने के कारण अत्यन्त अशक्त, दुर्बल और अकुशल हो चुका था, को उसके सेनापति पुष्यमित्र ने मारकर गद्दी पर अधिकार कर लिया। पुष्यमित्र के वंश के श्रीविहीन अन्तिम राजा देवभूति को उसके मंत्री ने मारकर कण्व वंश का शासन स्थापित किया। इस वंश के अन्तिम राजा सुशर्मा को उसके सेवक श्रीमुख ने मारकर राज्य संभाल लिया। आन्ध्र वंश के अन्तिम राजा चन्द्रश्री को और बाद में उसके पुत्र को मारकर आन्ध्रभृत्य वंश अर्थात् गुप्तवंश के चन्द्रगुप्त प्रथम ने सत्ता संभाल ली। इसमें सन्देह नहीं कि उक्त सभी राजवंशों का अन्त अन्तिम राजा को मारकर ही किया गया है किन्तु इसका अर्थ यह तो नहीं हो सकता कि ये सब वृत्त झूठे हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि एक-दो को छोड़कर अधिकांश राजाओं की मृत्यु का कारण उनकी दुर्बलता और निष्क्रियता रहा है, जो कि राजाओं के लिए विनाशकारी ही होती है।

#### एक ही राजा के नाम अलग-अलग पुराणों में अलग-अलग हैं—

भारत के प्राचीन राजवंशों के कई राजाओं के नाम अलग-अलग पुराणों में अलग-अलग मिलते हैं। इससे सन्देह होता है सही नाम कौन-सा है और वह व्यक्ति हुआ भी है या नहीं। नामों में अन्तर कई कारणों से हुआ है, यथा—

1. भिन्न-भिन्न पुराणों की प्रतिलिपियाँ तैयार करते समय अनजाने में ही नामों के अक्षर आगे-पीछे हो गए हैं या कहीं-कहीं ग्रन्थ की प्रति अधिक प्राचीन होने से लिखावट पढ़ पाने में कठिनाई के कारण अथवा कहीं-कहीं ध्वनि-साम्य के कारण भी नामों के अक्षरों में अन्तर आ गया है, जैसे—**बृहद्रथ-वंश—** सोमाधि और सोमापि, अयुतायु और अयुनायु, सुक्षत और सुक्षत्र, सुनेत्र और धर्मनेत्र आदि।

**प्रद्योत-वंश—** सूर्यक और सुबक या अजक या जनक आदि।

**शिशुनाग-वंश—** बिम्बिसार और विधिसार, दर्भक और दर्शक, उदयन और उदायी आदि।

2. कहीं-कहीं स्मृति-भेद के कारण भी नाम अलग-अलग हो गए हैं, जैसे—  
**बार्हद्रथ वंश**— द्रुहसेन का द्रुदसेन या दृढसेन, सेनजित का सेनाजित।  
**शिशुनाग वंश**— उदयन का उदयाश्व या उदायी।  
**मौर्यवंश**— कुणाल का सुपाश्वर।
3. लिखते समय भी कई नाम पुराणों में छूट गए हैं, जैसे—  
**बार्हद्रथ-वंश**— *मत्स्यपुराण* में इस वंश के 19 राजाओं के नाम और उनका राज्यकाल 835 वर्ष का दिया है जबकि अन्य कुछ पुराणों में 22 राजाओं का राज्यकाल 1006 वर्ष का दिया गया है।  
**प्रद्योत-वंश**— मुद्रित *मत्स्यपुराण* में इस वंश के राजाओं का राज्यकाल 125 वर्ष दिया है जबकि इस वंश के राजाओं का राज्यकाल 138 वर्ष माना गया है।  
**मौर्यवंश**— पार्जीटर के *मत्स्यपुराण* और मुद्रित *वायुपुराण* में मौर्यवंश के राजाओं की संख्या क्रमशः 6 और 9 दी गई है। इनमें इस वंश का राज्यकाल भी क्रमशः 139 और 133 दिया गया है। ये दोनों ही संख्याएँ अन्य पुराणों में दी गई संख्या से मेल नहीं खातीं। इनमें दशरथ, सम्प्रति और शालिशूक के नाम लिखने से रह गए हैं।
4. नामों के अन्तर का एक कारण विभिन्न पुराणों का वर्णन कविता में होना भी है। कविता में छन्द, अलंकार, शब्द, मात्रा, वर्णादि के बन्धनों के कारण व्यक्तियों तथा स्थानों के नाम के खण्डों की मात्राओं और अक्षरों को आगे-पीछे कर दिया गया है और कहीं-कहीं समानार्थक शब्दों का प्रयोग भी कर दिया गया है, यथा— महाबल और महाबाहु, रिपुंजय और शत्रुंजय आदि।

**राजाओं की आयु और राजवंशों की राज्यावधि बहुत अधिक दिखाई गई है**— इस सन्दर्भ में सबसे मुख्य बात तो यह है कि उस समय सामान्य लोगों की आयु भी अधिक होती थी। फिर राजाओं की, जिन्हें सब प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त थीं, अधिक आयु होना अस्वाभाविक नहीं था। वैसे जितना ज्यादा शोर आयु और शासनकाल की अधिकता का मचाया गया है उतना है कुछ नहीं। बार्हद्रथ वंश से आन्ध्रवंश तक 8 वंशों के 97 राजाओं की कुल राज्यावधि 2,811 वर्ष के हिसाब से प्रति राजा के शासन की औसत 29 वर्ष बनती है। इनमें से 50

या अधिक वर्षों तक राज्य करनेवाले केवल 17 राजा हुए हैं, जिनमें से 10 तो अकेले बार्हद्रथ वंश के ही हैं। इस स्थिति में यह औसत ठीक ही है। यह भी उल्लेखनीय है कि बार्हद्रथ और शुंग वंशों के राजाओं को छोड़कर अन्य वंशों में जिन राजाओं की आयु अधिक रही है, उनसे पहले और बादवाले राजा की आयु कम रही है। स्पष्ट है कि पहलेवाला राजा जल्दी मर गया और उसके कम आयुवाले पुत्र को गद्दी जल्दी मिल गई और वह ज्यादा समय तक राज्य करता रहा तो उसके पुत्र को शासन करने के लिए कम समय मिला। इंग्लैण्ड में विक्टोरिया को गद्दी छोटी आयु में मिल जाने से और अधिक वर्षों तक जीवित रहने के कारण उसके पुत्र एडवर्ड अष्टम को राज्य करने के लिए केवल 7-8 वर्ष ही मिले थे।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि राजाओं की आयु और शासनावधि की अधिकता के सन्दर्भ में ऐसा कुछ नहीं है कि पूरी-की-पूरी सूचियों को अतिरंजित, अस्वाभाविक और अप्रामाणिक करार दे दिया जाए।

### सिकन्दर का भारत पर आक्रमण 327 ईउपूड में हुआ और सेंद्रोकोटस (चन्द्रगुप्त मौर्य) 320 ईउपूड में

#### भारत का सम्राट् बना

भारत के इतिहास को आधुनिक रूप में लिखने की दृष्टि से कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने यद्यपि आवश्यक सामग्री जुटाने के लिए पहले भारतीय-ग्रन्थों की ओर ध्यान दिया तो अवश्य, किन्तु लक्ष्य भिन्न होने से वे ग्रन्थ उन्हें अपनी योजना में सहायक प्रतीत नहीं हुए। अतः उन्होंने भारत के सन्दर्भ में विदेशियों द्वारा लिखे गए ऐसे साहित्य पर निगाह डालनी प्रारम्भ की जो उनके उद्देश्य की पूर्ति में सहयोग दे सके। इस प्रयास में उन्हें यूनानी-साहित्य में कुछ ऐसे तथ्य मिल गए जो उनके लिए उपयोगी हो सकते थे किन्तु वे तथ्य अपूर्ण, अस्पष्ट और अप्रामाणिक थे। अतः पहले तो उन्होंने सारा जोर उन्हें पूर्ण रूप से सत्य, स्पष्ट और प्रामाणिक सिद्ध करने में लगाया। अपनी बातों को युक्तिसंगत बनाने के लिए उन्हें कई प्रकार की नयी-नयी कल्पित कथाएँ बनानी पड़ीं। यह कल्पना भी उन्होंने में से एक है।

पाश्चात्य इतिहासकारों की इस कल्पना की पुष्टि न तो पुराणों सहित भारतीय-साहित्य या अन्य स्रोतों से ही होती है और न ही यूनानी-साहित्य को छोड़कर भारतेतर देशों के साहित्य या अन्य स्रोतों से। स्वयं यूनानी-साहित्य में भी

ऐसे अनेक समसामयिक उल्लेखों का, जो कि होने ही चाहिए थे, अभाव है, जिनसे आक्रमण की पुष्टि हो सकती थी। यूनानी-विवरणों के अनुसार ईसा की चौथी शताब्दी में यूनान का राजा सिकन्दर विश्व-विजय की आकांक्षा से एक बड़ी फौज लेकर यूनान से निकला और ईरान आदि को जीतता हुआ भारत के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र के पास आ पहुँचा। यहाँ उसने छोटी-छोटी जातियों और राज्यों पर विजय पायी। इन विजयों से प्रोत्साहित होकर वह भारत की ओर बढ़ा, जहाँ उसकी पहली मुठभेड़ झेलम और चिनाब के बीच के छोटे-से प्रदेश के शासक पुरु से हुई। उसमें यद्यपि वह जीत गया तथापि विजय पाने के लिए उसे जो कुछ करना पड़ा, उससे तथा अपने सैनिकों के विद्रोह के कारण उसका साहस टूट गया और उसे विश्व-विजय के अपने स्वप्न को छोड़कर स्वदेश वापस लौट जाना पड़ा।

यूनानी-इतिहासकारों ने इस घटना को जहाँ बहुत बढ़ा-चढ़ाकर चित्रित किया है, वहीं भारत के इतिहास को आधुनिक रूप में लिखनेवाले पाश्चात्य इतिहासकारों द्वारा भी इसे इतना महत्वपूर्ण मान लिया गया कि इसके आधार पर 327 ई पू में सिकन्दर के आक्रमण के समय सेंड्रोकोटस के रूप में चन्द्रगुप्त मौर्य को जीवित मानकर आक्रमण के पश्चात् 320 ई पू को उसके राज्यारोहण की तिथि घोषित करके उसके भारत-सम्राट् बनने की भी बात कर दी। यही नहीं, इस तिथि के आधार पर भारत के सम्पूर्ण प्राचीन इतिहास के तिथिक्रम की भी कल्पना कर डाली किन्तु यह युद्ध हुआ भी है या नहीं, इस विषय में विभिन्न विद्वानों के मत अलग-अलग हैं। यदि यह युद्ध हुआ ही नहीं तो 320 ई पू में चन्द्रगुप्त मौर्य का भारत-सम्राट् बनना कैसे संभव हो सकता है ?

इस आक्रमण की स्थिति भारत तथा भारतेतर देशों के साक्ष्यों से इस प्रकार बनती है—

### (अ) भारतीय साक्ष्य

**ऐतिहासिक—** भारत के इतिहास का जो ब्योरा विभिन्न पुराणों तथा संस्कृत और अन्य भारतीय-भाषाओं के अनेक ग्रन्थों में दिया हुआ है, उसमें इस आक्रमण का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। अतः भारत के इतिहास की दृष्टि से इसे प्रामाणिक मानना कठिन है।

**साहित्यिक—** भारत की तत्कालीन साहित्यिक रचनाएँ, यथा— वररुचि की कविताएँ, ययाति की कथाएँ, यवकृति पियंगु, सुमनोत्तरा, वासवदत्ता आदि

इस विषय पर मौन हैं। अतः इस प्रश्न पर वे भी प्रकाश डालने में असमर्थ हैं। यही नहीं, पुरु नाम के किसी राजा का भारतीय-साहित्य की किसी भी प्राचीन रचना में कोई भी उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता और मेगस्थनीज का तो दूर-दूर तक पता नहीं है। हाँ, हिंदी तथा कुछ अन्य भारतीय-भाषाओं के कतिपय अर्वाचीन नाटकों में अवश्य ही इस घटना का चित्रण मिलता है।

**साहित्येतर ग्रन्थ—** साहित्यिक ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य विभिन्न विषयों, यथा— आयुर्वेद, ज्योतिष, राजनीति, समाजनीति आदि के ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख नहीं मिलता। चाणक्य का अर्थशास्त्र, पतञ्जलि का व्याकरण महाभाष्य आदि ग्रन्थ भी इस विषय पर मौन हैं। जबकि इन ग्रन्थों में भारतीय-इतिहास के अनेक सुनहले/काले पन्नों का उल्लेख यत्र-तत्र मिल जाता है। सम्भव है यह कोई छोटी-मोटी मुठभेड़ रही हो जिसका उल्लेख करना भारतीय-विद्वानों ने आवश्यक न समझा हो।

### (आ) भारतेतर देशों के साक्ष्य

#### साहित्यिक

**पड़ोसी देशों का साहित्य—** उस समय के भारतवर्ष के वाङ्मय में ही नहीं, तत्कालीन त्रिविष्टप (तिब्बत), सीलोन (श्रीलंका) तथा नेपाली-ग्रन्थों में भी भारत पर सिकन्दर के आक्रमण के बारे में ही नहीं स्वयं तथाकथित विश्वविजय के आकांक्षी सिकन्दर के बारे में भी कोई उल्लेख नहीं मिलता।

**अरबी-साहित्य—** सन् 1030 ई के आसपास भारत आए प्रसिद्ध अरबी विद्वान् अल्-बीरूनी ने भारत के बारे में *'किताब तारीख-अल्-हिंद'*<sup>1</sup> में बहुत कुछ लिखा है। इसके अंग्रेज़ी-अनुवाद में एक जगह पर लिखा है—

'....between the time of Yudhishtira and the present year, i.e. the year 1340 of Alexander, there is an interval of 3479 years.'<sup>2</sup>

अर्थात्, सिकन्दर का काल 1340 — 952 = 388 वर्ष शक-काल से पूर्व अर्थात् 310 ई पू हुआ था। अल्-बीरूनी ने सिकन्दर के आक्रमण के सन्दर्भ में वर्ष का

1. Alberuni's India : An Account of the Religion, Philosophy, Literature, Geography, Chronology, Astronomy, Customs, Laws and Astrology of India, Translated into English by Prof. (Dr.) Edward C. Sachau, London, 1888

2. Ibid, XLV, p.391

इतना स्पष्ट उल्लेख किया है, जिसे नकारना कठिन है। लेकिन आधुनिक इतिहास में सिकन्दर के आक्रमण की तिथि 327 ई. पू. मानी गई है। दोनों तिथियों में अन्तर स्पष्ट है। इसमें कौन-सी तिथि सही है, कह पाना कठिन है, क्योंकि इस संबंध में भारतीय-स्रोत मौन हैं।

### यूनानी-साहित्य

विभिन्न यूनानी-ग्रन्थों में उपलब्ध मेगास्थनीज के कथनों के अंशों में तथा टॉल्मी, प्लिनी, प्लूटार्क, एरियन आदि विभिन्न यूनानी-लेखकों की रचनाओं में सिकन्दर के आक्रमण के बारे में विविध उल्लेख मिलते हैं। इन्हीं में 'सेंट्रोकोट्टस' का वर्णन भी मिलता है किन्तु वह चन्द्रगुप्त मौर्य है, इस संबंध में किसी भी ग्रन्थ में कोई उल्लेख नहीं हुआ है। यह तो भारतीय-इतिहास के अंग्रेज़ लेखकों की कल्पना है। यदि वास्तव में ही सेंट्रोकोट्टस चन्द्रगुप्त मौर्य होता और उसके समय में ही यूनानी-साहित्य लिखा गया होता तो उसमें अन्य अनेक समसामयिक तथ्य भी होने चाहिए थे, जो कि उसमें नहीं हैं। इससे चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में आक्रमण हुआ था, इस पर प्रश्नचिह्न लग जाता है। इस दृष्टि से निम्नलिखित तथ्य विचारणीय हैं-

**नन्द का कोई उल्लेख नहीं—** सिकन्दर के आक्रमण के समय भारत-सम्राट् के पद पर महापद्मनन्द का नाम लिया जाता है किन्तु उस नन्द के बारे में यूनानी-साहित्य में कुछ भी लिखा हुआ नहीं मिलता। सभी लेखकों की रचनाएँ इस विषय पर मौन हैं।

'जैन्ड्रमस' (Xandrammes) का उल्लेख अवश्य मिलता है किन्तु इस शब्द का नन्द से न तो ध्वनि-साम्य है और न ही किसी और प्रकार से समानता है।

इस संबंध में यह भी उल्लेखनीय है कि भले ही विलियम जोन्स आदि ने यह माना हो कि सिकन्दर के आक्रमण के समय मगध की गद्दी पर नन्द बैठा हुआ था, किन्तु सर हेनरी मायर्स इलियट (1808-1853) के अनुसार सिकन्दर के हमले के समय 'हल' नाम का राजा गद्दी पर था।<sup>1</sup> भारतीय-पौराणिक तिथिक्रम के अनुसार हल का राज्यकाल लगभग 490 ई. पू. में बैठता है। अतः इस संबंध में

निश्चय से नहीं कहा जा सकता कि सिकन्दर का हमला कब हुआ था ?

ट्टी एसु नारायण शास्त्री का सिकन्दर के आक्रमण के संबंध में कहना है कि यद्यपि स्मिथ और उनके अन्य प्रशंसकों ने सिकन्दर के झेलम तक आने का उल्लेख किया है किन्तु वह वास्तव में तक्षशिला से आगे भारत में कभी आया ही नहीं। वहीं उसके सिपाहियों ने रोना-धोना शुरू कर दिया था। अतः उसके सतलुज तक आने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता।<sup>1</sup>

**बौद्ध और जैन धर्म का कोई उल्लेख नहीं—** चन्द्रगुप्त मौर्य के समय भारत में जैन और बौद्ध धर्म का प्रचलन खूब हो गया था। अनेक रचनाओं में ऐसा उल्लेख मिलता है कि बाद में चन्द्रगुप्त मौर्य और बिन्दुसार ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया था और चन्द्रगुप्त के पौत्र अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए बहुत कुछ किया था, लेकिन यूनानी-इतिहासकार इनके संबंध में एकदम मौन हैं। ब्रिटिश प्राच्यविद् हेनरी थॉमस कोलब्रुक (1765-1837) ने अपनी कृति में इस संबंध में विशेष संकेत किया है।

**चाणक्य का कोई उल्लेख नहीं—** भारतीय-स्रोतों के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य को राजगद्दी अपने गुरु चाणक्य के प्रयत्नों के फलस्वरूप मिली थी। वह चन्द्रगुप्त मौर्य का गुरु, महामंत्री और देश की राजनीति की धुरी था लेकिन तत्कालीन यूनानी-साहित्य में, जिसके कुछ शब्दों को प्रामाणिक मानकर भारत के प्राचीन इतिहास को आधुनिक ढंग से लिखने के लिए तिथिक्रम तैयार किया गया, चाणक्य का कहीं भी, किसी भी प्रकार का और कोई भी उल्लेख नहीं मिलता।

उक्त समसामयिक तथ्यों का यूनानी-साहित्य में उल्लेख न होने से यह सन्देह होता है कि क्या ये वर्णन चन्द्रगुप्त मौर्य से संबंधित हैं ? यदि सेंट्रोकोट्टस चन्द्रगुप्त मौर्य था तो चन्द्रगुप्त मौर्य से संबंधित इन महत्वपूर्ण तथ्यों का उल्लेख यूनानी-साहित्य में क्यों नहीं किया गया ? फिर यही नहीं, यूनानी-साहित्य में कुछ ऐसी बातों का उल्लेख भी मिलता है, जिनका चन्द्रगुप्त मौर्य तथा मगध से स्पष्ट रूप से कोई संबंध नहीं लगता, यथा—

**पुरु सेंट्रोकोट्टस से बड़ा राजा—** मेगास्थनीज ने यह भी लिखा है कि पुरु सेंट्रोकोट्टस से बड़ा राजा है। यह बात भी साधारणतः बुद्धिगम्य नहीं हो

1. *The History of India, as Told by Its Own Historians*, Vol. I, p.108-109

1. *The Age of Sankara*, 1917, p. 96-97



पाती कि उस समय कोई राजा भारत-सम्राट् से भी बड़ा हो सकता है।,

**सर्वत्र प्रस्सी राज्य का उल्लेख—** भारत पर सिकन्दर का आक्रमण 327 ई पू से 323 ई पू तक हुआ था और सिकन्दर के आक्रमण के पश्चात् भारत में प्रस्सी के राजा के रूप में जिस राजा का राजतिलक हुआ था, उसका नाम सेंड्रोकोट्टस था। मेगस्थनीज ने अपने संस्मरणों में मगध का उल्लेख न करके हर जगह प्रस्सी राज्य का ही उल्लेख किया है। जहाँ तक भारतीय-साहित्य की विभिन्न रचनाओं का प्रश्न है, उनमें इस शब्द का कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता।

**सेंड्रोकोट्टस यदि चन्द्रगुप्त है तो अन्य नाम किसके हैं ?—** यूनानी-साहित्य में सेंड्रोकोट्टस (Sandrocottas) के अतिरिक्त जेन्द्रमस (Xandrammes) एग्रामस (Agrammes), एण्ड्रोकोट्टस (Androcottas), एमिट्रोचेड्स, सेण्ड्रोसाइपटस—जैसे कई नामों का भी उल्लेख किया गया है। पाश्चात्य लेखकों ने भारत का आधुनिक रूप में इतिहास लिखते समय विलियम जोन्स का अनुसरण करते हुए सेण्ड्रोकोट्टस को तो चन्द्रगुप्त मौर्य मान लिया गया, किन्तु यह स्पष्ट करने का प्रयास किसी ने भी नहीं किया कि बाकी सब ये भारतीय-इतिहास के तत्कालीन महानुभावों में भी कौन-कौन हैं ? यदि सेण्ड्रोकोट्टस और चन्द्रगुप्त मौर्य में कुछ समानता मान भी ली जाए, तो बाकी में तो बिलकुल भी नहीं है।

इस प्रकार न तो भारतीय-साक्ष्य और न ही यूनानी-साहित्य सहित अन्य भारतेतर देशों के साक्ष्य यह सिद्ध करने में समर्थ हैं कि विश्व-विजय के स्वप्नद्रष्टा सिकन्दर ने चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में भारत पर आक्रमण किया था और सेंड्रोकोट्टस चन्द्रगुप्त मौर्य था, विशेषकर इसलिए कि भारतीय-पौराणिक आधार पर चन्द्रगुप्त मौर्य 320 ई पू से काफी समय पूर्व अर्थात् 1534 ई पू में मगध की गद्दी पर बैठा था और वही भारत का सम्राट् बना था। दूसरे शब्दों में किसी भी आधार पर न तो सिकन्दर के 327 ई पू में हुए आक्रमण की और न ही चन्द्रगुप्त मौर्य के 320 ई पू में भारत का सम्राट् बनने की बात की पुष्टि होती है। अतः यह भी मात्र एक भ्रान्त धारणा ही सिद्ध होती है। अतः, भारत के इतिहास को विकृत करने में इसका बहुत बड़ा हाथ है।

### **यूनानी-साहित्य में वर्णित सेंड्रोकोट्टस ही चन्द्रगुप्त मौर्य**

यूनानी-साहित्य में बताया गया है कि सिकन्दर के भारत पर आक्रमण के समय

यहाँ 'सेंड्रोकोट्टस' नाम का एक बहुत वीर, योग्य और कुशल व्यक्ति था, जो सिकन्दर के भारत से चले जाने के बाद 320 ई पू में प्रस्सी की गद्दी पर बैठा था और भारत का सम्राट् बना था। जोन्स ने उसे ही चन्द्रगुप्त मौर्य मानकर 28 फरवरी, 1793 को सगर्व यह घोषणा कर डाली कि 'उसने चन्द्रगुप्त मौर्य के रूप में सेंड्रोकोट्टस को पाकर भारत के इतिहास की सबसे बड़ी, सबसे महत्वपूर्ण और सबसे कठिन समस्या का निदान पा लिया।'

इस प्रश्न पर कि क्या सेंड्रोकोट्टस ही चन्द्रगुप्त मौर्य है, गहराई में जाकर विचार करने के लिए यह जान लेना उचित होगा कि सेंड्रोकोट्टस के संबंध में प्राचीन यूनानी-साहित्य में जो कुछ लिखा मिलता है, क्या वह सब चन्द्रगुप्त मौर्य पर घटता है ? यूनानी-साहित्य में सेंड्रोकोट्टस के सन्दर्भ में मुख्य रूप से निम्नलिखित बातें लिखी हुई मिलती हैं—

1. सेंड्रोकोट्टस 6 लाख सेना लेकर सारे भारत में घूमा था और अनेक राजाओं को अपने अधीन किया था।
2. सेंड्रोकोट्टस ने मगध के पहले सम्राट् को मारकर साम्राज्य प्राप्त किया था।
3. सेल्युकस ने युद्ध में हारने के पश्चात् अपनी पुत्री का विवाह सेंड्रोकोट्टस से किया था।
4. जिस क्षेत्र में पालीबोथ्रा स्थित है, वह भारत में बड़ा प्रसिद्ध था। वहाँ के राजा अपने नाम के साथ 'पालीबोथ्री' उपनाम अवश्य लगाते थे।

उक्त बातों को भारतीय-स्रोतों, यथा— पुराणादि में चन्द्रगुप्त मौर्य के सन्दर्भ में आए उल्लेखों से मिलान करने पर पाते हैं कि उसके संबंध में ये बातें तथ्य से परे हैं, क्योंकि—

1. चन्द्रगुप्त मौर्य को भारत में इतने विशाल सैनिक-अभियान करने की आवश्यकता हुई ही नहीं।
2. यूनानी-लेखकों की इस स्थापना की पुष्टि में किसी भी अन्य स्रोत से कोई भी ऐतिहासिक साक्ष्य नहीं मिलता। ऐसा लगता है कि यह यूनानी-लेखकों की अपनी ही कल्पना है। कारण मगध के सम्राट् नन्द को तो चाणक्य ने अपनी प्रतिज्ञा की पूर्ति हेतु मरवाया था।
3. चन्द्रगुप्त मौर्य का विवाह किसी यूनानी लड़की से हुआ था, इसका उल्लेख

भी किसी भारतीय-स्रोत में नहीं मिलता। पुं भगवद्गुप्त ने भी अपनी पुस्तक 'भारतवर्ष का बृहत् इतिहास' में माना है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के विदेशी लड़की के साथ विवाह का कोई भी ऐतिहासिक आधार उपलब्ध नहीं है।

विदेशी कन्या के साथ चन्द्रगुप्त मौर्य के विवाह के संबंध में यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि सिकन्दर का आक्रमण 327 ई. पू. में हुआ था और उस समय चन्द्रगुप्त ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया था। यदि उस समय चन्द्रगुप्त 24-25 वर्ष का भी रहा होगा तो 320 ई. पू. में गद्दी पर बैठने के समय वह 31-32 वर्ष का अवश्य हो गया होगा। सिकन्दर के आक्रमण के 25 वर्ष बाद सेल्युकस ने भारत पर आक्रमण किया था। युद्ध में हारने के पश्चात् यदि उसने अपनी पुत्री की शादी चन्द्रगुप्त से की होगी तो उस समय चन्द्रगुप्त की आयु 57-58 वर्ष की अवश्य रही होगी। सामान्य: यह आयु नये विवाह करने की नहीं होती। इसके लिए कुछ विद्वानों का यह कहना है कि राजनीतिक विवाह में आयु का प्रश्न नहीं होता।

दूसरी ओर कुछ नाटकों आदि में चन्द्रगुप्त मौर्य और सेल्युकस की पुत्री हेलन या कार्नेलिया की सिकन्दर के आक्रमण के समय यूनानी-शिविर में प्रणय-चर्चा का उल्लेख किया गया है किन्तु क्या यहाँ से जाने के 25 वर्ष बाद तक वह चन्द्रगुप्त के लिए प्रेम संजोए अविवाहित बैठी रही होगी ? यह बात असम्भव न होते हुए भी जमती नहीं।

इस सन्दर्भ में प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. रमेशचन्द्र मजूमदार के ये शब्द भी उल्लेखनीय हैं— 'चन्द्रगुप्त और सेल्युकस की लड़ाई का विस्तृत वर्णन यवन-लेखकों ने नहीं किया है। फलतः कुछ लोगों ने तो यह भी सन्देह प्रकट किया है कि उन दोनों में कोई युद्ध हुआ भी था?' यदि युद्ध हुआ ही नहीं तो सेल्युकस की लड़की से विवाह का प्रश्न ही नहीं उठता।

4. यूनानी-साहित्य में सेंड्रोकोटस के संबंध में यह भी लिखा मिलता है कि जिस क्षेत्र में 'पालीबोथ्रा' स्थित है, वह भारतभर में बड़ा प्रसिद्ध है और वहाँ के राजा अपने नाम के साथ 'पालीबोथ्री' उपनाम भी लगाते थे। उदाहरण के लिए जैसे सेंड्रोकोटस ने किया था। इस संबंध में यह उल्लेखनीय है कि

चन्द्रगुप्त मौर्य ने 'मौर्य' तो अपने पारिवारिक नाम के रूप में लगाया था, उपनाम के रूप में नहीं।

ऐतिहासिक दृष्टि से विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि उक्त बातों का मौर्य वंश के पश्चात् मगध-साम्राज्य पर शासन करनेवाले चौथे राजवंश 'गुप्त वंश' के राजाओं के साथ कुछ-कुछ मेल हो जाता है। जैसे, जहाँ तक बड़ी सेना लेकर भारत-विजय करने और विदेशी राजा की पुत्री से विवाह करने की बात है, तो यह दोनों बातें गुप्त राजवंश के दूसरे राजा समुद्रगुप्त से मेल खाती हैं। समुद्रगुप्त ने विशाल सेना के बल पर भारत विजय करके अश्वमेध-यज्ञ किया था। उसके संबंध में हरिषेण द्वारा इलाहाबाद में स्थापित स्तम्भ पर खुदवाए विवरण से उसकी विजय आदि के अलावा यह भी ज्ञात होता है कि पश्चिमोत्तर क्षेत्र में युद्ध-विजय के पश्चात् उसे किसी विदेशी राजा ने अपनी कन्या उपहार में दी थी।

जहाँ तक मगध के सम्राट् को मारकर राज्य हथियाने की बात है तो यह बात तो गुप्त वंश के प्रथम पुरुष 'चन्द्रगुप्त' से मेल खाती है। उसने ही आन्ध्र-वंश के अन्तिम राजा चन्द्रश्री या चन्द्रमस को और बाद में उसके पुत्र को मारकर गद्दी हथियाई थी।

नाम के साथ उपनाम जोड़ने की जहाँ तक बात है तो यह प्रथा भी गुप्त वंश के राजाओं में थी, जैसे—

क्र. सं.	राजा का नाम	उपनाम
1.	चन्द्रगुप्त प्रथम	विजयादित्य
2.	समुद्रगुप्त	अशोकादित्य
3.	चन्द्रगुप्त द्वितीय	विक्रमादित्य
4.	कुमारगुप्त प्रथम	महेन्द्रादित्य इत्यादि

उक्त सूची से स्पष्ट हो जाता है कि इस वंश के हर राजा ने अपने नाम के साथ उपनाम 'आदित्य' जोड़ा है। गुप्त वंश के राजा सूर्यवंशी थे। उनमें सूर्य के लिए 'आदित्य' शब्द उपनाम में जोड़ने की परम्परा थी अर्थात् नाम के साथ उपनाम जोड़ने की बात भी चन्द्रगुप्त मौर्य के साथ मेल नहीं खाती।

स्पष्ट है कि सेंड्रोकोटस चन्द्रगुप्त मौर्य नहीं है, जिसे जोन्स ने जबरदस्ती बनाया है।

## पालीबोथ्रा ही पाटलिपुत्र

यूनानी-साहित्य के अनुसार पालीबोथ्रा चन्द्रगुप्त मौर्य की राजधानी पाटलिपुत्र ही था। इस पर भी भारतीय दृष्टिकोण से विचार किया जाना आवश्यक है किन्तु पहले यह जान लेना उचित होगा कि पालीबोथ्रा को पाटलिपुत्र मानने की दृष्टि से मेगस्थनीज तथा अन्य यूनानी-लेखकों की विभिन्न रचनाओं में क्या-क्या कहा गया है—

1. ...परन्तु प्रस्सई शक्ति में बढ़े-चढ़े हैं। उनकी राजधानी पालीबोथ्रा ही है। यह बहुत बड़ा और धनी नगर है। इस नगर के कारण अनेक लोग इस प्रदेश के निवासियों को पालीबोथ्री कहते हैं। यही नहीं, गंगा के साथ-साथ का सारा भू-भाग इसी नाम से पुकारा जाता है।
2. वह (हरकुलिश-सरकुलेश-विष्णु) अनेक नगरों का निर्माता था। उनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध पालीबोथ्रा था।
3. जोमेनस (यमुना) नदी पालीबोथ्रा (पाटलिपुत्र) में से होकर बहती हुई मथुरा (मथुरा) और करिसोबोरा के मध्य में गंगा से मिलती है। कई लेखकों ने करिसोबोरा (Corisbora) को क्राइसोबन (Chrysobon), करिसोबोरा (Carisoborca) या क्लाइसोबोरस (Cleisoboras) भी लिखा है। अलेक्जेंडर कनिंघम (1814-1893) के अनुसार यह वृन्दावन होगा, जिसका दूसरा नाम कालिकावर्त था। हेनरी यूल (1820-1889) इसे बटेश्वर, और लैसन आगरा मानते हैं, जिसका नामान्तरण वे कृष्णपुर कर देते हैं, जिससे 'कारिसोबोरा' बना होगा। विल्किंस के अनुसार मुसलमान अब इसे मुगुनगर और हिंदू कलिसपुर कहते हैं।
4. परन्तु एक पथ भी है, जो पालीबोथ्रा में से होकर भारत को जाता है।
5. प्रस्सी राज्य की सीमा सिन्धु पुलिंद तक है।
6. पालीबोथ्रा गंगा-यमुना के संगम से 425 मील है और समुद्र में गंगा के गिरने के स्थान से 738 मील है।
7. पालीबोथ्रा गंगा और इरेत्रोबोस के संगम पर स्थित है। यह नगर 80 स्टेडियम (14.8 किलोमीटर) लम्बा और 15 स्टेडियम (2.775 किमी) चौड़ा है और काठ की दीवार से घिरा हुआ है। तीर छोड़ने के लिए दीवारों में छिद्र

बने हुए हैं।

यूनानियों द्वारा कथित उक्त आधारों पर विचार करने के उपरान्त इनमें से किसी आधार पर भी यह नहीं माना जा सकता कि पालीबोथ्रा पाटलिपुत्र था, क्योंकि—

1. यूनानियों द्वारा उल्लिखित पालीबोथ्रा को प्रस्सी राज्य की राजधानी बताया गया था, भारतवर्ष की या मगध राज्य की राजधानी नहीं। जहाँ तक पालीबोथ्रा के आसपास के गंगा क्षेत्र के 'पालीबोथ्री' कहलाने और वहाँ के निवासियों के अपने नाम के साथ 'पालीबोथ्री' जोड़ने की बात है, पाटलिपुत्र के साथ मिलान करने पर दोनों ही बातें मेल नहीं खाती क्योंकि वह सारा क्षेत्र मगध कहलाता था और सामान्यतः वहाँ का कोई भी व्यक्ति अपने नाम के साथ अपने देश के नाम के अनुसार 'मागधी' नहीं लगाता था।
2. यूनानियों का पालीबोथ्रा नगर हरकुलिश-विष्णु का बसाया हुआ था। जबकि पाटलिपुत्र नगर सम्राट् बिम्बिसार के पुत्र अजातशत्रु द्वारा सैनिक-दृष्टि से बसाया गया था। यह ठीक है कि कुछ स्थानों पर इस नगर के किसी अन्य व्यक्ति द्वारा बसाए जाने का उल्लेख भी मिलता है लेकिन अधिकतर विद्वान् इसे अजातशत्रु द्वारा ही बसाया ही मानते हैं।
3. यमुना नदी पालीबोथ्रा से होकर बहती थी और उसके एक ओर मथुरा तथा दूसरी ओर करिसोबोरा था किन्तु पाटलिपुत्र के आसपास तो क्या मीलों दूर तक यमुना नदी का न तो पहले ही पता था और न ही अब है। जहाँ तक करिसोबोरा की खींचतान का प्रश्न है, वह लेखकों की कल्पना मात्र है।
4. यूनानियों की कल्पना का भारत पालीबोथ्रा के आगे था क्योंकि उनके अनुसार पालीबोथ्रा में से होकर एक पथ भारत को जाता था। यदि ऐसा ही था तो क्या यूनानियों की दृष्टि में पाटलिपुत्र के पश्चिम में फैला इतना बड़ा भू-भाग, भारत नहीं था? लेकिन ऐसा नहीं था क्योंकि विभिन्न यूनानी-लेखकों ने अपनी रचनाओं में भारत की जो लम्बाई-चौड़ाई बताई है, वह पूरे भारत की माप है।
5. 'सिंधु पुलिन्द' को प्रस्सी राज्य की सीमा पर बताया गया है। यदि पाटलिपुत्र से इसका संबंध जोड़ा जाए तो बिहार में कौन-सा सिन्धु पुलिन्द था? यह बात एकदम असम्भव लगती है। महाभारत के अनुसार तो सिन्धु-पुलिन्दक

उस समय अलग राज्य थे जो सम्भवतः भारत के मध्य क्षेत्र में थे—

**‘वेदिमत्स्यकरूपाश्च भोजाः सिन्धुपुलिन्दकाः’**

6. पालीबोथ्रा को पाटलिपुत्र मान लेने पर न तो वहाँ से गंगा-यमुना का संगम 425 मील ही बनता है और न ही समुद्र तट से पाटलिपुत्र 738 मील ही बनता है। समुद्र से पाटलिपुत्र की दूरी तभी निश्चित की जा सकती है, जब पालीबोथ्रा का स्थान निश्चित हो जाए। जबतक यह अनिश्चित है, तबतक पक्के तौर पर इस संबंध में कुछ कह पाना कठिन ही है।
7. मेगस्थनीज के अनुसार पालीबोथ्रा गंगा और इरेन्नोबोस (Errannoboas—हिरण्यबाहु) के संगम पर बसा हुआ है, जबकि पाटलिपुत्र गंगा और सोन नदी के संगम पर बसा हुआ है। यूनानी-लेखक एरियन ने लिखा है कि यह संगम प्रस्ती राज्य की सीमाओं में था और मेगस्थनीज के अनुसार प्रस्ती राज्य की सीमा सिन्धु पुलिन्द तक थी। अब कहाँ गंगा-यमुना का संगम, कहाँ गंगा और सोन का संगम और कहाँ सिन्धु-पुलिन्द, फिर इन सबके साथ पाटलिपुत्र का संबंध कैसे जोड़ा गया, यह सब बड़ा विचित्र लगता है।

उक्त सभी तथ्यों और अन्य बातों के आलोक में ऐसा लगता है कि मेगस्थनीज या अन्य यूनानी लेखक भारत की सही भौगोलिक स्थिति को समझ पाने में असमर्थ रहे हैं।

**पाटलिपुत्र मौर्य-साम्राज्य की राजधानी कभी भी नहीं रहा—**  
यूनानी-इतिहासकार भले ही पाटलिपुत्र को मौर्य-साम्राज्य की राजधानी मानते रहे हों किन्तु भारतीय-पुराणों के अनुसार वह कभी भी मौर्यों की राजधानी नहीं रहा। पुराणों के अनुसार जबसे मगध राज्य की स्थापना हुई थी तभी से अर्थात् जरासन्ध के पिता बृहद्रथ के समय के पूर्व से ही मगध-साम्राज्य की राजधानी गिरिव्रज (वर्तमान राजगीर/राजगृह) रही है। महाभारत-युद्ध के पश्चात् मगध-साम्राज्य से संबंधित बार्हद्रथ, प्रद्योत, शिशुनाग, नन्द, मौर्य, शुंग, कण्व, आन्ध्र—आठों वंशों के समय में इसकी राजधानी गिरिव्रज ही रही है। पाटलिपुत्र की स्थापना तो शिशुनाग-वंश के अजातशत्रु ने कराई थी और वह भी मात्र सैनिक-दृष्टि से सुरक्षा के लिए।

1. महाभारत, भीष्मपर्व, 9.40 (गीताप्रेस-संस्करण)

## वैज्ञानिक

### भारतीय-कालगणना अतिरिक्त और अवैज्ञानिक

कालगणना के सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि संसार में कालगणना की कई पद्धतियाँ प्रचलित हैं किन्तु उनमें से भारतीय-कालगणना ही ऐसी एकमात्र पद्धति है जिसका संबंध वास्तविक रूप में काल से जुड़ा है और जो सृष्टि के प्रारम्भ से ही एक ठोस वैज्ञानिक आधार पर निर्मित होकर चलती आ रही है। बाकी गणनाएँ तो व्यक्तियों पर आधारित हैं। अतः वे एक सीमित काल से पहले की बात बताने में असमर्थ हैं। सृष्टि का आरम्भ, उसके विकास की विभिन्न स्थितियों और प्रगति के विभिन्न आयामों के बारे में वे मौन हैं। जबकि भारतीय-कालगणना के पास एक-एक स्थिति का लेखा-जोखा उपलब्ध है और वह भी ठोस वैज्ञानिक आधार पर। कारण यह है कि भारतीय-कालगणना का मुख्य आधार आकाशस्थ नक्षत्रों, यथा—सूर्य, चन्द्र, मंगल आदि की गति रही है। युग, महायुग, कल्प आदि भी, जो भारतीय-कालगणना के मुख्य अंग रहे हैं, इन्हीं पर आधारित हैं। पुराणादि प्राचीन भारतीय साहित्य में युग, महायुग ही नहीं, कल्पादि की भी जो वर्ष-गणना दी गई है, वह पूर्णतः विज्ञान-सम्मत है, क्योंकि वह आकाशीय नक्षत्रों की गतियों पर आधारित है।

ग्रहगतियों के आधार पर भारतीय-ग्रन्थों में नौ प्रकार के कालमानों का निरूपण किया गया है। इनके नाम हैं— ब्राह्म, दिव्य, पित्र्य, प्राजापत्य, बार्हस्पत्य, सौर, सावन, चान्द्र और नाक्षत्र। इन नवों कालमानों में नाक्षत्रमान सबसे छोटा है। पृथिवी जितने समय में अपनी धुरी का एक चक्र पूरा करती है, उतने समय को एक नाक्षत्र दिन कहा जाता है। यही दिन या वार ही पक्षों में, पक्ष ही मासों में, मास ही वर्षों में, वर्ष ही युगों में, युग ही महायुगों में, महायुग ही मन्वन्तरों और मन्वन्तर ही कल्पों में बदलते जाते हैं।

भारत की उक्त कालगणना अंकगणित पर आधारित है। इसकी पुष्टि न केवल ज्योतिषशास्त्र के आधार पर ही, वरन् ऐतिहासिक, साहित्यिक और आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टियों से भी होती है।

### अंकगणित

भारतीय-कालगणना के प्रत्येक अंग, अर्थात् दिन, पक्ष, मास, वर्ष, युग, चतुर्युगी, मन्वन्तर, कल्पादि के सन्दर्भ में जो गणनाएँ दी गई हैं, उनके पीछे पौराणिक

आँकड़ों का एक पुष्ट आधार है। इन पौराणिक आँकड़ों में युक्ति है, तर्क है और सत्यता है, क्योंकि वे अंकगणित पर आधारित होने से पूर्णतः विज्ञान-सम्मत है। ऐसी पूर्णता आधुनिक विज्ञान द्वारा निर्धारित आँकड़ों में नहीं है क्योंकि वे वास्तविक नहीं, मात्र कल्पना और अनुमान पर आधारित हैं।

मन्वन्तर-सिद्धान्त के अनुसार एक मन्वन्तर में 71 चतुर्युग या महायुग होते हैं। एक चतुर्युगी या महायुग में 1, 2, 3 और 4 के आनुपातिक क्रम से एक-एक बार कलियुग (4.32 लाख वर्ष), द्वापर (8.64 लाख वर्ष), त्रेता (12.96 लाख वर्ष) और सत्ययुग (17.28 लाख वर्ष) आते हैं अर्थात् एक चतुर्युगी में 43.20 लाख वर्ष या 10 कलिमान होते हैं। प्रत्येक मन्वन्तर के पश्चात् एक सत्ययुग के बराबर का सन्धिकाल आता है। वर्तमान पृथिवी के निर्माण के आरम्भ से अब तक 6 मन्वन्तर बीत चुके हैं और सातवें मन्वन्तर के 28वें महायुग के कलियुग का 5,115वाँ वर्ष चल रहा है। अंकगणित पर आधारित होने के कारण ही इस भारतीय-कालगणना के अनुसार आज यह बताया जा सकता है कि वर्तमान सृष्टि को प्रारम्भ हुए आज 1,97,29,49,115 वर्ष हो चुके हैं तथा एक कल्प में 4,32,00,00,000 वर्ष होते हैं।

### ज्योतिषशास्त्र

इतनी लम्बी कालगणना को विभिन्न पाश्चात्य ही नहीं अपितु अनेक आधुनिक भारतीय-विद्वान् भी मानने को तैयार भले ही न हों किन्तु इसकी पुष्टि ज्योतिष-ग्रन्थ 'सूर्यसिद्धान्त' से हो जाती है, जिसमें कहा गया है—

**‘युगे सूर्यज्ञशुक्राणां खचतुष्करदार्णवाः।  
कुजार्किगुरुशीघ्राणां भगनाः पूर्वयायिनाम ॥’<sup>1</sup>**

अर्थात्, ‘एक चतुर्युग में सूर्य, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि 43,20,000 भगण (राशि-चक्र) परिवर्तन करते हैं।’ यही संख्या प्राचीन भारतीय-साहित्य में चतुर्युग के वर्षों की बताई गई है।

सूर्यसिद्धान्त में यह भी कहा गया है—

**‘अस्मिन् कृतयुगस्यान्ते सर्वे मध्यगता ग्रहाः।  
विना तु पादमदोच्चान् मेषादौ तुल्यतामिताः॥’<sup>2</sup>**

1. सूर्यसिद्धान्त, 1.29
2. वही, 1.57

अर्थात्, ‘सत्ययुग के अन्त में या त्रेता के प्रारम्भ में ‘पाद’ और ‘मन्दोच्च’ को छोड़कर सभी ग्रहों का मध्य स्थान मेष राशि में था। दूसरे शब्दों में उस समय 5वें कलियुग का प्रारम्भ था अर्थात् प्रत्येक 4.32 लाख वर्ष के बाद सात ग्रह एक युति में आ जाते हैं।

भारतीय-कालगणना के उक्त वर्षों की पुष्टि ज्योतिषशास्त्र के ‘अयन दोलन’ सिद्धान्त से भी हो जाती है।

### ऐतिहासिक

ज्योतिष के आधार पर पुष्ट हो जाने पर भी भारतीय-कालगणना की करोड़ों-करोड़ वर्षों की संख्या पर फ्लीट (1847-1917)-सरीखे कई पाश्चात्य विद्वान् ही नहीं, अपितु अनेक भारतीय विद्वान् भी यह कहकर प्रश्न-चिह्न लगा देते हैं कि कालगणना का यह प्रकार आर्यभट्ट (476-550) से पूर्व था ही नहीं। इस सन्दर्भ में दो बातें उल्लेखनीय हैं। पहला, इस कालगणना को भारत में ही माना जाता रहा है, ऐसा नहीं है। इसे बेबिलोनिया, ईरान, स्कैण्डेनेविया आदि देशों में भी मान्यता प्राप्त रही है। ऐतिहासिक दृष्टि से बेबिलोनिया की सभ्यता तृतीय सहस्राब्दी ई. पू. में फूली-फली थी और उस समय तक आर्यभट्ट अवतरित नहीं हुए थे। दूसरे, ये संख्याएँ वेद और ब्राह्मण-ग्रन्थों में आए व्योमों से भी पुष्ट होती हैं, जो निश्चित ही आर्यभट्ट से पूर्व के ही हैं।

### साहित्यिक

प्राचीन साहित्य चाहे ईरान और बेबिलोनिया का हो या भारत का— सभी में कालगणना के सन्दर्भ में स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं—

**ईरान के ग्रन्थ :** ईरान के निवासियों के विश्वास के अनुसार काल का एक युगचक्र 12,000 वर्ष का होता है।<sup>1</sup> भारतीय-ग्रन्थों में भी एक चतुर्युग में 12,000 देववर्ष होने का उल्लेख आया है। *तैत्तिरीयब्राह्मण* में लिखा है— **‘एकं वा एतदैवानामहः यत्संवत्सरः’**<sup>2</sup> अर्थात् मानव का एक संवत्सर देवताओं का एक दिन होता है। इसकी पुष्टि ईरानियों के यहाँ इस सन्दर्भ में आए उल्लेख से हो जाती है। उनके यहाँ लिखा है— **‘तएच अयर मइन्यएन्ते यतयरे’** अर्थात्

1. *The Age of the world*, p.3
2. *तैत्तिरीयब्राह्मण*, 8.79



देवताओं का एक दिन मानव का एक वर्ष होता है।<sup>1</sup> दूसरे शब्दों में देवताओं का एक वर्ष मानव के 360 वर्ष के बराबर होता है अर्थात् देवताओं के 12,000 वर्ष मानव के  $12,000 \times 360 = 43,20,000$  वर्ष के बराबर हुए। यही संख्या भारतीय-कालगणनानुसार एक महायुग या चतुर्युग की होती है।

**बेबिलोनिया के ग्रन्थ :** बेबिलोनिया के ग्रन्थों में इस सन्दर्भ में उल्लिखित संख्या से भी भारतीय-ग्रन्थों में बताई गई उक्त संख्या की पुष्टि हो जाती है। इस विषय में श्री शाम शास्त्री का निम्नलिखित ब्योरा पठनीय है—

‘हमारे सूर्यसिद्धान्त (1.11-12) में जिस प्रकार दस स्वर का एक श्वांस, 6 श्वांसों की एक विनाड़ी, 60 विनाड़ियों की एक नाड़ी और 60 नाड़ियों का एक दिन होना लिखा है, उसी प्रकार बेबिलोनिया के लोगों में ‘सास’, ‘सर’ और ‘नेर’ की गिनती है। यह ‘सास’, ‘सर’ और ‘नेर’, श्वांस, स्वर और नाड़ी का अपभ्रंश-रूप ही है। बेबिलोनियावालों का विश्वास रहा है कि उनके दस राजाओं ने 120 सर राज्य किया था। बेरोसस (प्रसिद्ध ज्योतिषी) के अनुसार एक सास = 60 वर्ष, एक नेर =  $60 \times 10 = 600$  वर्ष और एक सर  $60 \times 60 = 3600$  वर्ष का होता है। 120 सर का कालखण्ड  $3600 \times 120 = 4,32,000$  वर्ष का होता है। यही कालखण्ड कलियुग का है। इससे सिद्ध होता है कि भारत की कालगणना का आधार मात्र कोरी कल्पना नहीं है, इसके पीछे ऐतिहासिक आधार है।’<sup>2</sup>

**भारतीय-ग्रन्थ :** इस सन्दर्भ में *अथर्ववेद* का निम्नलिखित मंत्र पठनीय है—

**‘कियता स्कम्भः प्र विवेश भूतं कियद्भविष्यदन्वाशयेऽस्य।**

**एकं यदङ्गमकृणोत्सहस्रधा कियता स्कम्भः प्र विवेश तत्र ॥’<sup>3</sup>**

अर्थात्, भूत-भविष्यमय कालरूपी घर एक सहस्र स्तम्भों पर खड़ा किया गया है।

1. पृ. रघुनन्दन शर्मा-कृत *वैदिक सम्पत्ति*, पृ. 94

2. 'Origin of the week', Published in *The Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute*, Vol. IV, part 1

3. *अथर्ववेद*, 10.7.9

अनेक विद्वानों का मानना है कि इन स्तम्भों के आलंकारिक वर्णन से एक कल्प में होनेवाली एक सहस्र चतुर्युगों का उल्लेख किया गया है। *अथर्ववेद* का में ही एक अन्य स्थान पर कल्प के वर्षों की जो संख्या बताई गई है, वह इस प्रकार है—

**‘शतं तेऽयुतं हायनान्दे युगे त्रीणि चत्वारि कृष्णः’**

अर्थात्, सौ अयुत वर्षों के आगे 2, 3 और 4 लिखने से कल्प की वर्ष-संख्या आएगी।

चूँकि अयुत दस हजार का होता है, अतः सौ अयुत का मान 10 लाख या एक मिलियन हुआ। उसके आगे 2, 3 और 4 (**‘अंकानां वामतो गतिः’** के अनुसार) लिखने पर कल्प की वर्ष-संख्या 4,32,00,00,000 बनती है। यही संख्या एक सहस्र चतुर्युगों के वर्षों की होती है।

चारों युगों के नामों के सन्दर्भ में *यजुर्वेद* का निम्नलिखित मंत्र देखा जा सकता है—

**‘कृतायादिनवदर्षन्त्रेतायै कल्पिनन्द्वापरायाधिकल्पिनमास्कन्दाय  
सभास्थाणुम्’<sup>2</sup>**

इस मंत्र में कृतयुग (सत्ययुग), त्रेता, द्वापर और कलियुग— चारों युगों के नामों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

इसी बात को *तैत्तिरीयब्राह्मण* में इस रूप में कहा गया है—

**‘कृताय सभाविनम्। त्रेताया आदिनवदर्शम्। द्वापराय बहिःसदम्। कलये  
सभास्थाणुम्’<sup>3</sup>**

कालगणना के सन्दर्भ में विभिन्न भारतीय-ग्रन्थों में यह तो बताया ही गया है कि कौन-सा युग किस मास की कौन-सी तिथि से प्रारम्भ होता है। *महाभारत* में यह भी बताया गया है कि कलियुग के प्रारम्भ में आकाश में नक्षत्रों की स्थिति क्या-क्या रहती है। इनके अनुसार (एक कल्प की समाप्ति पर) आनेवाले कलियुग के अन्त में सात सूर्य एकसाथ उदित हो जाते हैं और तब

1. *अथर्ववेद*, 8.2.21

2. *यजुर्वेद*, 30.18

3. *तैत्तिरीयब्राह्मण*, 4.16

इतनी उष्मा बढ़ जाती है कि पृथिवी का सब जल सूख जाता है—

**‘ततो दिनकरैर्दीप्तैः सप्तभिर्मनुजाधिप।  
पीयते सलिलं सर्वं समुद्रेषु सरित्सु च॥’**

कहने का भाव यह है कि नक्षत्रों की गति पर आधारित भारतीय-कालगणना के कालमानों की पुष्टि ईरान, बेबिलोनिया, स्कैण्डेविया आदि देशों के प्राचीन ग्रन्थों में आए उल्लेखों से ही नहीं, अपितु भारत के वेद, ब्राह्मण, उपनिषद, पुराणादि ग्रन्थों में वर्णित कालमान के व्योमों से भी होती है। अतः उसकी मान्यता पर प्रश्न-चिह्न लगाना न्यायसंगत नहीं है।

काल-विभाजन का यह वैज्ञानिक सिद्धान्त पाश्चात्य विद्वानों को इसलिए मान्य नहीं हुआ क्योंकि वह ईसाइयों की धार्मिक मान्यताओं के विपरीत जाता था। साथ ही इससे भारतीय-संस्कृति की पुरातनता काफ़ी पहले ही सिद्ध हो जाती थी जो कि न तो राजनीतिक, न सामाजिक और न ही धार्मिक दृष्टि से पाश्चात्य विद्वानों को मान्य थी। इसीलिए उन्होंने भारत के ठोस और वैज्ञानिक काल-निर्धारण के सिद्धान्त को अस्वीकार करके ‘प्रागैतिहासिक’ और ‘ऐतिहासिक’ युगों के एक काल्पनिक सिद्धान्त पर अत्यन्त ही बेतुके आधारों पर वैदिक काल, वेदोत्तर काल, रामायण-काल, महाभारत-काल आदि विभिन्न कालों में विभाजितकर काल का निर्धारण किया। यह काल-विभाजन एकदम अवैज्ञानिक रहा। आखिर ग्रन्थों के नाम पर ऐतिहासिक काल-विभाजन करने के पीछे तर्क क्या था, क्या भाषा-भेद ? किन्तु वह तो इन ग्रन्थों में इतना था ही नहीं। तब ऐसा करना कहाँ तक न्यायसंगत रहा ?

इस काल्पनिक और अवैज्ञानिक काल-निर्धारण के कारण भी भारत के प्राचीन इतिहास में अनेक प्रकार की भ्रान्तियों का जन्म हो जाने से उसमें विकृतियाँ आई हैं।

### **प्रागैतिहासिक काल की अवधारणा**

किसी भी देश, भाषा, साहित्य या संस्कृति के इतिहास-लेखन का एक महत्वपूर्ण तत्त्व उसका काल-निर्धारण होता है, क्योंकि काल-विशेष में परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार आए बदलाव का विश्लेषण करके लेखक इनके

उत्कर्ष-अपकर्ष, विकास-हास, वैभव-पराभव का निष्कर्ष निकालकर इनपर विचार प्रकट करता है। भारतवर्ष में ऐतिहासिक दृष्टि से काल-निर्धारण की वैज्ञानिक आधारों पर एक सुदीर्घ और पुष्ट परम्परा विद्यमान रही है, किन्तु पाश्चात्य विद्वानों ने पुरातन काल से चले आ रहे काल-निर्धारण के सिद्धान्त को, अर्थात् भारतीय-कालगणना को अतिरिक्त एवं अस्वाभाविक मानकर उसे अस्वीकार करके उसके स्थान पर अपनी काल-निर्धारण की पद्धति, जो मात्र कल्पना-प्रसूत होने के कारण अत्यन्त ही अपुष्ट और अवैज्ञानिक थी, को मान्यता दी और उसके आधार पर भारतीय-इतिहास में प्रागैतिहासिक काल की अवधारणा प्रस्तुत की। जबकि भारत के इतिहास में इस नाम का कोई काल है ही नहीं, क्योंकि यहाँ तो सृष्टि-प्रारम्भ से ही उसके विकास का इतिहास सुलभ है।

‘प्रागैतिहासिकता’ का शाब्दिक अर्थ इतिहास से पूर्व के काल की स्थिति से है। ‘इतिहास से पूर्व काल की स्थिति’ से आधुनिक इतिहासकारों का अभिप्राय आदिमानव के भू-अवतरण और उसके बाद के उस प्रारम्भिक काल की स्थिति से है, जिसके संबंध में जानने, परखने और समझने के लिए आज उनके पास वह सब सामग्री उपलब्ध नहीं है, जिसके आधार पर वे बिना किसी अनुमान का सहारा लिए उस काल के बारे में पूर्णरूपेण परिचित होकर तथ्यात्मक ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत कर सकें। तथ्यात्मक इतिहास तैयार करने के लिए आज के इतिहासकारों को संबंधित काल के सिक्के, मोहरें, अभिलेख, पुरातन अवशेष आदि जैसी सामग्री चाहिए, किन्तु यह सब सामग्री उन्हें मानव-जीवन की केवल भौतिक प्रगति की स्थिति का ही परिचय दे सकती है, उसकी धार्मिक और आध्यात्मिक प्रगति का नहीं। इस प्रगति के परिचय के लिए प्राचीन साहित्य चाहिए, जो भारतवर्ष के अलावा अन्य किसी भी देश में आज सुलभ नहीं है। किन्तु उस साहित्य को आज के इतिहासकार ‘मिथ’ कहते आ रहे हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि आदिमानव के भू-अवतरण काल और उसके बाद के जिस काल के साहित्य को ‘मिथ’ की कोटि में डाला जा रहा है, उसको ही ‘प्रागैतिहासिक काल’ का नाम दिया गया है। जबकि भारत के इतिहास में ऐसा कोई काल रहा ही नहीं, जो इतिहास के पूर्व का रहा हो, क्योंकि यहाँ तो उस समय से इतिहास सुलभ है, जब सृष्टि के आरम्भ में भारत के ‘आत्मभू’ और अरबों के ‘आदम’ अर्थात् आदिमानव अथवा मनु का आविर्भाव हुआ था। शतपथब्राह्मण तथा पद्ममहापुराण आदि ग्रन्थों में सृष्टि-निर्माण की चर्चा के सन्दर्भ में लिखा है

1. महाभारत, वनपर्व, 188.67 (गीताप्रेस-संस्करण)

कि पहले पृथिवी एकद्वीपा थी, बाद में चतुर्द्वीपा हुई और उसके बाद सप्तद्वीपा हो गयी। आज इसी बात को 'कॉन्टिनेन्टल ड्रिफ्टिंग थ्योरी' (महाद्वीपीय विचलन-सिद्धान्त) कहा जाता है। पुराणों के अनुसार द्वीपों का विचलन भगवान् शंकर के ताण्डव से जुड़ा है। भगवान् शंकर के नृत्य करते समय पैरों की धमक से ही द्वीपों का विचलन होता है।

यही नहीं, भारत के प्राचीन साहित्य में तो इस सृष्टि से पूर्व की सृष्टि का उल्लेख भी मिलता है। सृष्टि का विलय प्रलय के काल में ही होता है। भारतीय-साहित्य में प्रलय भी कई प्रकार के बताए गए हैं। कभी नैमित्तिक प्रलय होती है तो कभी प्राकृत प्रलय और कभी आत्यन्तिक प्रलय।

प्राकृत प्रलय की स्थिति में न सत रहता है न असत, न भूमि रहती है न पाताल, न अन्तरिक्ष रहता है न स्वर्ग, न रात का ज्ञान रहता है और न दिन का। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि उस समय ब्रह्म की सत्ता के अलावा कुछ भी विद्यमान नहीं रहता।

एक निश्चित कालावधि के बाद नयी सृष्टि का निर्माण होता है। भारतीय-दृष्टि से काल की कोई सीमा नहीं है, वह अनन्त है। इस अनन्तता का आभास पुराणों में ब्रह्माजी की आयु के लिए दिए गए इस ब्योरे से होता है—

पुराणों में ब्रह्माजी को सृष्टि-निर्माता कहा गया है। उनकी आयु ब्राह्म वर्ष के अनुसार 100 वर्ष मानी गई है। ब्रह्मा का एक दिन एक कल्प के बराबर, अर्थात् 14 मन्वन्तर या 1,000 चतुर्युगों या 4.32 अरब मानव-वर्षों का होता है। ब्रह्मा के दिन के उदय के साथ ही त्रैलोक्य की सृष्टि होती है और दिन का अन्त होने पर उतने ही परिमाण में उनकी रात्रि होती है। यही प्रलय की स्थिति होती है। मानव-वर्षों में ब्रह्माजी की पूर्णायु लगभग 31 नील वर्ष की है। उनकी पूर्णायु को दो पराद्धों में बाँटा गया है। भारतीय-पौराणिक कालगणनानुसार इस समय ब्रह्माजी अपनी आयु का एक पराद्ध (50 वर्ष) अर्थात् आधा भाग बिताकर दूसरे पराद्ध में चल रहे हैं। यह उनके दूसरे पराद्ध के प्रथम वर्ष (51वें वर्ष) का प्रथम दिन या कल्प है, जिसका नाम 'श्वेतवाराह कल्प' है।

आज के इतिहासकार कह सकते हैं कि इतनी विस्तृत कालगणना के हिसाब-किताब का प्रामाणिक ब्योरा कैसे और कहाँ रखा जाता है। इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि वैसे तो भारतीय-पुराणों में इसपर काफी विस्तार से प्रकाश

डाला गया है, किन्तु इसका ब्योरा अलग से रखने की किसी लम्बी-चौड़ी व्यवस्था की आवश्यकता ही नहीं पड़ती; क्योंकि हर हिंदू नित्य ही अपने धार्मिक कार्य संपन्न करने से पूर्व संकल्प लेता है और उसमें इनसब बातों, अर्थात् ब्रह्मा की आयु के पराद्ध से लेकर कल्प, मन्वन्तर, चतुर्युग, युग, संवत्सर, अयण, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि, वार, नक्षत्र, लग्नादि का उच्चारण आवश्यक होता है। इनका उच्चारण करते समय हर अगले दिन बड़े सहज रूप से मात्र तिथि, वार, नक्षत्र, लग्नादि को क्रमशः बदलना पड़ता है। यह संकल्प भी बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है।

प्रलयकाल में सबकुछ नष्ट हो जाने पर कालान्तर में नयी सृष्टि का निर्माण होता है। किन्तु उसका संबंध पूर्व-सृष्टि से अवश्य रहता है। पूर्व-सृष्टि का ज्ञान हमें ऋग्वेद से होता है—

**‘ततोरात्र्यजायत’  
सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्...’**

अर्थात्, ‘तब प्रलय हो गयी। तदनन्तर ईश्वर ने सम्पूर्ण विश्व (सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि) को पहले की तरह फिर से बनाया।’

पूर्व-सृष्टि का ज्ञान भारतीय जीवन-दर्शन के इस विश्वास से भी होता है जिसमें यह माना गया है कि प्राणी को नया जीवन उसके पुराने जीवन के कर्मों के अनुसार ही मिलता है। यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि नयी सृष्टि में जब आत्मा पहली बार ही कोई शरीर धारण करती है तो उसका आधार क्या होता है। उसके लिए भारतीय-शास्त्रों में बताया गया है कि प्रलय से पूर्व के जन्म में किए गए कर्मों के अनुरूप ही विभिन्न आत्माएँ नयी सृष्टि में नया शरीर धारण करती हैं—

**‘भूतानि त्रापूर्वसृष्टि कर्मणां फलादानाय इति’**

इसके लिए किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि स्वयं ‘भूत’ शब्द, जो पाँचों महाभूतों का द्योतक है, इस तथ्य को प्रकट कर रहा है कि उनकी रचना पूर्व-सृष्टियों के प्राणियों के अवशिष्ट कर्मों का फल देने के लिए ही हुई है।

जिस भारतवर्ष में सृष्टि के प्रलय और निर्माण के संबंध में इतनी सूक्ष्मता, गहनता और गम्भीरता से विचार किया गया हो (भले ही उससे भारत के

इतिहास को आधुनिक रूप में लिखनेवाले सहमत न हों) और जहाँ इस सृष्टि के निर्माण-काल से ही नहीं, वरन् पिछली सृष्टि का विवरण भी रखा गया हो, वहाँ के इतिहास में प्रागैतिहासिकता की अवधारणा स्थापित करने का कोई कारण ही नहीं उठता।

प्रागैतिहासिकता की अवधारणा स्थापित करके भारतीय-इतिहास में अनेक प्रकार की भ्रान्तियाँ पैदा करके उसे विकृत किया गया है।

### वैज्ञानिकता के नाम पर ऐतिहासिक तथ्यों में उलट-फेर

भारत के इतिहास को आधुनिक रूप में लिखने की प्रक्रिया में प्राचीन भारतीय-इतिहास में वैज्ञानिकता के नाम पर भी अनेक उलट-फेर किए गए हैं। पाश्चात्य विद्वानों द्वारा वैज्ञानिकता के नाम पर भारतीय-संस्कृति, सभ्यता, इतिहास, धर्म-दर्शन और साहित्य की श्रेष्ठता और प्राचीनता को कम-से-कम करके आँकने के भी घनघोर प्रयास किए गये। इन प्रयासों के अंतर्गत बड़े-बड़े इतिहासकारों और पुरातत्त्ववेत्ताओं ने ऐसे अनेक मिथ्या तर्क दिए हैं, अनेक मिथ्या आधारों की स्थापनाएँ कीं और अनेक मिथ्या कल्पनाएँ तथा विवेचनाएँ कीं, जो नितान्त बाल-बुद्धि जैसी लगती हैं।

भारत के प्रसिद्ध पुरातात्विक श्री बृजबासी लाल (बी बृ लाल) ने वैज्ञानिक आधार पर भारत के प्राचीन इतिहास का काल-निर्धारण करते हुए महाभारत-युद्ध को 836 ई पू में हुआ माना है। महाभारत-युद्ध के लिए इस काल को निर्धारित करने की प्रक्रिया का ब्योरा प्रस्तुत करते हुए श्री लाल ने कहा है कि भारतीय-इतिहास के मुस्लिम-काल में दिल्ली में कुतुबुद्दीन ऐबक से लेकर बहादुरशाह ज़फर तक 47 मुस्लिम-बादशाह हुए हैं और उन्होंने कुल 652 वर्ष राज्य किया है। इस हिसाब से प्रति राजा का औसत राज्यकाल 13.9 अर्थात् 14 वर्ष बनता है। इसी आधार पर परीक्षित से लेकर उदयन तक हुए 24 राजाओं का राज्यकाल उन्होंने  $24 \times 14 = 336$  वर्ष माना है। उदयन का समय उन्होंने 500 ई पू कल्पित किया है क्योंकि बौद्ध-ग्रन्थों में उदयन को गौतम बुद्ध का लगभग समकालीन माना गया है। अतः 500 ई पू में 336 वर्ष जोड़कर 836 ई पू वर्ष बनाकर इसे महाभारत का काल माना है। जबकि महाभारत का युद्ध उस समय से बहुत पहले हुआ था।

प्राचीन भारत के ऐतिहासिक काल-निर्धारण के सन्दर्भ में श्री बृजबासी

लाल की आधुनिक वैज्ञानिकता का एक और उदाहरण इस प्रकार है कि वे श्रीराम का जन्म श्रीकृष्ण के बाद हुआ मानते हैं। इस कल्पना की जड़ें उस प्रसंग में हैं जिसमें समुद्र के गर्भ में द्वारका के अवशेष मिल जाने पर आज के विद्वानों द्वारा उसके लिए आज से 3,500-3,600 वर्ष पूर्व का काल तथा अयोध्या और भरद्वाज आश्रम में हुए उत्खननों से प्राप्त सामग्री के लिए क्रमशः 2,700 और 2,800 वर्ष का समय निश्चित किया गया था। जबकि भारतीय-परम्परा के अनुसार श्रीकृष्ण के समकालीन महाभारतकार व्यासजी ने अपने ग्रन्थ में श्रीराम की कथा का उल्लेख किया है। महर्षि व्यास से पूर्व हुए अनेक ऋषियों ने भी श्रीरामकथा का उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट है कि श्रीराम, श्रीकृष्ण से पहले अवतरित हुए थे।

डॉ० कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी (1887-1971) के निरीक्षण में और डॉ० रमेशचन्द्र मजूमदार (1888-1980) के प्रधान संपादकत्व में 11 खण्डों में तैयार *'The History and Culture of the Indian People'*<sup>1</sup> ने तो वैज्ञानिकता के नाम पर भारत के इतिहास के सन्दर्भ में और भी खिलवाड़ किया है। इस ग्रन्थ में जो कुछ लिखा गया है वह उससे बहुत भिन्न नहीं है जो पाश्चात्य इतिहासकारों ने लिखा है।

जहाँ तक महाभारत-युद्ध का काल जानने के लिए उसे हज़ारों-हज़ार वर्ष बाद पैदा हुए मुसलमान बादशाहों के औसत राज्यकाल को आधार बनाने का प्रश्न है तो इसका उत्तर तो श्री लाल ही जानें, किन्तु यहाँ यह प्रश्न उठता ही है कि उनके मस्तिष्क में यह बात क्यों नहीं आई कि प्राचीन काल में दीर्घ जीवन भारत की एक विशिष्टता रही है। उस काल का औसत भारतीय-राजा काफी समय बाद के औसत मुसलमानी बादशाह से काफ़ी अधिक काल तक जीवित रहा होगा। भारत के लोगों के दीर्घ जीवन के बारे में मेगस्थनीज आदि यूनानी विद्वानों के निम्नलिखित विचार उल्लेखनीय हैं—

1. भारतीयों को न कभी सरदर्द, न दन्तशूल और न अन्य बीमारियाँ होती थीं। न ही शरीर के किसी भाग में अल्सर होता था। वे 120, 130, 150 वर्ष तक जीते थे। कोई-कोई तो 200 वर्ष तक भी जीते थे।
2. भारतीय ईमानदार थे। सभी लम्बी आयु तक जीवित रहते थे। कोई 170 तो

1. Published by Bombay [Mumbai], Bharatiya Vidya Bhavan, 1951

कोई 200 वर्ष तक जीवित रहता था।<sup>1</sup>

यदि आज से 2,300 वर्ष पूर्व हमारे पूर्वज निरोग रहकर 200 वर्ष तक जीवित रहते थे तो 5,000 या 6,000 वर्ष पूर्व तो वे और भी अच्छी तरह से तथा और भी लम्बी आयु तक जीवित रहते होंगे। अतः मुसलमानी काल का इस प्रकार की औसत निकालकर प्राचीन भारतीय राजाओं के राज्यकाल को निकालना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं माना जा सकता। इस सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि विजयनगर का 'रामराज' 96 वर्ष की आयु में तालिकोटा की युद्धभूमि पर गया था और पँवार-वंश के राजा गंगा सिंह ने मुहम्मद गोरी के विरुद्ध पृथ्वीराज को युद्ध में 90 वर्ष की आयु में सहयोग दिया था। आधुनिक काल में सन् 1857 के युद्ध में जगदीशपुर के बाबू कुँवर सिंह ने 81 वर्ष की अवस्था में युद्ध लड़ा था। महाभारत-युद्ध के समय आचार्य द्रोण और महाराजा द्रुपद की आयु क्रमशः लगभग 400 और 300 वर्ष, पितामह भीष्म की आयु 186 वर्ष तथा श्रीकृष्ण और अर्जुन की आयु क्रमशः 90 और 89 वर्ष मानी जाती है।

अर्वाचीन और प्राचीन काल में कतिपय भारतीयों के आयु मान के उक्त उदाहरणों के समक्ष 14 वर्ष की औसत से उस समय के राजाओं की आयु निकालने की वैज्ञानिकता सामान्यतः बुद्धिगम्य नहीं हो पाती। लगता है यह सब कुछ भारतीय-इतिहास को विकृत करने की दृष्टि से किया/कराया गया है।

## विविध

### ऐतिहासिक महापुरुषों की तिथियाँ

पाश्चात्य विद्वानों द्वारा भारतीय-इतिहास के लिए निर्धारित तिथिक्रम के आधार पर किसी भी ऐतिहासिक महापुरुष की जन्मतिथि और महान् सम्राट् के राज्यारोहण की तिथि पर विचार किया जाता है तो वह असंगत लगती है। इस खण्ड में कतिपय ऐसे ही ऐतिहासिक महापुरुषों की जन्मतिथियों और सम्राटों के राज्यारोहण की तिथियों के विषय में विचार किया जा रहा है—

#### (क) गौतम बुद्ध का आविर्भाव 563 ईपू में हुआ

भगवान् गौतम बुद्ध का आविर्भाव भारतीय-इतिहास की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण

घटना है, किन्तु यह खेद का ही विषय है कि उनके जन्म और महानिर्वाण की तिथियों के संबंध में प्रामाणिक जानकारी भारतवर्ष में सुलभ नहीं है। हाँ, यह जानकारी तो विभिन्न स्रोतों से अवश्य मिल जाती है कि वे 80 वर्ष तक जीवित रहे थे। देश-विदेश में प्रचलित बौद्ध-परम्पराओं से भी उनके जन्म और महानिर्वाण के संबंध में प्रामाणिक तिथियाँ नहीं मिल पाई हैं। हर जगह ये तिथियाँ अलग-अलग ही बताई जाती हैं।

पाश्चात्य इतिहासकारों ने गौतम बुद्ध का जन्म-वर्ष निकालने के लिए चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्यारोहण की कल्पित तिथि 320 ई पू में से उसके और उसके पुत्र बिन्दुसार के राज्यकालों के वर्षों को घटाकर अशोक का राज्यारोहण वर्ष 265 ई पू निकाला है। इस 265 ई पू में 218 वर्ष जोड़कर गौतम बुद्ध के महानिर्वाण का वर्ष  $265 + 218 = 483$  ई पू निश्चित किया है क्योंकि सीलोन के बौद्ध-ग्रन्थ 'महावंश' में लिखा हुआ है कि गौतम बुद्ध के महानिर्वाण के 218 वर्ष बाद अशोक का राज्यारोहण हुआ था। इसी को आधार मानकर  $483$  ई पू में गौतम बुद्ध की पूर्ण आयु के 80 वर्ष मिलाकर  $483 + 80 = 563$  ई पू को उनका जन्म-वर्ष माना गया है। जबकि ऐसे अनेक विद्वान् हैं जो इस तिथि को सही नहीं मानते। विगत दो शताब्दियों से लगातार प्रयासों के बावजूद गौतम बुद्ध के जन्मतिथि निश्चित नहीं हो सकी है।

उन्नीसवीं शताब्दी में पाश्चात्य विद्वानों ने बुद्ध के काल-निर्धारण के सन्दर्भ में 25वीं शताब्दी ई पू से 5वीं शताब्दी ई पू तक की अनेक तिथियाँ एकत्रित की थीं, जिनका डॉ. विल्सन ने विश्लेषण किया था। इतिहासकार श्रीराम श्रीपाद साठे ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'डेट्स ऑफ़ द बुद्ध' के पृ. 2 से 4 तक डॉ. विल्सन की तिथियों के साथ जेम्स प्रिंसेप (1799-1840) तथा कुछ अन्य लोगों द्वारा दी गई तिथियाँ भी दी हैं (देखें परिशिष्ट 'ख')। उनसे ज्ञात होता है कि—

- बुद्ध की तिथियों, यथा— 2500 ई पू और 563 ई पू में लगभग 2,000 वर्ष का अन्तराल है।
- एक भूटानी-लामा पद्माकरपो (1800-1899) और भारतीय-स्रोतों के आधार पर निकाली गई क्रमशः 1858 ई पू और 1807 ई पू की तिथियों में परस्पर अन्तर बहुत कम है।

1. Most of them live as long as men who attain extreme longevity, and some live over two hundred years. —Ancient India as described by Megasthenes and Arrian, by J.W. McCrindle, 1877, p.92



■ कल्हण (12वीं शताब्दी) के नाम से दी गई 1332 ई पू की तिथि भी भ्रमपूर्ण ही लगती है। कारण 'राजतरंगिणी' में गौतम बुद्ध का महानिर्वाण तुरुष्क-वंश के राज्यारम्भ से 150 वर्ष पूर्व माना है और तुरुष्क-वंश का समय 1294-1234 ई पू के बीच में बैठता है। इसके हिसाब से गौतम बुद्ध की महानिर्वाण की तिथि  $1294 + 150 + 80 = 1524$  ई पू बैठती है।

■ अधिकतर विद्वान् 1027 ई पू की तिथि पर सहमत हैं।

सन्दर्भित तिथियों को महानिर्वाण की तिथियाँ मानकर उनमें 80 वर्ष (बुद्ध का जीवनकाल) जोड़ने पर जो तिथियाँ बनती हैं, वे भी वर्तमान में प्रचलित भारत के इतिहास में बुद्ध के जन्मकाल के लिए दी गई 563 ई पू से मेल नहीं खातीं।

भारतीय-पुराणों से मिली विभिन्न राजवंशों के राजाओं के राज्यारोहण की तिथियों के आधार पर जो जानकारी मिलती है, उसके हिसाब से गौतम बुद्ध का जन्मकाल 1886-'87 ई पू बैठता है। वे महाभारत-युद्ध के पश्चात् मगध की गद्दी पर बैठनेवाले तीसरे राजवंश— शिशुनाग-वंश के चौथे, पाँचवें और छठे राजाओं के राज्यकाल में, अर्थात् 1892 से 1787 ई पू के बीच में हुए थे।

श्रीलंका के इतिहास-ग्रन्थों के अनुसार गौतम बुद्ध का निर्वाण अजातशत्रु के राज्यारोहण के 8 वर्ष बाद, अर्थात्  $1814 - 8 = 1806$  ई पू में हुआ था।<sup>1</sup> इस विषय में तो सभी एकमत हैं कि गौतम बुद्ध 80 वर्ष तक जीवित रहे थे।<sup>2</sup> अतः उनका जन्म  $1806 + 80 = 1886$  ई पू में हुआ होगा। यह समय क्षेत्रज के राज्यकाल का था जो शिशुनाग-वंश का चौथा राजा था। जबकि वर्तमान इतिहासज्ञों द्वारा जो तिथि गौतम बुद्ध के जन्मकाल की दी गई है, वह 563 ई पू है।

उक्त भारतीय-विवरणों के आधार पर बुद्ध के जन्म के लिए बनी तिथियों और प्रचलित तिथि (563 ई पू) में भी काफी (लगभग 1,300 वर्षों का) अन्तर आता है। बुद्ध की वास्तविक तिथि के ज्ञान के अभाव के कारण भी भारत के इतिहास में अनेक भ्रान्तियाँ पैदा कर/करा दी गई हैं। इससे भी भारत

का इतिहास बड़ी मात्रा में विकृत हो गया है।

### (ख) कुमारिल भट्ट 8वीं शताब्दी में हुए

महान् मीमांसक कुमारिल भट्ट के जन्मकाल के संबंध में भी न केवल पाश्चात्य, वरन् भारतीय-विद्वानों में भी मतैक्य नहीं है। इनका जन्म छठी शताब्दी ई.पू. से 8वीं शताब्दी ईसवी के अंत तक माना गया है। अलग-अलग विद्वानों ने इनके जन्म का वर्ष अलग-अलग बताया है।

स्वामी चिद्सुखाचार्य जी का 'बृहदशंकरविजय' में कहना है कि कुमारिल भट्ट आचार्य शंकर से 48 वर्ष बड़े थे। भारतीय-आधारों पर आचार्य शंकर का समय 509-477 ई पू है। इसके आधार पर यह माना जा सकता है कि कुमारिल भट्ट  $509 + 48 = 557$  ई पू में पैदा हुए हैं।

कुमारिल भट्ट के जन्मकाल के विषय में प्रख्यात पुरातत्त्ववेत्ता मुनि जिनविजय द्वारा सन्दर्भित जैन-अभिलेख द्रष्टव्य है—

**‘ऋषिर्वारस्तथापूर्ण मर्त्याक्षौ वाममेलनात्।**

**एकीळत्य लभेताकं स्यात् तत्र वात्सरः॥**

**भट्टाचार्यकुमारस्य कर्मकाण्डकादिनः।**

**ज्ञेयः प्रादुर्भवत्तस्मिन् वर्षे यौधिष्ठिरे शके॥’**

अर्थात्, (ऋषि) 7 + (वार) 7 + (पूर्ण) 0 + (अक्ष) 2 = 7702। इस तिथि के अंकों को विपरीत दिशा में गणना करने पर यह तिथि 2077 बनती है। अर्थात् उक्त अभिलेख के अनुसार कुमारिल भट्ट का जन्म युधिष्ठिर संवत् 2077 में हुआ था। जैनियों का युधिष्ठिर संवत् कलियुगाब्द 468 से प्रारम्भ माना जाता है, अर्थात्  $3102 - 468 = 2634$  ई पू से जैन युधिष्ठिर संवत् बनता है। यदि 2634 से 2077 घटा दें, तो 557 वर्ष ही बचता है और यही वर्ष कुमारिल के जन्मकाल के लिए चिद्सुखाचार्य के कथन का आधार भी बनता है।

इस संबंध में हरिस्वामी द्वारा की गई शतपथब्राह्मण की व्याख्या का उल्लेख करना भी समीचीन होगा। इसके अनुसार भी कुमारिल भट्ट का समय 557 ई पू ही बैठता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि कुमारिल भट्ट की जन्मतिथि में भी दोनों आधारों पर बुद्ध की जन्मतिथि की भाँति लगभग 1,300 वर्ष का ही अन्तर आता है। यह भ्रान्ति भी भारतीय इतिहास को विकृत करने के लिए जान-बूझकर पैदा की गई है।

1. 'अजातशत्रुनो अट्ठमे वस्से मुनि निव्वुते' — महावंश, परिच्छेद 2

2. 'भगवादि आसीटिको अहमपि आसीटिको'

— मज्झिमनिकाय, दीघनिकाय, महापरिनिव्वाणसुत्त, 2.3.16

### (ग) आद्य जगद्गुरु शंकराचार्य 788 ई. में अवतरित हुए

आचार्य शंकर के जन्मकाल में भी लगभग 1,300 वर्ष का ही अन्तर पाश्चात्य और भारतीय आधारों से आता है। पाश्चात्य विद्वानों ने यूँ तो आचार्य शंकर के जन्म के संबंध में बहुत सारी तिथियाँ दी हैं, किन्तु अधिकतर पाश्चात्य और भारतीय-विद्वान् 788 ई. पर सहमत हैं।<sup>1</sup> जबकि शंकर मठ की परम्परानुसार उनका जन्मकाल 509 ई. पू. बनता है। द्वारका शारदा मठ, काञ्ची कामकोटि मठ और पुरी गोवर्द्धन मठ के पीठाधिपतियों की सूचियों में प्रत्येक आचार्य का नाम, गद्दी पर बैठने का वर्ष और कितने वर्ष वे गद्दी पर रहे, इन सबका पूरा वर्णन दिया गया है। आचार्य शंकर की जन्मतिथि की दृष्टि से वे सूचियाँ बहुत महत्वपूर्ण हैं।

अंतर्साक्ष्य अर्थात् आचार्य जी की अपनी रचनाओं के सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि उन्होंने अपनी किसी भी रचना में न तो अपने संबंध में और न ही किसी रचना-विशेष के रचनाकाल के संबंध में ही कुछ लिखा है। आचार्य शंकर के संबंध में यह भी उल्लेखनीय है कि उन्होंने अपने समस्त साहित्य में कहीं भी यवनों के आक्रमण और भारत में उनके निवास के संबंध में कुछ भी नहीं लिखा है जबकि अनेक विद्वानों द्वारा आचार्य जी का आविर्भाव-काल आठवीं शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक माना गया है। यदि आचार्य जी इस अवधि में अवतरित हुए होते तो उनकी किसी-न-किसी रचना में किसी-न-किसी रूप में मुसलमानों का उल्लेख अवश्य रहा होता क्योंकि मुसलमानों के सिंध प्रदेश पर आक्रमण 7वीं शताब्दी के अन्त में होने शुरू हो गए थे एवं आक्रमण के पश्चात् काफी मुसलमान वहीं रहने भी लगे थे। कोई भी विचारक या लेखक अपनी समकालीन स्थितियों से आँख मूँदकर नहीं रह सकता। उसकी रचनाओं में तत्कालीन स्थिति का उल्लेख किसी-न-किसी रूप में आ ही जाता है। अतः यह तो निश्चित है कि आचार्य जी का जन्म छठी शताब्दी से पूर्व ही हुआ है। यदि ऐसा है तो स्वामी चिद्सुखाचार्य जी की रचना, मठों की आचार्य-सूचियाँ, पौराणिक तिथिक्रम आदि पुष्ट आधारों पर निर्मित 509 ई. पू. को ही शंकराचार्य जी की जन्म तिथि मानना उचित होगा। इस तिथि की पुष्टि 'नेपाल राजवंशावली' से भी होती है। पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय इतिहास को विफल करने की दृष्टि से

1. विस्तृत जानकारी के लिए सूर्य भारती प्रकाशन, नयी सड़क, दिल्ली-110 006 द्वारा प्रकाशित लेखक की पुस्तक 'भारतीय एकात्मता के अग्रदूत आद्य जगद्गुरु शंकराचार्य' देखें

जान-बूझकर इस भ्रान्ति को जन्म दिया है।

### (ग) अशोक ने 265 ई.पू. में शासन संभाला

सम्राट् अशोक को भारत के इतिहास में ही नहीं, अपितु विश्व के इतिहास में जो महत्त्वपूर्ण स्थान मिला हुआ है, वह सर्वविदित है। आज अशोक का नाम संसार के महानतम व्यक्तियों में गिना जाता है। इसकी प्रसिद्धि का मुख्य कारण उसके द्वारा चट्टानों और प्रस्तर-स्तम्भों पर लिखवाए गए वे अजर-अमर शिलालेख हैं, जो सम्पूर्ण राष्ट्र में इतस्ततः विद्यमान रहे हैं; किन्तु उनसे उसके व्यक्तिगत जीवन अर्थात् जन्म-मरण, माता-पिता के नाम, शासनकाल आदि के संबंध में कोई विशेष जानकारी सुलभ नहीं हो पाती। यह भी उल्लेखनीय है कि उन शिलालेखों में से अशोक का नाम केवल एक ही छोटे शिलालेख में मिलता है। शेष पर तो 'देवानांप्रिय' शब्द ही आया है। अतः इससे यह पता नहीं चल पाता कि यह नाम वास्तव में कौन-से अशोक का है क्योंकि भारत में भिन्न-भिन्न कालों में अशोक नाम के चार राजा हुए हैं, यथा—

**पहला अशोक—** कल्हण की 'राजतरंगिणी' के अनुसार कश्मीर के राजाओं की सूची में 48वें राजा का नाम 'अशोक' था, जो कनिष्क से तीन पीढ़ी ऊपर था। वह कश्मीर के गोनन्द-राजवंश का था और उसे 'धर्माशोक' भी कहते थे।

**दूसरा अशोक—** पुराणों के अनुसार मौर्य वंश का तीसरा राजा अशोकवर्धन था। यह चन्द्रगुप्त मौर्य का पौत्र था। इसने बाद में बौद्ध-धर्म अपनाकर बौद्ध-धर्म के प्रचार के लिए बहुत कार्य किया था।

**तीसरा अशोक—** गुप्त वंश के दूसरे राजा समुद्रगुप्त ने अपना उपनाम 'अशोकादित्य' रखा था। अनेक स्थानों पर उसे मात्र 'अशोक' ही कहा गया है। वह बड़ा ही साहसी तथा वीर राजा था। उसने सम्पूर्ण देश में बड़े व्यापक स्तर पर विजय अभियान चलाया था। इसीलिए उसे पाश्चात्य विद्वानों ने 'भारत का नेपोलियन' की संज्ञा दी है।

**चौथा अशोक—** पुराणों के अनुसार शिशुनाग-वंश के दूसरे राजा का नाम अशोक था। वह शिशुनाग का पुत्र था। उसका रंग अधिक काला होने से उसे 'कालाशोक' या 'काकवर्णा' नाम से भी पुकारा जाता था।

बौद्ध ग्रन्थों में यद्यपि अशोक के संबंध में बड़े विस्तार से चर्चा की गई है तथापि उनके वर्णन परस्पर भिन्न हैं। इस सन्दर्भ में आचार्य रामदेव का कहना है कि बौद्ध लेखकों ने अशोकादित्य (समुद्रगुप्त) और गोनन्दी अशोक (कश्मीर) — दोनों को मिलाकर एक चक्रवर्ती अशोक की कल्पना कर ली है।<sup>1</sup>

‘टेलवोयजवीर’ नामक एक अंग्रेज़-विद्वान् ने अपने ग्रन्थ ‘हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया’ में यूनानी-राजदूत द्वारा प्रस्तुत ‘सेण्ड्रोकोट्टस’ के चरित्र की कतिपय विशिष्टताओं से प्रियदर्शी अशोक की तुलना करके यह निष्कर्ष निकाला है कि सेण्ड्रोकोट्टस और अशोक एक ही व्यक्ति हैं। श्रीकृष्णमाचार्यलु ने भी समुद्रगुप्त को अशोक मानकर उसे ही ‘सेण्ड्रोकोट्टस’ माना है।<sup>2</sup>

इस स्थिति में यह निष्कर्ष निकाल पाना, कि इनमें से बौद्ध धर्म-प्रचारक देवानांप्रिय अशोक कौन है, कठिन है। जहाँ तक 265 ई पू में अशोक के गद्दी पर बैठने की बात है, इस संबंध में भी अनेक मत हैं—

मेक्समूलर	— 850 ई पू (चीनी विवरण) और 315 ई पू (सीलोनी विवरण)
फ्लीट	— 1260 ई पू (राजतरंगिणी)
भारतीय-पौराणिक कालगणना—	1472 ई पू

यहाँ उल्लेखनीय है कि पौराणिक कालगणना के अनुसार अशोक मौर्य के राज्य के लिए निकले 1472 से 1436 ई पू के काल में और ‘राजतरंगिणी’ के आधार पर धर्माशोक के लिए निकले राज्यकाल 1448 से 1400 ई पू में कुछ-कुछ समानता है। जबकि भारत के इतिहास को आधुनिक रूप में लिखनेवाले इतिहासकारों द्वारा निकाले गए 265 ई पू के काल से कोई समानता ही नहीं है।

उक्त विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि वर्तमान इतिहासकारों द्वारा अशोक के संबंध में निर्धारित काल-निर्णय भी बहुत उलझा हुआ है। अतः 265 ई पू में वह गद्दी पर बैठा ही था, यह निश्चित रूप से नहीं माना जा सकता। जहाँ तक आधुनिक रूप में भारत का इतिहास लिखनेवालों

और भारतीय-पौराणिक आधार पर कालगणना करनेवालों की अशोक के राज्यारोहण की तिथि का प्रश्न है, दोनों में लगभग 1,200 वर्ष का अन्तर आ जाता है। स्पष्ट है कि यह विकृति भी जान-बूझकर की गई है।

### (घ) कनिष्क का राज्यारोहण 78 ईउ में हुआ

कुषाण-सम्राट् कनिष्क के राज्यारोहण के संबंध में भी पाश्चात्य और भारतीय-आधारों पर निकाले गए कालखण्डों में गौतम बुद्ध आदि की तरह लगभग 1,300 वर्ष का ही अन्तर आता है। पाश्चात्य इतिहासकारों द्वारा कनिष्क के राज्यारोहण की तिथि 78 ई निश्चित की गई है जबकि पुं कोटावेकटचलम् द्वारा ‘Chronology of Kashmir History Reconstructed’ में दिए गए ‘राजतरंगिणी’ के व्योरो के अनुसार कनिष्क ने कश्मीर में 1254 ई पू के आसपास राज्य किया था।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि अन्य तिथियों की भ्रान्ति के लिए तो कोई-न-कोई कारण आज का इतिहासकार दे भी रहा है, किन्तु कनिष्क के संबंध में तिथि की भ्रान्ति का कोई निश्चित उत्तर उसके पास नहीं है। इस सन्दर्भ में डॉ रमेशचन्द्र मजूमदार का कहना है -

‘कनिष्क की तिथि भारतीय-तिथिक्रम की सबसे उलझी हुई समस्या है। इस विषय पर बहुत कुछ लिखा गया है, किन्तु नये प्रमाणों के अभाव में कोई बात निश्चित रूप से नहीं कही जा सकती।’<sup>1</sup>

चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक और कनिष्क की विलियम जोन्स आदि पाश्चात्य विद्वानों द्वारा निर्धारित तिथियों के सन्दर्भ में श्री ए बी त्यागराज अय्यर का निम्नलिखित उद्धरण भी ध्यातव्य है— ‘एथेन्स में अभी हाल में मिली एक समाधि में एक अभिलेख है, जिसपर लिखा है— यहाँ बोधगया आए एक भारतीय-श्रमणाचार्य चिरनिद्रा में लेटे हुए हैं। इन शाक्य मुनि को उनके यूनानी-शिष्यों द्वारा एथेन्स लाया गया था। लगभग 1000 ई पू हुई उनकी मृत्यु के समय में यह समाधि बनाई गई थी।’ यदि शाक्य साधु को 1000 ई पू के आसपास यूनान ले जाया गया था तो कनिष्क की तिथि कम-से-कम 1100 ई पू, अशोक की 1250 ई पू और चन्द्रगुप्त मौर्य की 1300 ई पू होनी

1. भारतवर्ष का इतिहास, तृतीय खण्ड, प्रथम भाग, पृ 41

2. सियाराम सक्सेना-कृत ‘भारतीय इतिहास पर दासता की कालिमा’, पृ 131-140

1. डॉ रमेश चन्द्र मजूमदार कृत ‘प्राचीन भारत’, पृ 101, पाद-टिप्पणी

चाहिये। यदि यह बात है तो जोन्स की धारणा कि यूनानी-साहित्य का सेड्रोकोट्टस चन्द्रगुप्त मौर्य सेल्युकस निकेटर का समकालीन था, जिसने 303 ई पू में भारत पर आक्रमण किया था, एकदम निराधार और अनर्गल है।<sup>1</sup>

दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि कनिष्क के राज्यारोहण के सन्दर्भ में दी गई तिथि भी मात्र एक भ्रान्ति ही है। भारतीय-इतिहास की महानतम विभूतियों की तिथियों में यह अन्तर पाश्चात्य विद्वानों द्वारा जान-बूझकर डाला गया है ताकि उनके द्वारा पूर्व-निर्धारित कालगणना सही सिद्ध हो जाए।

### (ड) विक्रम संवत् के प्रवर्तक उज्जयिनी-नरेश

#### शकारि विक्रमादित्य का कोई ऐतिहासिक अस्तित्व नहीं

भारतवर्ष में श्रीराम, श्रीकृष्ण, गौतम बुद्ध और आचार्य शंकर के पश्चात् यदि किसी का व्यक्तित्व सर्वाधिक विख्यात रहा है तो वह उज्जयिनी-नरेश विक्रमादित्य का रहा है। विक्रमादित्य की न्यायप्रियता, प्रजावत्सलता, गुणग्राहकता, वीरता, योग्यता और ज्ञान पर आधारित अनेक साहित्यिक रचनाएँ, लोकगाथाएँ और लोकगीत जनमानस में विख्यात हैं; किन्तु आश्चर्य तो इस बात का है कि जिस राजा की इतनी प्रसिद्धि रही हो, उसे कल्पना-जगत् का वासी मानकर पाश्चात्य विद्वानों ने उसके ऐतिहासिक व्यक्तित्व को ही नकार दिया है।

उज्जयिनी के महाराजा विक्रमादित्य के ऐतिहासिक व्यक्तित्व को नकारने से पूर्व यदि उन तथ्यों पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर लिया गया होता, जिनसे उनके अस्तित्व को सिद्ध किया जाता रहा है, तो अधिक उचित होता। इस दृष्टि से निम्नलिखित तथ्य उल्लेखनीय हैं—

#### महाराजा विक्रमादित्य भारत के पौराणिक महापुरुष हैं— महाराजा

1. 'Here lies Indian Sramanacharya from Bodha Gaya a Sakya monk taken to Greece by his Greek pupils' and the tomb marks his death at about 1000 B.C. If Buddhist monks have gone to Greece in 1000 B. C., the date of Kanishka must be at least 1100 B. C., and that of Ashoka 1250 B. C., and that of Chandragupta Maurya 1300 B.C. Hence the conjecture of Sir William Jones, that Chandragupta Maurya was identical with Sandrocottos referred to by Greek historians as contemporary of Seleukus Nikator who invaded India in 303 B.C., is most unfounded and absurd.'

—vide A. Somayajulu's 'Dates in Ancient History of India', pp.112-114).

विक्रमादित्य का सविस्तार वर्णन भविष्य, स्कन्दादि पुराणों में दिया गया है। भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व के प्रथम खण्ड में दिए गए ब्योरे के अनुसार विक्रमादित्य ईसवी सन् के प्रारम्भ में जीवित थे। उनका जन्म कलि के 3000 वर्ष बीत जाने पर (अर्थात् 101 ई पू में) हुआ था और उन्होंने 100 वर्ष तक राज्य किया था।<sup>1</sup>

**साहित्यिक रचनाओं का अमर नायक है—** भारत की लगभग सभी भाषाओं, यथा— संस्कृत, प्राकृत, अर्द्धमागधी, हिंदी, गुजराती, मराठी, बांग्ला आदि भाषाओं के विभिन्न ग्रन्थों में विक्रमादित्य से संबंधित ऐसे सैकड़ों विवरण मिलते हैं जिनमें उसकी वीरता, उदारता, दया, क्षमा आदि गुणों की अमर गाथाएँ भरी हुई हैं।

**दन्तकथाओं और लोकगीतों का प्रेरणापुंज है—** देश के विभिन्न भागों में स्थानीय भाषाओं में ही नहीं, अपितु बोलियों में भी ऐसी अनेक दन्तकथाएँ, लोकगाथाएँ, लोकगीत प्रचलित हैं जिसमें बड़े व्यापक रूप में विक्रमादित्य के भिन्न-भिन्न गुणों का गान किया गया है।

**संवत्-प्रवर्तक है—** देश में एक नहीं, अनेक ऐसे विद्वान् हैं जो 57 ई पू में प्रवर्तित हुए विक्रम संवत् को उज्जयिनी-नरेश विक्रमादित्य द्वारा ही प्रवर्तित मानते हैं। भारतवर्ष में 'कलि संवत्' (कलियुगाब्द) के समान ही इस संवत् का प्रयोग सब क्षेत्रों में किया जाता है।

इस संवत् के प्रवर्तन की पुष्टि कालिदास-विरचित 'ज्योतिर्विदाभरण' नामक ग्रन्थ से होती है जो 3068 कलि अर्थात् 34 ई पू में लिखा गया था। इसके अनुसार विक्रमादित्य ने 3044 कलि अर्थात् 57 ई पू में विक्रम संवत् चलाया था।

**भारत का ऐतिहासिक व्यक्तित्व है—** 'राजतरंगिणी' के अनुसार 14 ई के आसपास कश्मीर में अंध युधिष्ठिर के वंश के राजा हिरण्य के निःसन्तान काल-कवलित हो जाने पर अराजकता फैल गई थी जिसे देखकर वहाँ के मंत्रियों की सलाह पर उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य ने मातृगुप्त (जिसे कई विद्वान् कालिदास भी मानते हैं) को कश्मीर का राज्य सम्भालने के लिए भेजा था।

1. 'संक्षिप्त भविष्यपुराण', गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ 245

‘नेपाल राजवंशावली’ में भी नेपाल के राजा अंशुवर्मन के समय (प्रथम शताब्दी ई पू ) में उज्जयिनी के विक्रमादित्य के नेपाल आने का उल्लेख किया गया है। ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि विक्रमादित्य ने नेपाल के राजा को अपने अधीन सामन्त का पद स्वीकार करने के लिए कहा था। कुछ लोगों का ऐसा भी मानना है कि विक्रमादित्य ने विक्रम संवत् की स्थापना नेपाल में ही की थी।

श्री गुदन जी शर्मा द्वारा लिखित पुस्तक में दिया गया है कि ‘उज्जैन के राजा गन्धर्वसेन के पुत्र विक्रमादित्य के मन में अयोध्या के उद्धार की प्रेरणा आयी। बाद में इसी अयोध्यापुरी के मन्दिरों के जीर्णोद्धार के स्मारक के रूप में विक्रम संवत् चला जो आज भी विद्यमान है।’<sup>1</sup>

बाबू वृन्दावनदास ने लिखा है कि उज्जैन के सम्राट् विक्रमादित्य ने ही विक्रम संवत् की स्थापना 57 ई पू में की थी। उनका यह भी कहना है कि- ‘भारत में अन्य सभी सम्राटों, जिनके नाम के साथ ‘विक्रमादित्य’ लगा हुआ है, यथा— श्रीहर्ष, शूद्रक, हल, चन्द्रगुप्त द्वितीय, स्कन्दगुप्त शिलादित्य, यशोधर्मन आदि ने ‘विक्रमादित्य’ को उपाधि के रूप में ग्रहण किया है, जबकि उज्जयिनी के इस राजा का मूल नाम ही विक्रमादित्य है। उपाधि के स्थान पर मूल नाम अधिक महत्वपूर्ण है।’<sup>2</sup>

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि यदि पाश्चात्योन्मुखी आधुनिक भारतीय-इतिहासकारों की यह बात मान ली जाती है कि ईसा पूर्व और ईसा बाद की पहली शताब्दियों में कोई विक्रमादित्य नहीं हुआ तो इस्लाम-पूर्व अरब देश के कवि ज़हम बिनतोई की उस कविता का क्या उत्तर होगा जिसे उसने मोहम्मद साहब के जन्म से 165 वर्ष पूर्व भारतीय-सम्राट् विक्रमादित्य की स्तुति में लिखा था। वह कविता दिल्ली के बिड़ला-मन्दिर के यज्ञशाला-मण्डप में लाल पत्थरों की दीवार पर अरबी भाषा और देवनागरी-लिपि में उत्कीर्ण है—

‘इत्रशफाई सनतुल बिकरमातुन फ़हलमिन क़रीमुन यर्तफ़ीहा वयोवस्सुरू 11।  
बिहिल्लाहायसमीमिन इला मोतक़ब्बेनरन, बिहिल्लाहा यूही कैद मिन होवा यफ़ख़रू 12।  
फ़ज़ल-आसारि नहो ओसारिम बेजेहलीन, युरीदुन बिआबिन क़ज़नबिनयख़तरू 13।  
यह सबदुन्या कनातेफ़ नातेफ़ी बिजेहलीन, अतदरी बिलला मसीरतुन फ़केफ़ तसबहू 14।  
क़ऊज़ी एज़ा माज़करलहदा वलहदा, अशमीमान, बुरुक़न क़द् तोलुहो वतस्तूरू 15।

1. ‘श्रीअयोध्या का प्राचीन इतिहास’, पृ. 33-34

2. ‘प्राचीन भारत में हिंदू-राज्य’, साहित्य प्रकाशन, 1972

बिहिल्लाहा यक़ज़ी बैनना वले कुल्ले अमरेना, फ़हेया ज़ाऊना बिल अमरे बिकरमातुन 16।’<sup>1</sup>

अर्थात्, ‘वो लोग धन्य हैं, जो राजा विक्रमादित्य के साम्राज्य में उत्पन्न हुए, जो दानवीर, धर्मात्मा और प्रजावत्सल था 11। उस समय हमारा देश (अरब) ईश्वर को भूलकर इन्द्रिय-सुख में लिप्त था। छल-कपट को ही हमलोगों ने सबसे बड़ा गुण मान रखा था। हमारे सम्पूर्ण देश पर अज्ञानता ने अन्धकार फैला रखा था 12। जिस प्रकार कोई बकरी का बच्चा किसी भेड़िए के चंगुल में फँसकर छटपटाता है, छूट नहीं सकता, उसी प्रकार हमारी मूर्ख जाति मूर्खता के पंजे में फँसी हुई थी 13। अज्ञानता के कारण हम संसार के व्यवहार को भूल चुके थे, सारे देश में अमावस्या की रात्रि की तरह अन्धकार फैला हुआ था। परन्तु अब जो ज्ञान का प्रातःकालीन प्रकाश दिखाई देता है, यह कैसे हुआ ? 14। यह उसी धर्मात्मा राजा की कृपा है, जिन्होंने हम विदेशियों को भी अपनी कृपा-दृष्टि से वंचित नहीं किया और पवित्र धर्म का सन्देश देकर अपने देश के विद्वानों को भेजा, जो हमारे देश में सूर्य की तरह चमकते थे 15। जिन महापुरुषों की कृपा से हमने भुलाए हुए ईश्वर और उसके पवित्र ज्ञान को समझा और सत्यथगामी हुए; वे महान् विद्वान्, राजा विक्रमादित्य की आज्ञा से हमारे देश में ज्ञान एवं नैतिकता के प्रचार के लिए आए थे 16।’

यह कविता मूल रूप में तुर्की के सुलतान सलीम के काल (1742 ई ) में तैयार ‘शायर-उल्-ओकुल’ नामक अरबी काव्य-संग्रह से ली गई है।

कहने का अभिप्राय यह है कि पाश्चात्य विद्वानों ने जिस विक्रमादित्य के व्यक्तित्व को ही नकार दिया है, उसके विषय में भविष्यमहापुराण, ज्योतिर्विदाभरण, सिद्धान्तशिरोमणि, नेपालराजवंशावली, राजतरंगिणी, महावंश, शतपथब्राह्मण की विभिन्न टीकाएँ, बौद्ध-ग्रन्थ, जैन-ग्रन्थ तथा अनुश्रुतियाँ आदि भारतीय-ऐतिहासिक स्रोत एकमत हैं। अतः लगता है कि यह स्थिति भारत के इतिहास को विकृत करने के लिए जान-बूझकर लाई गई है।

### सरस्वती नदी का कोई अस्तित्व नहीं

भारत के पुरातन साहित्य, यथा— वेद, पुराणों आदि में ही नहीं, अपितु

1. Sayar-ul-Okul, p. 315



वाल्मीकीयरामायण और महाभारत-सदृश ग्रन्थों में भी सरस्वती का स्मरण बड़ी गरिमा के साथ किया गया है। भारत भू के न केवल धार्मिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक ही, वरन् ऐतिहासिक आदि परिवेशों में भी सरस्वती का बड़ा महत्त्व दर्शाया गया है। इस नदी के साथ भारतवासियों के अनेक सुखद और आधारभूत संबंध रहे हैं। इसके पावन तट पर भारतीय जीवन-पद्धति के विविध आयामों का विकास हुआ है। इसके सात्रिध्य में वेद का संकलन हुआ है। ऋग्वेद के 2.41.16 में इसका उल्लेख मातृशक्तियों में सर्वोत्तम माता, नदियों में श्रेष्ठतम नदी और देवियों में सर्वाधिक महीयशी देवी के रूप में हुआ है—

**‘अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति।  
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि॥’<sup>1</sup>**

यह 6 नदियों की माता सप्तमी नदी रही है। यह ‘स्वयं पयसा’ (अपने ही जल से भरपूर) और विशाल रही है। यह आदिमानव के नेत्रोन्मीलन से पूर्व-काल में न जाने कबसे बहती आ रही थी। वास्तव में सरस्वती नदी का अस्तित्व ऋग्वेद की ऋचाओं के संकलन से बहुत पहले का है। ऐसी महत्त्वपूर्ण नदी के आज भारत में दर्शन न हो पाने के कारण आधुनिक विद्वान् इसका अस्तित्व ही मानने से इनकार करते आ रहे हैं किन्तु इस नदी के अस्तित्व का विश्वास तो तब हुआ जब एक अमेरिकन उपग्रह ने भूमि के अन्दर दबी इस नदी के चित्र खींचकर पृथिवी पर भेजे। अहमदाबाद के शोध-केन्द्र ने उन चित्रों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि शिमला के निकट शिवालिक पहाड़ों से कच्छ की खाड़ी तक भूमि के अन्दर एक सूखी हुई नदी का तल विद्यमान है, जिसकी चौड़ाई कहीं-कहीं 6 किलोमीटर है। उनका यह भी कहना है कि उस समय सतलुज और यमुना नदी इसी नदी में मिलती थी। सेटेलाइट द्वारा भेजे गए चित्रों से पूर्व भी बहुत से विद्वान् इसी प्रकार के निष्कर्षों पर पहुँच चुके थे। राजस्थान सरकार के एक अधिकारी एनृ एनृ गोडबोले ने इस नदी के क्षेत्र में विविध कुओं के जल का रासायनिक परीक्षण करने पर पाया था कि सभी के जल में रसायन एक जैसा ही है। जबकि इस नदी के क्षेत्र के कुओं से कुछ फर्लांग दूर स्थित कुओं के जलों का रासायनिक विश्लेषण दूसरे प्रकार का निकला। अनुसंधानकर्ताओं ने यह भी पाया कि राजस्थान के रेत के नीचे बाढ़ की मिट्टी

की मोटी तह है, जो इस बात की प्रतीक है कि यहाँ कोई बड़ी नदी वर्षानुवर्ष तक बहती रही है एवं उसी के कारण यह बाढ़ की मिट्टी यहाँ इकट्ठी हुई है। कुछ दिन पूर्व ही केन्द्रीय जलबोर्ड के वैज्ञानिकों को हरियाणा और पंजाब के साथ-साथ राजस्थान के जैसलमेर ज़िले में सरस्वती नदी की मौजूदगी के ठोस सबूत मिले हैं।<sup>1</sup>

ऐसी स्थिति में यह मान लिया जाना कि सरस्वती नदी का कोई अस्तित्व नहीं है, उचित नहीं है। निश्चित ही यह भी एक भ्रान्ति ही है, जो भारत के इतिहास को विकृत करने की दृष्टि से जान-बूझकर फैलाई गई है।

**भारत का शासन समग्र रूप में एक केन्द्रीय सत्ता के  
अंतर्गत केवल अंग्रेज़ों के शासनकाल में आया,  
उससे पूर्व वह कभी भी एक राष्ट्र के रूप में नहीं रहा**

भारतवर्ष के सन्दर्भ में केन्द्रीय सत्ता का उल्लेख वेद, ब्राह्मण-ग्रन्थों, पुराणादि में मिलता है और यह स्वाभाविक बात है कि ग्रन्थों में उल्लेख उसी बात का होता है जिसका अस्तित्व या तो ग्रन्थों के लेखन के समय में हो या उससे पूर्व रहा हो। यद्यपि यह भी सही है कि आधुनिक मानदण्डों के अनुसार सत्ता का एक राजनीतिक केन्द्र समूचे देश में कदाचित् नहीं रहा तथापि अनेक ब्राह्मण-ग्रन्थों और पुराणों में विभिन्न साम्राज्यों के लिए सार्वभौम या ‘समुद्रपर्यंत’-जैसे शब्द-प्रयोग मिलते हैं। इस बात के उल्लेख भी प्राचीन ग्रन्थों में मिलते हैं कि अनेक चक्रवर्ती सम्राटों ने अश्वमेध, राजसूय या वाजपेयादि यज्ञ करके देश में अपनी प्रभुसत्ताएँ स्थापित की थीं। इसी प्रकार से कितने ही सम्राटों ने दिग्विजय करके सार्वभौम सत्ताओं का निर्माण भी किया था। ऐसे सम्राटों में प्राचीन काल के यौवनाश्व अश्वपति, हरिश्चन्द्र, अम्बरीश, ययाति, भरत, मान्धाता, सगर, रघु, युधिष्ठिर आदि और अर्वाचीन काल के महापद्मनन्द, चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक आदि के नाम गिनाए जा सकते हैं।

यह उल्लेखनीय है कि प्राचीन भारतीय राजनीतिक मानदण्डों के अनुसार केवल वे ही शासक चक्रवर्ती सम्राट् की पदवी पाते थे और वे ही अश्वमेधादि यज्ञ करने के अधिकारी होते थे, जिनका प्रभुत्व उस समय के ज्ञात कुल क्षेत्र पर स्थापित हो जाता था। प्रकारान्तरे से यह प्राचीन भारतीय-परिवेश और मानदण्डों

1. ऋग्वेद, 2.41.16

1. ‘दैनिक जागरण’, 10.1.2002

के अनुसार केन्द्रीय सार्वभौम सत्ता का ही द्योतक है, अतः पाश्चात्यों की उपर्युक्त मान्यता तत्त्वतः सही नहीं है।

सांस्कृतिक दृष्टि से तो प्रारम्भ से ही भारत एक राष्ट्र के रूप में रहा है। यहाँ के अवतारी पुरुष, यथा— श्रीराम, श्रीकृष्ण; यहाँ के महापुरुष, यथा—गौतम बुद्ध, आद्य शंकराचार्य, स्वामी विवेकानन्द; यहाँ का इतिहास, यथा— वैदिक काल से लेकर आज तक का; यहाँ की भाषाएँ, यथा— हिंदी, संस्कृत, मराठी, तमिल आदि; यहाँ के त्यौहार, यथा— दशहरा, दीपावली, रक्षाबन्धन आदि; यहाँ के मठ-मन्दिर, यथा— ज्योतिर्मठ, गोवर्धन मठ, शृंगेरी मठ, बेलूर मठ आदि; यहाँ की सामाजिक मान्यताएँ, यथा— ब्राह्मण-शिक्षक, क्षत्रिय-रक्षक, वैश्य-पोषक और शूद्र-सेवक; यहाँ के मानबिन्दु, यथा— गो, गीता, गंगा, गायत्री आदि देश के सभी भागों, सभी राज्यों और सभी क्षेत्रों के निवासियों को जहाँ एक संगठित और समान समाज के अंग बनाने में सहायक रहे हैं, वहीं उनमें यह भावना भी भरते रहे हैं कि वे सब एक ही मातृभूमि या पितृभूमि की सन्तान हैं। यह भी ध्यान देने की बात है कि राष्ट्र एक सांस्कृतिक अवधारणा है। इस दृष्टि से विचार करने पर पाश्चात्यों तथा उनके परिवेश में ढले-पले भारतीय-विद्वानों द्वारा प्रस्तुत यह विचार कि ‘भारत राष्ट्र बनने की प्रक्रिया में है’ या ‘यह देश प्रशासनिक दृष्टि से कभी एक केन्द्रीय सत्ता के अधीन नहीं रहा’, न केवल भ्रामक सिद्ध होता है अपितु इस राष्ट्र के तेजोभंग करने के उद्देश्य से गढ़ा गया प्रतीत होता है। राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक— किसी भी दृष्टि से क्यों न हो, गहराई से विचार करने पर यह स्वार्थवश और जान-बूझकर फैलाया गया मात्र एक भ्रम लगता है क्योंकि भारत के प्राचीन ग्रन्थ *अथर्ववेद* में कहा गया है— ‘माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः’ अर्थात् यह भूमि हमारी माता है और हम इसके पुत्र हैं। *अथर्ववेद* में इस देश की सीमा इस प्रकार बताई गई है—

‘यश्य विश्वे हिमवन्तो महित्वा समुद्रे यस्य रसामिदाहुः।  
इमाश्च प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥’<sup>2</sup>

अर्थात्, हिमालय से समुद्रपर्यंत फैला हुआ क्षेत्र भारत ही है।

*विष्णुमहापुराण* में कहा गया है—

1. *अथर्ववेद*, 12.1.12
2. *वही*, 4.2.5

‘उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।  
वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः॥’

अर्थात्, हिमालय के दक्षिण और समुद्र के उत्तर का भाग भारतवर्ष है और उसकी सन्तान भारती (भारतीय) हैं।

*महाभारत* में भी भारतभूमि के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए उसे एक राष्ट्र के रूप में ही चित्रित किया गया है।<sup>1</sup> तमिल काव्य-संग्रह ‘*पाडिरुप्पट्ट*’ में दी गई विभिन्न कविताएँ भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं जिनमें देश का वर्णन कन्याकुमारी से हिमालय तक कहकर किया गया है। ‘*बृहस्पतआगम*’ अथवा ‘*बार्हस्पत्यशास्त्र*’ आदि ग्रन्थ ही नहीं, तुलसीदास के विभिन्न पद भी इसी भाव को व्यक्त कर रहे हैं।

सदियों से ऋषि-महर्षि, साधु-संन्यासी, योगी-परिव्राजक, दार्शनिक-चिन्तक, कवि-लेखक आदि सबने इस देश को सदा-सर्वदा ही एक देश माना है। दक्षिण में पैदा हुए शंकराचार्य कश्मीर और असम क्यों गए और उन्होंने देश के चार कोनों में चार धाम क्यों स्थापित किए ? क्या इसीलिए नहीं कि वे इस देश को एक मानते थे ? असम के सन्त शंकरदेव और माधवदेव ने भी भारतवर्ष की बात की है— ‘*धन्य-धन्य कलिकाल, धन्य नरतनु भाल, धन्य जन्म भारतवरिषे*’।

इससे यह निष्कर्ष सहज ही में निकल आता है कि कन्याकुमारी से हिमालय तक फैले समस्त क्षेत्र में रहनेवालों के लिए सदा से ही भारतवर्ष जन्मभूमि, कर्मभूमि और पुण्यभूमि रहा है और उनके लिए इस देश का कण-कण पावन, पूज्य और पवित्र रहा है फिर चाहे वह कण भारत के उन्नत ललाट हिमगिरि के धवल हिमशिखरों का हो या कन्याकुमारी पर भारत माँ के चरण-प्रक्षालन करते हुए अनन्त सागर की उत्ताल तरंगों का।

भारतीयों के लिए देशप्रेम, राष्ट्रप्रेम, मानवप्रेम धर्म के ही अंग हैं। उनके लिए देश, धर्म और समाज की एकता, अखण्डता के साथ-साथ प्रशासनिक इकाई के महत्त्व का उल्लेख करते हुए इंग्लैण्ड के भूतपूर्व प्रधानमंत्री जेम्स रैम्जे

1. *विष्णुमहापुराण*, 2.3.1
2. *महाभारत*, भीष्मपर्व (विस्तृत जानकारी के लिए परिशिष्ट ‘ग’ देखें)

मैकडोनाल्ड (1929-1935) ने लिखा था— 'हिंदू के लिए भारतवर्ष न केवल एक सत्ता से शासित होनेवाली इकाई है— चाहे वह उसकी आध्यात्मिक संस्कृति का मूर्तरूप अथवा मन्दिर भी है अथवा मातृदेवी है।... उसके लिए भारतवर्ष उसकी संस्कृति का मूर्तिमान रूप है, जिसमें उसने आत्मा को उड़ेल दिया है। उसके विचारों में उसकी आत्मा का महान् रूप ही उसकी मातृभूमि है।'<sup>1</sup>

भारत की इस समग्रता को और यहाँ के रहनेवालों की इस समस्त भूमि के प्रति इस भावना को देखते हुए यह विचार कि भारत का शासन अंग्रेजों के आने से पूर्व समग्र रूप में कभी भी एक केन्द्रीय सत्ता के अधीन नहीं रहा और भारत कभी एक राष्ट्र के रूप में नहीं रहा, वह तो राष्ट्र बनने की प्रक्रिया में है, मात्र एक भ्रान्ति ही है जो जान-बूझकर फैलाई गई है और आज भी फैलाई जा रही है।

इस प्रकार की ही अनेक भ्रान्तियाँ भारत के इतिहास का आधुनिक रूप में लेखन करते समय सोद्देश्य फैलाई गई और उन्हीं के परिणामस्वरूप भारत के इतिहास में तरह-तरह की ऐसी विकृतियाँ पैदा कर दी गईं जिनके कारण यह सन्देह पैदा हो गया कि क्या यह भारतवर्ष का ही इतिहास है ?

1. *The Fundamental unity of India* by Radha Kumud Mukherjee, Preface

## निष्कर्ष

पूर्व-पृष्ठों में किए गए विवेचन से भारत और उसके इतिहास के सन्दर्भ में पाश्चात्यों, विशेषकर अंग्रेजों की मानसिकता का पूरा-पूरा परिचय मिल जाता है। यही नहीं, तत्कालीन सत्ता द्वारा इस देश में सप्रयास पैदा किए गए उनके समर्थकों ने अपने तात्कालिक लाभ के लिए स्वार्थवश भारत और भारतीयता (देश, धर्म, समाज, इतिहास और संस्कृति) के साथ कैसा व्यवहार किया, इसका भी ज्ञान हो जाता है। साथ ही यह भी ज्ञात हो जाता है कि अंग्रेजी सत्ता के समर्थकों की कोटि में समाज का कोई एक वर्गविशेष नहीं, वरन् सभी वर्गों के लोग रहे, जिनमें प्रशासक, रक्षक, शिक्षक, पोषक, संस्कृतज्ञ, इतिहासज्ञ, साहित्यकार आदि सभी वर्ग सम्मिलित रहे हैं और सभी ने अपने-अपने ढंग से भारतीय-इतिहास को बिगाड़ने में सत्ता का पूरा-पूरा सहयोग दिया। किन्तु गहराई में जाने पर पता चलता है कि सबके पीछे मूल कारण देश की पराधीनता ही रही है।

### पराधीनता एक अभिशाप

पराधीनता सदैव बड़ी ही दुःखदायी और कष्टकारी होती है, फिर वह चाहे व्यक्ति की हो या परिवार की अथवा समाज की हो या राष्ट्र की। पराधीन व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र, वे चाहे कितने भी बड़े और महान् क्यों न रहे हों, अपना स्वत्व और स्वाभिमान ही नहीं, अपना गौरव और महत्त्व भी भूल जाते हैं। भारत ने भी परतन्त्रता के काल में अपनी उन सभी विशिष्टताओं और श्रेष्ठताओं को विस्मृति के अन्धकार में विलीन कर दिया था, जिनके बल पर वह विश्वगुरु कहलाया था। यहाँ पहले मुस्लिम-आक्रमण हुआ फिर अंग्रेजी सत्ता आयी— दोनों ने ही अपने-अपने ढंग से देश पर अपना-अपना वर्चस्व स्थापित करने का प्रयास किया। दोनों ने ही भारत के हर कथ्य और तथ्य को अत्यन्त हेय दृष्टि से देखकर भारतीय-सभ्यता एवं संस्कृति का अपमूल्यांकन करके उसे कम-से-कम करके

आंका।

### अंग्रेजों की दृष्टि में भारतवासियों का मूल्यांकन

भारत में अंग्रेजी सत्ता के आने से पहले यहाँ राज्य किसी एक व्यक्ति या वंश का होता था, किन्तु अंग्रेजी शासन के दौरान उनके व्यवहार को देखकर यहाँ के लोगों को यह सोचने को मजबूर होना पड़ा कि यहाँ राज्य किसी व्यक्ति या परिवार-विशेष का नहीं, वरन् सम्पूर्ण अंग्रेज़-जाति का था। उस समय हर अंग्रेज़ अपने को भारत का राजा समझने लगा था। वह हर भारतवासी को एक गुलाम से अधिक कुछ भी नहीं समझता था, फिर चाहे वह अंग्रेज़ भारत में प्रशासन से संबंधित हो या इंग्लैण्ड में सत्ता से अथवा इंग्लैण्ड के साधारण परिवार से। उस समय भारतीयों के बारे में अंग्रेज़ों के विचार सामान्य रूप में बहुत ही घटिया स्तर के थे। वे भारतीयों को बड़ी तिरस्कृत, घृणास्पद, उपेक्षित और तुच्छ दृष्टि से देखते थे। इसके प्रत्यक्ष एवं परोक्ष— अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं।

ऐसी मानसिकतावाले लोगों की छत्रच्छाया में पोषित और प्रेरित विद्वानों द्वारा आधुनिक ढंग से लिखा गया भारत का इतिहास, उस भारत को, जो अपनी आन, बान और शान के लिए; अपनी योग्यता, गरिमा और महिमा के लिए; अपने गुरुत्व, गाम्भीर्य और गौरव के लिए प्राचीन काल से ही विश्व के रंगमंच पर विख्यात रहा था, एक ऐसी धर्मशाला के रूप में प्रस्तुत करता है जिसमें जिसने, जब और जहाँ से भी चाहा घुस आया, यहाँ कब्ज़ा जमाया और मालिक बनकर बैठ गया तो बहुत आश्चर्य की बात नहीं लगती। कारण, जो लोग सन्निकट भूतकाल में कुछ साहसी लोगों के कारण समुद्र पर अपना वर्चस्व स्थापित करके धीरे-धीरे विश्व-शक्ति बन गए थे, वे थे तो आखिर एक छोटे-से देश के वासी, जो एक ही धर्म-पुस्तक तथा एक ही धार्मिक व्यक्तित्व से बंधे थे और एक ही राजा के राज्य में रहे थे। वे भारत-जैसे विशाल देश की शुद्ध परिकल्पना कर ही कैसे सकते थे जिसमें एक-दो नहीं अनेक धार्मिक ग्रन्थ, अनेक धार्मिक व्यक्तित्व, अनेक राजवंश रहे हों।

इस सन्दर्भ में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वितीय सरसंघचालक श्री माधवराव सदाशिवराव गोळवळकर (1906-1973) का निम्नलिखित कथन उल्लेखनीय है—

‘हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि उनकी दृष्टि साफ़ नहीं थी, उन्हें अपनी

गोरी चमड़ी का अभिमान था। जो देश उनके अधीन था, उसकी श्रेष्ठता उन्हें कैसे मान्य होगी ? न उनके पास उतनी उदारता है, न सत्यप्रियता। अभी कल-परसों तक वे पूरे शरीर पर गोदना गुदवाकर, चेहरा पोतकर जंगलों में घूमते थे, सो उनके वास्ते यह दिखाना अनिवार्य था कि दुनिया के अन्य लोग भी उस समय उसी अवस्था में, या उनसे भी निचली अवस्था में रहते थे। परन्तु जब हिंदू-संस्कृति का श्रेष्ठत्व और बौद्धिक तथा आध्यात्मिक प्रताप को नकारना उनके लिए नितांत असम्भव-सा हुआ, तब वे यह प्रमाणित करने पर तुल गए कि प्राचीनकाल में कहीं एक आर्यवंश था, जो यूरोप, ईरान तथा भारत में फैल गया; परन्तु जहाँ यूरोपीय-शाखा दिनोदिन प्रकट होती गई, वहीं भारतीय-शाखा अन्य जमातों के सम्पर्क में आकर अपनी शुद्धता खो बैठी और अधोगति को प्राप्त हुई।’

### भारत का आधुनिक रूप में लिखित इतिहास

#### विजित जाति का इतिहास

वर्तमान में सुलभ भारत का इतिहास अंग्रेज़ों के शासन में अंग्रेज़ों के द्वारा या उनके आश्रय में पलनेवाले अथवा उनके द्वारा लिखित इतिहास को पढ़कर इतिहासज्ञ बने लोगों के द्वारा रचा गया है। जब भी विजेता जातियों द्वारा पराधीन जातियों का इतिहास लिखा या लिखवाया गया है तो उसमें विजित जातियों को सदा ही स्वत्वहीन, पौरुषविहीन, विखण्डित और पतितरूप में चित्रित करवाने का प्रयास किया जाता है, क्योंकि ऐसा करवाने में विजयी जातियों का स्वार्थ रहता है। वे चाहती ही यही हैं कि विजित जाति को भाषा, इतिहास और संस्कृति की दृष्टि से दीन, हीन और दरिद्र दिखलाया जाए ताकि उनमें ऊँचा उठने की इच्छा ही समाप्त हो जाए। इसीलिए वे विजित जाति की भाषा, इतिहास और मान-बिन्दुओं के संबंध में भ्रम उत्पन्न करवा देते हैं अथवा उन्हें ग़लत ढंग से प्रस्तुत करवाते रहे हैं क्योंकि भाषा, साहित्य, इतिहास और संस्कृतिविहीन जाति का अपना कोई अस्तित्व ही नहीं होता। अतः पराधीनता के काल में अंग्रेज़ों द्वारा लिखा या लिखवाया गया भारत का इतिहास इस प्रवृत्ति से भिन्न हो ही नहीं सकता था। इस इतिहास में कदम-कदम पर उक्त सभी बातों के सन्दर्भ में ऐसी-ऐसी भ्रान्तियाँ पैदा कराई गईं, जिनसे भारतीयों में अपने राष्ट्र के प्रति गौरव की भावना, संस्कृति के प्रति सम्मान की इच्छाशक्ति और धर्म के प्रति निष्ठा पैदा

ही न हो, बल्कि द्वेष ही पैदा हो।

### भारत का वास्तविक इतिहास तो मानव-जाति का इतिहास

भारत के पुराणों तथा अन्य प्राचीन ग्रन्थों में सुलभ विवरणों के आधार पर ही नहीं, पाश्चात्य जगत् के आज के अनेक प्राणीशास्त्र के ज्ञाताओं, भूगर्भ-वैज्ञानिकों, भूगोलविदों, समाजशास्त्रियों और इतिहासकारों के मतानुसार भी सम्पूर्ण सृष्टि में भारत ही मात्र वह देश है जहाँ मानव ने प्रकृति-परमेश्वर के अद्भुत, अनुपम और अद्वितीय करिश्मों को निहारने के लिए सर्वप्रथम नेत्रोन्मेष किया था, जहाँ जन्मे हर व्यक्ति ने कंकर-कंकर में शंकर के साक्षात् दर्शन किए थे, जहाँ के निवासियों ने सर्वभूतों के हित में रत रहने की दृष्टि से प्राणीमात्र के कल्याण के लिए ‘सर्वे भवन्तु सुखिनः’, ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’, ‘आत्मवत् सर्वभूतेषु’-जैसे महान् सिद्धान्तों का मात्र निर्माण ही नहीं किया, अपितु सहस्राधुनिक वर्षों तक उनपर आचरण भी किया और जहाँ के साहित्य-मनीषियों ने वेद, ब्राह्मणों, आरण्यक, उपनिषदों-जैसे आध्यात्मिक ग्रन्थों, पुराणों, *रामायण* और *महाभारत*-जैसे ऐतिहासिक ग्रन्थों और *भगवद्गीता*-जैसे चिन्तन-प्रधान ग्रन्थों के रूप में पर्याप्त मात्र में श्रेष्ठतम ऐसा साहित्य दिया, जिसमें सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर आज तक का पूरा इतिहास सुलभ है, जिसमें मानव के उद्भव और विकास के क्रम की विभिन्न सीढ़ियों के साथ-साथ उसके आज की विकसित स्थिति तक पहुँचने का पूरा विवरण सुलभ है, अर्थात् उनमें पूरी मानवता का इतिहास विद्यमान है। यही कारण है कि विश्व के किसी भी क्षेत्र के साहित्य या वहाँ की सभ्यता को लें तो उसपर किसी-न-किसी रूप में भारत की छाप अवश्य ही मिलेगी। इसीलिए तो भारत के इतिहास को मानव-जाति का इतिहास कहा जाता है।

### भारतीय-परम्पराओं और तथ्यों के विपरीत

#### लिखा गया इतिहास भारत का इतिहास नहीं

किसी भी देश-विशेष का इतिहास उसके विभिन्न कालखण्डों में व्याप्त सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, साहित्यिक आदि स्थितियों; उनमें आए विभिन्न परिवर्तनों और स्थित रही परम्पराओं, विश्वासों, मान्यताओं के साथ-साथ महापुरुषों के गौरवगाथाओं आदि का सामूहिक लेखा-जोखा होता है। इसीलिए किसी भी देश-विशेष का इतिहास उस देश से संबंधित और उस देश में सुलभ साक्ष्यों के

आधार पर ही लिखा जाना चाहिए और ऐसा होने पर ही वह इतिहास उस देश का सत्य इतिहास होता है तथा वह उस देश की माटी से जुड़ पाता है और तभी उस देश के लोग उस पर गर्व कर पाते हैं। किन्तु भारतवर्ष का आधुनिक रूप में लिखा गया जो इतिहास आज सुलभ है, वह भारत के आधारों को पूर्णतः नकारकर और उसके प्राचीन साक्ष्यों को बिगाड़कर, यथा— कथ्यों की मनमानी व्याख्या कर, उसकी पुरातात्विक सामग्री के वैज्ञानिक-विश्लेषणों से निकले निष्कर्षों के मनचाहे अर्थ निकालकर, मनवाञ्छित विदेशी आधारों को अपनाकर लिखा गया है। इसीलिए उसमें ऐसे तत्त्वों का नितान्त अभाव है, जो इतिहास के सही लेखन के आवश्यक अंग हैं और जिनपर सम्पूर्ण देश के लोग एक साथ सामूहिक रूप में विश्वास और गर्व कर सकें।

आज भारत स्वतन्त्र है। यहाँ के नागरिक ही देश के शासक हैं। अतः यह अत्यन्त आवश्यक है कि देश के हर नागरिक के मन में भारतीयता की शुद्ध भावना जाग्रत् हो। भारतीयता की शुद्ध और सुदृढ़ भावना के अभाव में ही आज देश को विकट परिस्थितियों में से गुजरना पड़ रहा है। कम-से-कम आज भारत के प्रत्येक वयस्क नागरिक को यह ज्ञान तो हो ही जाना चाहिए कि वह इसी भारत का मूल नागरिक है, उसके पूर्वज घुमन्तु, लुटेरे और आक्रान्ता नहीं थे। वह उन पूर्वजों का वंशज है जिन्होंने मानव के लिए अत्यन्त उपयोगी संस्कृति का निर्माण ही नहीं किया, विश्व को उदात्त ज्ञान और ध्यान भी दिया है और उसके पूर्वजों ने विश्व की सभी सभ्यताओं का नेतृत्व किया है। साथ ही उन्होंने अखिल विश्व को अपने-अपने चारित्र्य सीख लेने की प्रेरणा भी दी है—

‘एतद्देशप्रसूतस्य सकाशदग्रजन्मनः।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः॥’

इतिहास घटित होता है निर्देशित नहीं, जबकि भारत के मामले में इतिहास निर्देशित है। इसलिए आधुनिक ढंग से लिखा हुआ भारत का इतिहास, इतिहास की उस शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार, जो भारतीय-ऋषियों ने दी थी,

1. *मनुस्मृति*, 2.20

2. ‘धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम्।

पूर्ववृत्तकथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते ॥’

—*विष्णुधर्मोत्तरपुराण*, 3.15.1

अर्थात्, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के उपदेश सहित एवं प्राचीन चरितों से युक्त ग्रन्थ ही ‘इतिहास’ कहा जाता है।



इतिहास है ही नहीं। अतः आज आधुनिक रूप में लिखित भारत के इतिहास पर गम्भीरता से विचार करने की आवश्यकता है और वह भी भारतीय-साक्ष्यों के आधार पर; क्योंकि वर्तमान में सुलभ इतिहास निश्चित ही भारत का और उस भारत का, जो एक समय विश्वगुरु था, जो सोने की चिड़िया कहलाता था और जिसकी संस्कृति विश्वव्यापिनी थी, कदापि नहीं है।

---

---

# परिशिष्ट

---

---

## परिशिष्ट-क

### महाभारत-युद्ध के पश्चात् भारत के विभिन्न राजवंशों के राजागण

**अयोध्या—** महाभारत के युद्ध से पूर्व यहाँ राजा बृहद्बल का राज्य था, जिसने दुर्योधन की ओर से युद्ध में भाग लिया था और जिसे चक्रव्यूह-भेदन के समय अभिमन्यु ने मार दिया था।

**हस्तिनापुर—** महाभारत-युद्ध से पूर्व यहाँ की गद्दी पर महाराज धृतराष्ट्र बैठे थे। युद्ध के पश्चात् युधिष्ठिर गद्दी पर बैठे। 36 वर्ष राज्य करने के पश्चात् इन्होंने अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को सौंप दी।

**मगध—** सम्राट् जरासन्ध के पुत्र सहदेव ने, जिसे जरासन्ध की मृत्यु के बाद श्रीकृष्ण ने मगध की गद्दी पर बैठाया था, युधिष्ठिर की ओर से युद्ध में भाग लिया था और उसकी मृत्यु भी इसी युद्ध में हो गई थी। इसके पश्चात् यह वंश जरासन्ध के पिता के नाम पर चला।

विभिन्न पुराणों में दिए गए विवरणों के अनुसार महाभारत के युद्ध के बाद अयोध्या, हस्तिनापुर और मगध-राज्यों की गद्दियों पर बैठे राजाओं के वंशावली के साथ-साथ मगध की गद्दी पर बैठनेवाले विभिन्न राजवंशों के राजाओं के नाम इस प्रकार हैं—

#### अयोध्या के सूर्यवंशी राजा

कुल 30 राजाओं के नाम मिलते हैं, जो इस प्रकार हैं—

1. बृहन्क्षत्र/बृहद्रथ/बृहत्क्षत्र, 2. उरुक्षत्र/उरुकिय/उरुयक्ष, 3. वत्सव्यू/वत्सवृद्ध/वत्सव्यूह, 4. प्रतिव्योम, 5. दिवाकर, 6. सहदेव, 7. बृहदध्व/ध्रुवाध्व, 8. भानुरथ/भानुमान, 9. प्रतिताश्व/प्रतिपाथ/प्रतिकाश्व, प्रतितस्य, 10. सुप्रतीक, 11. मरुदेव, 12. सुनक्षत्र, 13. किन्नर या पुश्कर, 14. अन्तरिक्ष/अनधरक्षक, 15.

- सुवर्ण/सुपर्ण/सुतया, 16. अमित्रजित्, 17. बृहद्राज/ब्रह्मभज, 18. धर्मी/वीर्यवान्/बर्हि, 19. कृतंजय/धनंजय, 20. रणंजय, 21. संजय, 22. शाक्य, 23. शुद्धोदन, 24. सिद्धार्थ/गौतम बुद्ध (राजा नहीं बने थे), 25. राहुल/लांगल/पुष्पकल, 26. प्रसेनजित्, 27. क्षुद्रक/विरुद्रक/कहुद्रक/विरुद्रक, 28. कुण्डक/रणक/कुलक, 29. सुरथ, 30. सुमित्र।

#### हस्तिनापुर के चन्द्रवंशी राजा

कुल 31 राजाओं के नाम मिलते हैं, जो इस प्रकार हैं—

1. युधिष्ठिर (3138-3102 ई पू = 36 वर्ष), 2. परीक्षित (3102-3042 ई पू = 60 वर्ष), 3. जनमेजय (3042-2958 ई पू = 84 वर्ष), 4. शतानीक (प्रथम), 5. सहस्रानीक, 6. अश्वमेधदत्त, 7. अधिशीमकृष्ण, 8. निचक्षु/निचक्ष, 9. उष्ण या भूरि, 10. चिद्धरथ/चित्ररथ, 11. शुचिद्रथ/सुचिद्रव, 12. वृष्णिवत/वृष्णिमान्, 13. सुषेण, 14. सुनीथ या सुतीर्थ, 15. रुथ/रुच, 16. वृवधु/वृचक्षु, 17. सुखीबल, 18. परिणव/परिप्लव, 19. सुपतस/सुनय, 20. मेधावी/मेधाविन, 21. पुरंजय/नृपंजय, 22. उर्व/मृदु/दुर्व, 23. तिग्मात्मा/निग्म/निमि, 24. बृहद्रथ, 25. वसुदान/वसुदामन, 26. शतानीक (द्वितीय), 27. उदयन/उद्भव, 28. वहीनर, 29. दण्डपाणि, 30. निरामित्र, 31. क्षेमक

#### मगध के विभिन्न राजवंश

महाभारत-युद्ध के पश्चात् अर्थात् 3138 ई पू में मगध की गद्दी पर बार्हद्रथ-वंश के मार्जारि के बैठने से लेकर गुप्त वंश से पूर्व तक के 8 वंशों के कुल 97 राजाओं ने 2,811 वर्ष तक राज्य किया। अलग-अलग वंशों के राजाओं के नाम और राज्यकाल इस प्रकार हैं—

#### प्रथम राजवंश : बार्हद्रथ-वंश के 22 राजा (राज्यकाल 1,006 वर्ष)

1. मार्जारि/सोमाधि, (3138-3080 ई पू = 58 वर्ष) 2. श्रुतश्रवा/श्रुतवान् (3080-3016 ई पू = 64 वर्ष), 3. अप्रतायु/अयुतायु (3016-2980 ई पू = 36 वर्ष), 4. निरामित्र/निरामित्र (2980-2940 ई पू = 40 वर्ष), 5. सुक्षत्र/सुरक्ष (2940-2882 ई पू = 58 वर्ष), 6. बृहत्कर्मा (2882-2859 ई पू = 23 वर्ष), 7. सेनाजित/सेनजित (2859-2809 ई पू = 50 वर्ष), 8. श्रुतंजय

(2809-2769 ई पू = 40 वर्ष), 9. महाबल/महाबाहु (2769-2734 ई पू = 35 वर्ष), 10. शुचि (2734-2676 ई पू = 58 वर्ष), 11. क्षेम (2676-2648 ई पू = 28 वर्ष), 12. सुव्रत/अनुव्रत (2648-2584 ई पू = 64 वर्ष), 13. सुनेत्र/धर्मनेत्र (2584-2549 ई पू = 35 वर्ष), 14. निर्वृत्ति/ निवृत्ति (2549-2491 ई पू = 58 वर्ष), 15. त्रिनेत्र/सुव्रत (2491-2453 ई पू = 38 वर्ष), 16. द्रुहसेन/दृढ़सेन/द्युमत्सेन (2453-2395 ई पू = 58 वर्ष), 17. सुमति/सुचल (2395-2362 ई पू = 33 वर्ष), 18. सुचल/अबल (2362-2340 ई पू = 22 वर्ष), 19. सुनेत्र (2340-2300 ई पू = 40 वर्ष), 20. सत्यजित (2300-2217 ई पू = 83 वर्ष), 21. वीरजित/विश्वजित् (2217-2182 ई पू = 35 वर्ष), 22. रिपुंजय (2182-2132 ई पू = 50 वर्ष)

### द्वितीय राजवंश, प्रद्योत-वंश के 5 राजा (राज्यकाल : 138 वर्ष)

1. प्रद्योत (2132-2109 ई पू = 23 वर्ष), 2. पालक (2109-2085 ई पू = 24 वर्ष), 3. विशाखयूप (2085-2035 ई पू = 50 वर्ष), 4. सूर्यक/राजक/जयक (2035-2014 ई पू = 21 वर्ष), 5. नन्दिवर्धन/कीर्तिवर्धन (2041-1994 ई पू = 20 वर्ष)

### तृतीय राजवंश : शिशुनाग-वंश के 10 राजा (राज्यकाल : 360 वर्ष)

1. शिशुनाग (1994-1954 ई पू = 40 वर्ष), 2. काकवर्ण/काकवर्णा (1954-1918 ई पू = 36 वर्ष), 3. क्षेमधर्मा/क्षेमवर्मा (1918-1892 ई पू = 26 वर्ष), 4. क्षेत्रज/क्षेत्रज्ञ/क्षेत्रोजा (1892-1852 ई पू = 40 वर्ष), 5. बिम्बिसार (1852-1814 ई पू = 38 वर्ष), 6. अजातशत्रु (1814-1787 ई पू = 27 वर्ष), 7. दर्भक/दर्शक (1787-1752 ई पू = 35 वर्ष), 8. उदीयन/उदायी (1752-1719 ई पू = 33 वर्ष), 9. नन्दिवर्धन (1719-1677 ई पू = 42 वर्ष), 10. महानन्दिन (1677-1634 ई पू = 43 वर्ष)

### चतुर्थ राजवंश : नन्द-वंश के राजा (राज्यकाल : 100 वर्ष)

1. महापद्मनन्द (1634-1546 ई पू = 88 वर्ष), 2. सुमाल्य आदि पुत्र (1546-1534 ई पू = 12 वर्ष)

### पंचम राजवंश : मौर्य-वंश के 12 राजा (राज्यकाल 316 वर्ष)

1. चन्द्रगुप्त मौर्य (1534-1500 ई पू = 34 वर्ष), 2. बिन्दुसार (1500-1472 ई पू = 28 वर्ष), 3. अशोक/अशोकवर्धन (1472-1436 ई पू = 36 वर्ष), 4. सुपार्श्व/सुयश/कुणाल (1436-1428 ई पू = 8 वर्ष), 5. दशरथ/बन्धुपालित (1428-1420 ई पू = 8 वर्ष), 6. इन्द्रपालित (1420-1350 ई पू = 70 वर्ष), 7. हर्षवर्धन (1350-1342 ई पू = 8 वर्ष), 8. संगत/सम्प्रति (1342-1333 ई पू = 9 वर्ष), 9. शालिशूलक/बृहस्पति (1333-1320 ई पू = 13 वर्ष), 10. सोमशर्मा/देवधर्मा (1320-1313 ई पू = 7 वर्ष), 11. शतधन्वा/शतधनु (1313-1305 ई पू = 8 वर्ष), 12. बृहद्रथ (1305-1218 ई पू = 87 वर्ष)

### षष्ठम राजवंश : शुंग-वंश के 10 राजा (राज्यकाल 300 वर्ष)

1. पुष्यमित्र (1218-1158 ई पू = 60 वर्ष), 2. अग्निमित्र (1158-1108 ई पू = 50 वर्ष), 3. वसुमित्र (1108-1072 ई पू = 36 वर्ष), 4. सुज्येष्ठ/वसुमित्र (1072-1055 ई पू = 17 वर्ष), 5. भद्रक/अन्धक (1055-1025 ई पू = 30 वर्ष), 6. पुलिन्दक/पुलिन्द (1025-992 ई पू = 33 वर्ष), 7. घोषवसु/घोष/घोषसुत (992-989 ई पू = 3 वर्ष), 8. वज्रमित्र (989-960 ई पू = 29 वर्ष), 9. भागवत (960-928 ई पू = 32 वर्ष), 10. देवभूति/क्षेमभूमि (928-918 ई पू = 10 वर्ष)

### सप्तम राजवंश : कण्व-वंश के 4 राजा (राज्यकाल : 85 वर्ष)

1. वसुदेव (918-879 ई पू = 39 वर्ष), 2. भूमिमित्र (879-855 ई पू = 24 वर्ष), 3. नारायण (855-843 ई पू = 12 वर्ष), 4. सुशर्मा (843-833 ई पू = 10 वर्ष)

### अष्टम राजवंश : आंध्र-वंश के 32 राजा (राज्यकाल : 506 वर्ष)

1. श्रीमुख/शिमुक/शिशुक (833-810 ई पू = 23 वर्ष), 2. श्रीकृष्ण शातकर्णि (810-792 ई पू = 18 वर्ष), 3. श्रीमल्ल शातकर्णि (792-782 ई पू = 10 वर्ष)

वर्ष), 4. पूर्णोत्संग (782-764 ई पू = 18 वर्ष), 5. श्रीशातकर्णि (764-708 ई पू = 56 वर्ष), 6. स्कन्धस्तविन/स्तम्भी (708-690 ई पू = 18 वर्ष), 7. लम्बोदर (690-672 ई पू = 18 वर्ष), 8. अपिलक/आपितक (672-660 ई पू = 12 वर्ष), 9. मेघस्वाति (660-642 ई पू = 18 वर्ष), 10. सतस्वाति (642-624 ई पू = 18 वर्ष), 11. स्कन्दस्वाति/स्कन्द शातकर्णि (624-617 ई पू = 7 वर्ष), 12. मृगेन्द्र स्वातिकर्ण/मृगेन्द्र शातकर्णि (617-614 ई पू = 3 वर्ष), 13. कुन्तल शातकर्णि (614-606 ई पू = 8 वर्ष), 14. सौम्य शातकर्णि (606-604 ई पू = 2 वर्ष), 15. सत शातकर्णि/स्वातिकर्ण (604-603 ई पू = 1 वर्ष), 16. पुलोमन शातकर्णि/पुलोमावि (603-567 ई पू = 36 वर्ष), 17. मेघ शातकर्णि (567-529 ई पू = 38 वर्ष), 18. अरिष्ट शातकर्णि (529-504 ई पू = 25 वर्ष), 19. हल (504-499 ई पू = 5 वर्ष), 20. मन्तलक/पत्तलक (499-494 ई पू = 5 वर्ष), 21. पुरीन्द्रसेन/पुलिन्द्रसेन (494-473 ई पू = 21 वर्ष), 22. सुन्दर शातकर्णि (473-472 ई पू = 1 वर्ष), 23. चकोर शातकर्णि (472-472 ई पू ), 24. महेन्द्र शातकर्णि (472-471 ई पू ), 25. शिव शातकर्णि/स्वाति (471-443 ई पू = 28 वर्ष), 26. गौतमीपुत्र श्रीशातकर्णि (443-418 ई पू = 25 वर्ष), 27. पुलोमन/पुलोमावि द्वितीय (418-386 ई पू = 32 वर्ष), 28. शिवश्री शातकर्णि (386-379 ई पू = 7 वर्ष), 29. शिवस्कन्द शातकर्णि (379-372 ई पू = 7 वर्ष), 30. यज्ञश्री शातकर्णि (372-343 ई पू = 29 वर्ष), 31. विजयश्री शातकर्णि (343-337 ई पू = 6 वर्ष), 32. चन्द्रश्री शातकर्णि (337-334 ई पू = 3 वर्ष), 33. पुलोमन/पुलोमावि तृतीय (334-327 ई पू = 7 वर्ष)

#### नवम राजवंश : गुप्त वंश के 7 राजा

(राज्यकाल : 245 वर्ष)

1. चन्द्रगुप्त प्रथम 'विजयादित्य' (327-320 ई पू = 7 वर्ष), 2. समुद्रगुप्त 'अशोकादित्य प्रियदर्शन' (320-269 ई पू = 51 वर्ष), 3. चन्द्रगुप्त द्वितीय 'विक्रमादित्य' (269-233 ई पू = 36 वर्ष), 4. कुमारगुप्त प्रथम 'महेन्द्रादित्य' (233-191 ई पू = 42 वर्ष), 5. स्कन्दगुप्त 'पराक्रमादित्य' (191-166 ई पू = 25 वर्ष), 6. नरसिंहगुप्त 'बालादित्य' (166-126 ई पू = 40 वर्ष), 7. कुमारगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य (126-82 ई पू = 44 वर्ष)

उक्त वंशावली के सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि कई राजाओं को

अलग-अलग पुराणों में अलग-अलग नामों से सम्बोधित किया गया है। यहाँ या तो अलग-अलग नाम दे दिए हैं या अधिकतर रचनाओं में उपलब्ध एक जैसे नाम को ले लिया है।<sup>1</sup>

1. विभिन्न पुराणों में दिए गए नामों के साथ-साथ उक्त सूची में सूर्यवंश के राजाओं के लिए श्रीराम साठे (1920-2006) की पुस्तक '*Dates of the Buddha*', चन्द्रवंश के लिए आचार्य रामदेव-कृत '*भारतवर्ष का इतिहास*', खण्ड-2 और मगध-साम्राज्य के विभिन्न वंशों के राजाओं के नामों और उनके राज्यकालों के लिए उक्त स्रोतों के अतिरिक्त पृं कोटावेंकटचलम् (1885-1859) की पुस्तक '*The plot in Indian chronology*' तथा पृं भगवद्दत्त के '*भारतवर्ष का बृहत् इतिहास*', भाग-2 से भी सहयोग लिया गया है।

## परिशिष्ट-ख

### गौतम बुद्ध के काल-निर्धारण के सन्दर्भ में विभिन्न तिथियाँ

उ त्रीसवीं शताब्दी में पाश्चात्य विद्वानों ने बुद्ध के काल-निर्धारण के संदर्भ में 5वीं शताब्दी ई पू से 25वीं शताब्दी ई पू तक की अनेक तिथियाँ एकत्रित की थीं, जिनका डॉ. विल्सन ने विश्लेषण किया था। उनकी विश्लेषणात्मक टिप्पणी *ओरियंटल मैगजीन*, 1825 में प्रकाशित हुई थी। इतिहासकार श्रीराम श्रीपाद साठे ने अपनी पुस्तक 'डेट्स ऑफ दि बुद्ध' के पृष्ठ 2 से 4 पर एडवर्ड थॉमस द्वारा संपादित और 1971 में इंडोलॉजिकल हाऊस, दिल्ली से प्रकाशित 'ऐसेज़ ऑन इण्डियन ऐंटीक्वेरीज़ : हिस्टोरिक, नूमिसमेटिक एण्ड पेलसोग्राफिक ऑफ लेट जेम्स प्रिंसेप' के पृष्ठ 164 के आधार पर डॉ. विल्सन की तिथियों के ब्योरे के साथ-साथ जेम्स प्रिंसेप (1799-1840) तथा कुछ अन्य लोगों द्वारा दी गई तिथियाँ दी हैं, जो इस प्रकार हैं—

#### (क) विल्सन द्वारा दी गई तिथियाँ :

1. पद्माकरपो (भूटान का 16वीं सदी का एक बौद्ध लामा)	1858 ई पू
2. कल्हण की <i>राजतरंगिणी</i>	1332 ई पू
3. अबुल फजल (1551-1602)	1366 ई पू
4. चीनी इतिहासज्ञों की एक द्विपदी	1036 ई पू
5. डे गुइन्स के शोध	1027 ई पू
6. गिओर्गी	959 ई पू
7. बेली (1736-1793)	1031 ई पू
8. विलियम जोन्स (1746-1794)	1027 ई पू
9. बेन्टली एक जगह 1084 ई पू ; दूसरी जगह 1004 ई पू	
10. जीहरिंग (मंगोल तिथिक्रम से)	994 ई पू
11. जापानी विश्वकोश बुद्ध-जन्म : 1027 ई पू ; निर्वाण : 964 ई पू	
12. माटोनन-लिन (12वीं सदी का चीनी इतिहासज्ञ)	1027 ई पू

13. एम्. क्लापरोथ	1027 ई पू
14. एम. रेमुसेट (मृत्यु का समय)	970 ई पू
15. ल्हासा में पद्माकरपो द्वारा दी गई नौ तिथियों के औसत के आधार पर अपनाया गया संवत् जिसे स्वयं पद्माकरपो ने ही अस्वीकार कर दिया था	835 ई पू

#### (ख) जेम्स प्रिंसेप द्वारा दी गई तिथियाँ :

विल्सन द्वारा दी गई उक्त तिथियों को उद्धृत करके प्रिंसेप ने उन्हें बड़े बुद्ध से संबंधित बताते हुए कुछ अन्य तिथियाँ भी दी हैं जिन्हें उसने बुद्ध द्वितीय के लिए बताया है। वे इस प्रकार हैं—

16. वर्मा के हिसाब से— क्राफर्ड द्वारा स्थानीय तिथिक्रम के अनुसार दी गई बुद्ध की निर्वाण-तिथि	544 ई पू
17. श्रीलंकाई गणना से— टर्नर द्वारा दी गई बुद्ध की मृत्यु तिथि (सीलोन के 1834 के पंचांग के अनुसार)	534 ई पू
18. स्यामी गणना से— फिन्लेसन के अनुसार स्याम में बुद्ध धर्म का प्रवेश 529 ई पू में हुआ था। ( <i>ओरियंटल मैगजीन</i> , 1825)	544 ई पू
19. असम के राजगुरु के अनुसार बुद्ध का महानिर्वाण अजातशत्रु के गद्दी पर बैठने के 18वें वर्ष में और सिकन्दर के समकालीन चन्द्रगुप्त मौर्य से 196 वर्ष पूर्व हुआ था - वह $348 + 196 = 544$ ई पू में हुआ।	544 ई पू

#### (ग) अन्य स्रोतों से प्राप्त तिथियाँ :

उपर्युक्त तिथियों के अतिरिक्त कुछ अन्य विद्वानों/स्रोतों से प्राप्त तिथियाँ इस प्रकार हैं—

20. केन्टन-परम्परा	485 ई पू
21. फाह्यान (337-422) द्वारा सिंधु पार करने पर यात्रा के प्रथम पड़ाव पर साधुओं को दिए गए उत्तर से	1050 ई पू
22. मणिमेखला (तमिल बौद्ध-ग्रन्थ)	1616 ई पू
23. डॉ. देवसहाय त्रिवेद (पौराणिक गणनानुसार)	1793 ई पू
24. पं. कोटावेंकटचलम् (पौराणिक गणनानुसार)	1807 ई पू
25. मैक्समूलर ने अपनी पुस्तक ' <i>हिस्ट्री ऑफ एनशिएन्ट संस्कृत लिटरेचर</i> ' में से तिब्बतियों की पुस्तकों के आधार पर निम्नलिखित तिथियाँ दी हैं—	

2422, 2148, 2139, 2135, 1310, 1060,  
884, 882, 880, 837, 752, 653, 576



## परिशिष्ट-ग

### महाभारत में वर्णित एक राष्ट्र के रूप में भारत

महाभारत के निम्नलिखित श्लोकों में भारतभूमि के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए उसे एक राष्ट्र के रूप में चित्रित किया गया है—

भीष्मपर्व के अध्याय 9 में धृतराष्ट्र के यह पूछने पर कि—

‘यदिदं भारतं वर्षं यत्रोदं मूर्छितं बलम्।

यत्रातिमात्रलुब्धोऽयं पुत्रो दुर्योधनो मम ॥1॥’

अर्थात्, जिस भारतवर्ष के लिए यह समूची सेना मुग्ध हो रही है, मेरा बेटा दुर्योधन अत्यन्त लोभी हो रहा है, जिसके लिए पाण्डव लोलुप हो रहे हैं और मेरा मन भी मग्न हो रहा है, उसका यथार्थ विवरण तुम विस्तारपूर्वक मुझे सुनाओ।

संजय बताता है—

‘महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षवानपि।

विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः ॥ 11 ॥’

अर्थात्, इस भारतवर्ष में महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान, ऋक्षवान, विन्ध्य और पारियात्र— ये पहाड़ों के सात कुल हैं। इन सब पहाड़ों के पास जाने माने हजारों विपुल, सारवान, विचित्र शिखरोंवाले पहाड़ विद्यमान हैं।

‘नदीं पिबन्ति विपुलां गंगां सिंधुं सरस्वतीम्।

गोदावरीं नर्मदां च बाहुदां च महानदीम् ॥ 14 ॥’ इत्यादि

अर्थात्, इस भारतवर्ष में लोग अनेक नदियों का पानी पीते हैं, यथा— गंगा, सिंधु, सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा, महानदी, बाहुदा, शतद्रु, चन्द्रभागा, महानदी, यमुना, वृषद्वती, विपाशा, विपापा, स्थूल बालुका, वेत्रवती, कृष्णवेणा, इरावती, वितस्ता, पयोष्णी, देविका आदि।

‘काश्मीराः सिंधुसौवीरा गान्धारा दर्शकास्तथा।

अभीसारा उलूताश्च शैवला बाहिलकास्तथा ॥ 53-54 ॥’ इत्यादि

अर्थात्, महाराज! अब मुझसे नदियों और पर्वतों के बाद भारत के जनपदों के नाम सुनिए। इनमें कुरु-पांचाल, शाल्व, माद्रेय, जांगल, शूरसेन, पुलिन्द, बोध, माल, मत्स्य, कुशल्य, सौशल्य, कुन्ति, कान्ति, कोशल, चेदि, वत्स, करुष, भोज, सिंधु-पुलिन्द, उत्तमाश्व, दशार्ण, मेकल, उत्कल, पांचाल, कौशज, नैकपृष्ठ, धुरंधर, गोधा, मद्र, कलिंग, काशि, अपरकाशि, आंध्रदेश तथा अन्तर्गिरि, ब्रह्मगिरि, अंगमलज, मगध, मानवर्जक, काश्मीर, सिंधु-सौवीर, गान्धार, दर्शक, अभिसार, उलूत, शैवाल, बाह्लिक, द्रविड़, केरल आदि सम्मिलित हैं।

स्पष्ट है कि महाभारतकार के सामने भी पूरे भारत का एक राष्ट्र के रूप में चित्र स्पष्ट था।

### आधार-ग्रन्थ-सूची

#### हिंदी आधार-ग्रन्थ :

1. अथर्ववेदसंहिता (भाषा-भाष्य) (2 खण्ड), भाष्यकार : पंड जयदेव शर्मा, प्रकाशक : आर्य साहित्य मण्डल लिउ, अजमेर, 1928
2. अयोध्या का इतिहास, लेखक : श्री अवधवासी लाल सीताराम, प्रकाशक : हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग
3. आदिमानव का आदिदेश, लेखक : रामदत्त सांकृत्य, चूरू (राजस्थान)
4. आर्यों का आदि देश और उनकी सभ्यता, लेखक : स्वामी विद्यानन्द सरस्वती, प्रकाशक : इन्टरनेशनल आर्यन फाउन्डेशन, 302, कैप्टन, ब्री, मौन्टमैरी रोड, बांद्रा, मुम्बई-50
5. आर्यों का आदिनिवास मध्य हिमालय, लेखक : श्री भजनसिंह, प्रकाशक : भागीरथी प्रकाशन गृह, सुमन चौक, टिहरी
6. इतिहास तिमिरनाशक, लेखक : शिवप्रसाद सितारे हिंद, मतवै मेडिकल हॉल, बनारस
7. इत्सिंग की भारत-यात्रा, अनुवादक : लाल संतराम बीउएउ, प्रकाशक : इण्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग
8. ईशादि नौ उपनिषद्, प्रकाशक : गीताप्रेस, गोरखपुर
9. ऋग्वेदसंहिता (भाषा-भाष्य) (7 खण्ड), भाष्यकार : पंड जयदेव शर्मा, प्रकाशक : आर्य साहित्य मण्डल लिउ, अजमेर, 1951
10. कादम्बरी, लेखक : वाणभट्ट, प्रकाशक : विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी, (द्वितीय संस्करण, 1980)
11. कुछ मोती कुछ सीप, लेखक : श्री धर्मवीर, प्रकाशक, प्रकाशक : विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी
12. चीनी-यात्री फाह्यान का यात्रा-विवरण, अनुवादक : श्री जगन्मोहन वर्मा, प्रकाशक : काशी नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी, 1996

13. **तैत्तिरीयब्राह्मणम्** (4 खण्ड), **भाष्यकार** : भट्ट भास्कर मिश्र, **संपादक** : एउ महादेव शास्त्री, मैसूर, 1908
14. **प्राचीन भारत, लेखक** : डॉ. रमेशचन्द्र मजूमदार, **प्रकाशक** : मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2002
15. **प्राचीन भारत में हिंदू-राज्य, लेखक** : बाबू वृन्दावनदास, **प्रकाशक** : साहित्य प्रकाशन, मालीवाड़ा, 1972
16. **भारत का इतिहास (भाग 1), लेखकद्वय** : इलियट एवं डाउसन, **प्रकाशक** : शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा
17. **भारत का इतिहास, लेखक** : श्री के.ए.अ. अन्तोनावाकश, सोवियत संघ में प्रकाशित
18. **भारत के अतीत की खोज (1784-1838), लेखक** : ओमप्रकाश केजरीवाल, **प्रकाशक** : मनीष प्रकाशन, अल्मोड़ा, उत्तरप्रदेश
19. **भारतवर्ष का इतिहास (3 खण्ड), लेखक** : आचार्य रामदेव, **प्रकाशक** : गुरुकुल विश्वविद्यालय, कांगड़ी, हरिद्वार
20. **भारतवर्ष का इतिहास (प्राचीन एवं अर्वाचीन), लेखक** : श्याम बिहारी मिश्र, **प्रकाशक** : हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
21. **भारतवर्ष का बृहत् इतिहास (2 भाग), लेखक** : पंड. भगवदत्त, **प्रकाशक** : इतिहास प्रकाशन मण्डल, पटेल नगर,
22. **भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें, लेखक** : पुरुषोत्तम नागेश ओक, **प्रकाशक** : भारतीय साहित्य सदन, नयी दिल्ली, 2003
23. **भारतीय इतिहास पर दासता की कालिमा, लेखक** : श्री सियाराम सक्सेना, **प्रकाशक** : हिंदी हितरक्षक समिति, आगरा
24. **भारतीय एकात्मकता के अग्रदूत आद्य जगद्गुरु शंकराचार्य, लेखक** : रघुनन्दन प्रसाद शर्मा, **प्रकाशक** : सूर्य भारती प्रकाशन, नयी सड़क, नयी दिल्ली-110 006
25. **भारतीय ज्योतिष, लेखक** : शंकर बालकृष्ण दीक्षित, **अनुवादक** : शिवनाथ झारखण्डी, **प्रकाशक** : प्रकाशन ब्यूरो, सूचना विभाग, 1957
26. **मज्झिमनिकाय (सुत्तपिटक का), अनुवादक** : भिक्षु राहुल सांकृत्यायन, **प्रकाशक** : महाबोधिसभा, सारनाथ, वाराणसी
27. **मनुस्मृति अर्थात् मानव धर्मशास्त्र, अनुवादक** : पंड. गिरिजा प्रसाद द्विवेदी, **प्रकाशक** : मनोहरलाल भार्गव, लखनऊ, 1917
28. **महापुराण-सार, लेखक** : रघुनन्दन प्रसाद शर्मा, **प्रकाशक** : विश्व हिंदू

- परिषद्, संकट मोचन आश्रम (श्रीहनुमान मन्दिर), सेक्टर -6, रामकृष्णपुरम, नयी दिल्ली-110 022
29. **महाभारत (6 भाग), प्रकाशक** : गीताप्रेस, गोरखपुर, 1955
30. **महाभारत युद्ध की ऐतिहासिकता और उसका काल-निर्णय, लेखक** : श्री राजेन्द्र सिंह, दिल्ली (अप्रकाशित)
31. **महावंश, प्रकाशक** : हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
32. **मेगस्थनीज का भारत-वर्णन, अनुवादक** : श्री अवध बिहारी शरण, **प्रकाशक** : काशी नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी
33. **यजुर्वेदसंहिता (भाषा-भाष्य) (2 खण्ड), भाष्यकार** : पंड. जयदेव शर्मा, **प्रकाशक** : आर्य साहित्य मण्डल लिउ, अजमेर, 1930
34. **राजस्थान, लेखक** : कोलोनल जेम्स टॉड, **संपादक** : रायबहादुर पं. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, **प्रकाशक** : क्षेमविलास प्रेस, पटना, 1913
35. **विश्व इतिहास के विलुप्त अध्याय, लेखक** : पुरुषोत्तम नागेश ओक, **प्रकाशक** : भारतीय साहित्य सदन, नयी दिल्ली, 2007
36. **विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ, लेखक** : श्रीराम गोयल, **प्रकाशक** : विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी, 1994
37. **विश्वव्यापी भारतीय-संस्कृति, लेखक** : रघुनन्दन प्रसाद शर्मा, **प्रकाशक** : सांस्कृतिक गौरव संस्थान, रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली - 22
38. **विश्वव्यापिनी संस्कृति, लेखकद्वय** : डॉ. लीना रस्तोगी और सुरेश मापारी, **प्रकाशक** : विश्व हिंदू परिषद्, नागपुर
39. **विष्णुगुप्त चाणक्य, लेखक** : वीरेन्द्र कुमार गुप्त, **प्रकाशक** : राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
40. **वेणीसंहार (श्रीभट्टनारायणविरचित), हिंदी-अनुवाद, अनुवादक** : शिवराज शास्त्री, **प्रकाशक** : साहित्य भण्डार, इलाहाबाद, 1967
41. **वेद धरातल, लेखक** : गिरीशचन्द्र अवस्थी, **प्रकाशक** : वाङ्मय सुप्रकाशन, लखनऊ
42. **वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास (4 भाग), लेखक** : पुरुषोत्तम नागेश ओक, **प्रकाशक** : भारतीय साहित्य सदन, नयी दिल्ली
43. **वैदिक सम्पत्ति, लेखक** : रघुनन्दन शर्मा, **प्रकाशक** : कच्छ केसल, मुम्बई-4
44. **शूद्र पूर्वी कोण होते, लेखक** : डॉ. भीमराव अम्बेडकर, **अनुवादक** : चांगदेव भवनाराव खैरमोड़े, **प्रकाशक** : सुगावा प्रकाशन

45. श्रीमद्भागवतमहापुराण (2 भाग), प्रकाशक : गीताप्रेस, गोरखपुर
46. श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण (2 भाग), प्रकाशक : गीताप्रेस, गोरखपुर, 1960
47. श्रीविष्णुपुराण, प्रकाशक : गीताप्रेस, गोरखपुर, 1933
48. संक्षिप्त पद्मपुराण, प्रकाशक : गीताप्रेस, गोरखपुर
49. संक्षिप्त भविष्यपुराण, प्रकाशक : गीताप्रेस, गोरखपुर, जनवरी, 1992
50. संस्कृति के चार अध्याय, लेखक : रामधारी सिंह 'दिनकर', प्रकाशक : साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली, 1956
51. सत्यार्थप्रकाशक, लेखक : स्वामी दयानन्द सरस्वती, प्रकाशक : आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, 1970
52. सामवेद का सुबोध भाष्य, भाष्यकार : पंड श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, प्रकाशक : स्वाध्याय मण्डल, पारडी, गुजरात, 1985
53. सूर्यसिद्धान्त (श्री कमलाकरभट्टविरचित सौरवासनासहितः), संपादक : पंड श्रीचन्द्र पाण्डेय, प्रकाशक : सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1991
54. स्मृतियों में भारतीय जीवन-पद्धति, लेखक : रघुनन्दन प्रसाद शर्मा, प्रकाशक : सांस्कृतिक गौरव संस्थान, रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली-22
55. हमारी विरासत, लेखक : डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, अनुवादक : विजय कुमार मल्होत्रा, वाराणसी
56. हिंदुत्व, लेखक : प्रो. रामदास गौड़, प्रकाशक : ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 1938
57. हिंदू-संस्कृति : उसके ग्रन्थ और वर्तमान स्थिति, लेखक : रघुनन्दन प्रसाद शर्मा, प्रकाशक : हिंदू राइटर्स फोरम, 129 बी, एम.आई.ए.जी. राजौरी गार्डन, नयी दिल्ली-27
58. हिंदू-सभ्यता ('हिंदू सिविलाइजेशन' का हिंदी-अनुवाद), लेखक : डॉ. राधाकृष्णन, प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

#### अंग्रेजी-ग्रन्थ :

1. Alberuni's India : An Account of the Religion, Philosophy, Literature, Geography, Chronology, Astronomy, Customs, Laws and Astrology of India (2 Vols.), Translated into English by Prof. (Dr.) Edward C.

- Sachau, Published by Trubner & Co., London, 1888
2. Ancient India as described by Megasthenes and Arrian, by J.W. McCrindle, Published By Trubner & Co., London, 1877
3. A Sanskrit-English Dictionary, by Sir Monier Williams, Published by Oxford, London, 1872
4. Chips from a German workshop, Vol. I., by F. Max Muller, Published by Charles Scribner & Co., second edition, 1867
5. Chronology of Kashmir History Reconstructed (Arya Vijnana series. Publication 18), by Pt. Kota Venkatachalam, Published by Guntur Dt., 1955
6. Chronology of Nepal history reconstructed: (Nepalaraja vamsavali), Volume 16 of Arya vijnana publication 16, by Kota Venkatachalam, Published by Sahini P, 1953
7. Dates of the Buddha, by Sri Ram Sathe, Published by Bharatiya Itihas Sankalan Samiti, Nagpur
8. India in Greece or Truth in mythology: ill. by maps of the Punjab, Cashmir and northern Greece, by Edward Pococke, Published by Griffin, 1852
9. India : what Can it Teach Us ? (A Course of Lectures Delivered Before the University of Cambridge), by F. Max Müller, Published by Longmans, 1883
10. Indica, by Megasthenes, Translated by E.A. Schwanbeck, Published by Sumptibus Pleimesii, bibliopolae, 1846
11. Is Sandrokottas Chandragupta Maurya?, by Shree Ram Sathe, Published by S. Prakash Rao, Khammam- 507 003, March 1985.
12. Kings of Kashmir (A Translation of the Sanskrit work Rājatarangini of Kalhana Pandita (2 Vols.), Translated by Jogesh Chunder Dutt, Published by Trubner & Co., London, 1879
13. Lectures on the Religion of the Semites: First Series the Fundamental Institutions, by William Robertson Smith, Published by Transaction Publishers, 1894
14. Modern India and the Indians: Being a Series of Impressions, Notes, and Essays, by Sir Monier Monier-

- Williams, **Published by** Trübner and Company, 1878
15. **New Frontiers of Archeology** by Dr. Shikaripur Ranganatha Rao, **Published by** Popular Prakashan, 1994
  16. **Plutarch's Lives** (Volume 2 of 2), **Edited by** Arthur Hugh Clough, Translated by John Dryden, **Published by** Digireads.com Publishing, 2009
  17. **Search for the Year of Bharat war**, by Sri Ram Sathe, **Published by** Bharatiya Itihas Sankalan Samiti, Nagpur
  18. **Si-yu-ki (Buddhist Records Of The Western World)**, **Translated From The Chinese Of Hiuen Tsiang** (a.d. 629), **By** Samuel Beal, Vol. II, **Published By** Trubner & Co., Ludgate Hill, London, 1884
  19. **The Age of Sankara**, by Udayaveer Shastri, **Published by** Virajanda Vedic Research Institute, Ghaziabad, 1981
  20. **The Ancient Geography of India: I. The Buddhist Period, Including the Campaigns of Alexander, and the Travels of Hwen-Thsang**, by Sir Alexander Cunningham, **Published by** Trübner & Company, 1871
  21. **The Complete Works of Swami Vivekananda**, Vol. V, **Published by** Prabuddha Bharat Office, Mayavati, 1919
  22. **The Dates of Mahabharata War**, by G.C. Agrawal, **Published by** Motilal Banarasidass Publishers, Delhi
  23. **The Fundamental Unity of India** from Hindu Sources With an Introduction by J. Ramsay Macdonald, **by** Radha Kumud Mookerji, **Published by** Longmans & Co., London, 1914
  24. **The History of British India**, by James Mil (6 Vols.), **Published by** Baldwin Crabock & Joy, London, 1826
  25. **The History of India, as Told by Its Own Historians** (8 Vols.), **by** Sir Henry Miers Elliot, **Published by** Trübner and Company, London, 1867-1877
  26. **The Life and Letters of the Right Honourable Friedrich Max Müller** (2 Vols.), **Edited by** Georgina Adelaide Müller, **Published by** Longmans, Green, and Company, 1902
  27. **The Plot in Indian Chronology**, Volume XVII of Arya Vijnana Publication, **by** Pt. Kota Venkatachalam, 1953

28. **The Traditional Age of Sri Sankaracharya & Mathas**, **by** A. Nataraja & S. Lakhminarsimha Shastri, **Published by** Sri Kanchi Kamkoti Mutt, Kancheepuram, 1962
29. **The Works of Sir William Jones With Life of the Author**, Vol. IV, **Printed For** John Stockdale, Piccadilly; And John Walker, Paternoster Row, 1807.

### पत्र-पत्रिकाएँ :

1. 'केरल भारती', मासिक पत्रिका (अगस्त, 1992), **प्रकाशक** : दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, एर्णाकुलम्, केरल
2. 'कल्याण' का 24वें वर्ष का विशेषांक 'हिंदू-संस्कृति-अंक'
3. स्मारिका, भारतीय इतिहास संकलन योजना समिति (दिल्ली), 1990
4. राष्ट्रधर्म (नवम्बर, 1992), संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर, लखनऊ
5. कादम्बिनी (हिंदी-मासिक), अप्रैल, 1990, हिंदुस्तान टाइम्स प्रकाशन, दिल्ली
6. दैनिक जागरण (हिंदी दैनिक), 10 जनवरी, 2002, दिल्ली
7. सरस्वती, मई, 1973
8. **Asiatic researches or transactions of the Society instituted in Bengal, for inquiring into the history and antiquities, the arts, sciences, and literature, of Asia**, Vol. XV, **Published by** Asiatic Society of Bengal, 1825
9. **Indian Church History Review**, **Published by** Church History Association of India, December 1973
10. **The Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute**, Vol. IV, **Published by** Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona
11. Various Issues of the **Indian Express** (English Daily)
12. Various Issues of the **Hindustan Times** (English Daily)